Title

JYOTISHA SAMHITA

Auth:

Aacharya Bhaskarananda
Lohini

publi

Agrahayana Prakasana
Lucknow.

ज्यौतिष संहिता

लेखक :

आचार्य भास्करानन्द लोहनी

[निदेशक—अखिल भारतीय ज्योतिर्विज्ञान तथा सांस्कृतिक शोध परिषद]

आग्रहायण प्रकाशन

१५ चाँदगंज गार्डन, लखनऊ—२२६०२०

JYOTISH-SANHITA

By Acharya Bhaskaranand Lohani

प्रथम संस्करण : २०४९ वि. (१९९२ ई.)

सर्वाधिकार : लेखकाधीन सुरक्षित

मूल्य : १८५/—

प्रकाशक : आग्रहायण प्रकाशन १५, चाँदगंज गार्डन, लखनऊ-२२६०२०

मुद्रक : चेतना प्रिंटिंग प्रेस २२ कैसरबाग, लखनऊ ।

अधिकृत विक्रेता :

* रंजन पब्लिकेशन्स १६ अंसारी रोड, दिल्ली ।
* के० के० गोयल एण्ड कम्पनी २१४ दरीबा, दिल्ली ।
* प्रकाश बुक डिपो, श्रीराम रोड, लखनऊ ।
* मालवीय पुस्तक केन्द्र अमीनाबाद, लखनऊ ।
* यूनिवर्सल बुकसेलर्स, हजरतगंज लखनऊ ।
* सरदार सोहन सिंह बुकसेलर, ३४ बक्षीगली, इन्दौर-४ ।
* टंडन स्टोर्स, श्रीराम रोड, लखनऊ ।
* नेशनल बुक हाउस, एस.सी.ओ. ७०-७२/३, सेक्टर १७ डी, चण्डीगढ़ ।
* सुशील प्रकाशन, ६३ कचहरी रोड, अजमेर ।

विषय-सूची

(अ) विषय सूची	३/४
(आ) सम्मतियाँ	५/६
(इ) आमुख	७/८
१—भारतीय कालगणना	९
२—राष्ट्रसम्वत् 'शक' का इतिहास	१७
३—रहस्यमय ब्रह्माण्ड	२१
४—अधिमास का वैज्ञानिक विवेचन	२८
५—धूमकेतु : भारतीय महर्षियों का अनुसंधान	३१
६—भूकम्प और ज्योतिष	४६
७—राष्ट्रीय सम्वत् एवं तिथिपत्र का स्वरूप क्या हो	४९
८—खगोलीय चमत्कार : ग्रहण	५५
९—इच्छानुसार सन्तान प्राप्ति सम्भव है	५८
१०—दक्षिण भारतीय ज्योतिष के विशिष्ट सिद्धान्त	६२
११—सिंहस्थ गुरु में विवाहादि मंगलकार्य निषिद्ध नहीं है	७०
१२—मकरस्थगुरु और गुर्वादित्य	७५
१३—फलित में परिस्थितियों का प्रभाव	८०
१४—पौरुषार्थ और भाग्य का द्वन्द	८५
१५—शत्रुबाधा योग और सम्बन्धित कारण	९०
१६—शारीरिक विकृति सूचक योग	९५
१७—कुव्यक्तित्व के परिचायक कुछ कुयोग	९७
१८—नशेड़ियों की पहचान : ज्योतिष की दृष्टि में	१०३
१९—बाल्यारिष्ट एवं अल्पायु योग	१०७
२०—आयु हानिकर योग	११०
२१—संहिता ग्रंथों में भ्रातृसुख विचार	११३
२२—राजदण्ड एवं दस्युभय	११७
२३—क्षय रोग के योग	१२०

२४—ज्योतिष शास्त्र द्वारा रोग निदान कैसे करें १२४
२५—मृत्यु का पूर्वाभास और ज्योतिष १३१
२६—ज्योतिष में नेत्रदोष सूचक योग १३७
२७—प्राणपद का महत्व तथा शोधन १४७
२८—ज्योतिष से कर्कट (कैंसर) रोग का परिज्ञान १५२
२९—पति-पत्नी का स्वरूप : ज्योतिषीय परिकल्पना १५७
३०—मंगलीयोग और परिहार १६३
३१—आकस्मिक धन लाभ योग १६९
३२—ज्योतिष द्वारा व्यवसाय निर्धारण—कुछ योग १७२
३३—गुरु-शुक्रास्त में विवाहादि मंगल कार्यों का पूर्ण निषेध नहीं है १७८
३४—सन्तान प्रतिबन्धक योग १८२
३५—सन्तति विरोध योग १८८
३६—एकाधिक विवाह : यौन सम्बन्ध योग १९२
३७—यौन एवं गुप्त रोग सूचक योग २००
३८—ज्योतिष में हृदय रोग सूचक योग २०३
३९—विदेश प्रवास योग २०८
४०—संगीतज्ञ योग २१०
४१—वीरगति प्राप्ति के योग २१२
४२—दीर्घायु योग २१४
४३—मातृकुल सुख का विचार २१७
४४—कुलदीपक योग २१९
४५—उदर व्याधि सूचक योग २२२
४६—गृहभूमि का शोधन २२५
४७—भूमिगत धन (निधि) दर्शन विधि २२८
४८—गृह वाटिका हेतु वृक्षों का चयन २३७
४९—कुव्यक्तित्व के परिचायक कुछ योग २३९
५०—कुछ प्रकीर्ण योग २४१
५१—अनुसंधान योग्य कुछ जन्मपत्र २४६
५२—नाम का महत्व २५४
५३—भारतीय पँचांग और उनका गणित २५७

✪

सम्मतियाँ

(१)

प्रादेशिक संस्कृतविद्यालयाध्यापक समिति, उत्तर प्रदेश

प्रधान कार्यालय : डी ३/३१ मीरघाट, वाराणसी

मुझे आचार्य भास्करानन्द लोहनी द्वारा लिखित ज्योतिष संहिता" नामक पाण्डुलिपि देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ। विद्वान लेखक ने लुप्त हो रही ज्योतिष विद्या को उजागर करने की दिशा मे जितना अथक प्रयास किया है— उसकी जितनी प्रशंसा की जाय—वह कम है। उक्त ग्रन्थ में आचार्य लोहनी ने ज्योतिष के खगोल विज्ञान, मुहूर्त निर्णय, फलित, ऋतु विज्ञान, वास्तुशास्त्र आदि विभिन्न गम्भीर विषयो पर शोधपूर्ण लेख संकलित करने का प्रशंसनीय प्रयास किया है।

आचार्य लोहनी ज्योतिष जगत के जाने माने एक मूर्धन्य विद्वान है। इन्होंने अपनी ६० वर्ष की आयु ज्योतिष विद्या के अध्ययन-अध्यापन, प्रचार प्रसार एवं ग्रंथ लेखन मे बिताई है। जिसके प्रतिफल के रूप मे आचार्य लोहनी द्वारा लिखित यह ज्योतिष संहिता" एक शोधपूर्ण ग्रन्थ के रूप मे आप सब लोगों के समक्ष प्रस्तुत है। इस ग्रंथ के प्रकाशन से ज्योतिष के विद्वानो, छात्रों तथा अन्य साधारणजनो को भी पर्याप्त लाभ पहुँचेगा। इससे राज्यभाषा हिन्दी भी समृद्ध होगी।

मेरा विश्वास है कि आचार्य लोहनी द्वारा लिखित "ज्योतिष संहिता" के प्रकाशन से ज्योतिष जगत मे ज्योतिषग्रंथों के अभाव की बहुत बड़ी क्षतिपूर्ति होगी। मै आचार्य लोहनी के कर्तृत्व, व्यक्तित्व अध्ययनशीलता एवं गुणग्राहकता की प्रशंसा करते हुए उनके दीर्घायु होने की मङ्गल कामना करता हूँ।

शुभकामनाओं सहित !

त्रिवेणी प्रसाद दीक्षित

दिनांक २-७-९१ महामंत्री

(१)

उदासीन संस्कृत महा विद्यालय

सी० के० ३६/१६ ढुण्ढिराज, वाराणसी—१

आचार्य भास्करानन्द लोहनी द्वारा लिखित पाण्डुलिपि "ज्योतिष संहिता" का मैंने यथाविधि अवलोकन किया। श्री लोहनी ने अद्यावधि २६ ग्रन्थो का प्रकाशन कर स्तुत्य-कार्य किया है। इसी संदर्भ मे इस ग्रंथ का भी प्रकाशन उनकी प्रतिभा एवं ६० वर्षीय दीर्घ अनुभव का परिपक्व परिणाम है। इसके प्रकाशन से विद्वानों, छात्रों तथा इस विषय में रुचि रखने वालों का पूर्ण-परितोष होगा ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है। राष्ट्र भाषा की श्री वृद्धि के लिये शास्त्रीयग्रथो का राष्ट्र-भाषा मे प्रकाशन सामयिक आवश्यकता है।

आचार्य भास्करानन्द लोहनी सुदीर्घ जीवन प्राप्त कर ऐसे शुभ कार्यों में संलग्न रहें यह मेरी हार्दिक शुभ कामना है।

—आचार्य रामयज्ञ शुक्ल
प्रधानाचार्य

दिनांक १८-७-९१

(२)

ज्योतिष शास्त्र मुख्यत: सिद्धान्त, संहिता और होरा तीन भागों में विभक्त है। इनमें संहिता ग्रंथों का विशेष महत्व है। कुछ संहिता ग्रंथ प्राकृतिक जागतिक एवं सामूहिक भविष्य का पूर्वाभास कराते हैं साथ ही इनमे भूकम्प ग्रहण, पुच्छल तारे आदि खगोलीय उत्पात और उनके प्रभावो का वर्णन भी है। लेकिन रावण संहिता, नारद संहिता, गर्ग संहिता, लोमश संहिता आदि कुछ ऐसी संहिता भी हैं जो फलित एवं होरा से सम्बन्धित हैं और अचूक तथा चमत्कारिक फल कथन में सहायक हैं। ये सभी संहिता ग्रंथ संस्कृत में हैं और वर्तमान में दुर्लभ है।

आधुनिक समय के वराह मिहिर विद्वान लेखक आचार्य भास्करानन्द लोहनी जी ने इन संहिता ग्रंथों का गहन अध्ययन एवं मनन और तुलनात्मक समीक्षा करने के पश्चात् विभिन्न शोध पूर्ण लेखों (जो समय-समय पर प्रकाशित हो चुके हैं) का संग्रह इस पुस्तक में किया है। यह विद्वान लेखक के साठ वर्षों की साधना एवं परिश्रम का प्रसाद है। अधिकारी विद्वान् द्वारा लिखित इस ग्रंथ के प्रकाशन से ज्योतिष और राष्ट्र-भाषा हिन्दी का साहित्य निश्चित रूप से समृद्ध होगा।

महर्षि डॉ० हरिकृष्ण छँगाणी
छँगाणी स्ट्रीट
फलोदी ३४२३०१ (राजस्थान)

दिनांक ३०-५-९१

आमुख

ज्योतिष शास्त्र मुख्य रूप मे तीन खण्डों म विभक्त माना जाता है। सिद्धान्त, संहिता और होरा।

इसमे सिद्धान्त खण्ड ग्रहगणित एवं खगोल से सम्बन्धित है। पंचांगों की गणना एवं ग्रहों की स्थिति, ब्रह्माण्ड की रचना आदि का ज्ञान इसी से होता है। आधुनिक जगत में यह 'एस्ट्रोनामी' के नाम से प्रसिद्ध है।

होरा खण्ड मुख्यत: जातक से सम्बन्धित है। कौन से समय में जन्म लेने पर जातक पर तत्कालीन खगोलीय ग्रहस्थिति का क्या कैसा और कब प्रभाव पड़ेगा, इसका विश्लेषण तो इस खण्ड में है ही साथ ही अंकशास्त्र सामुद्रिक (हस्त एव शरीर आकृति से फलकथन), स्वर प्रश्न, स्वप्न आदि भी इसी के अंग हैं। ताजिक, रमल, मुहूर्त आदि भी इसी के अन्तर्गत आते है।

संहिता खण्ड मुख्यत: 'जागतिक भविष्य' से सम्बन्धित है, अर्थात् खगोलीय ग्रहों की स्थिति का विश्व के प्राकृतिक एवं राजनैतिक भोगोलिक क्षेत्रों में कब, क्या और कैसे प्रभाव पड़ सकता है। इसी का विश्लेषण इस खण्ड में है। इसके अन्तर्गत प्राकृतिक स्थिति एवं आपदाओं (वर्षा, बाढ़, सूखा, भूकम्प, भूस्खलन) राजनैतिक परिवर्तनों, उपद्रवों और कृषि व्यापार आदि पर होने वाले इनके प्रभावों (तेजी मंदी) का विचार इसमें सन्निहित है। आचार्य वराह मिहिर ने शकुन, गृह-वास्तु (कौन भूमि या घर शुभ अथवा अशुभ है—निवास स्थान) का आदि विषय भी संहिता के ही अन्तर्गत दिये है।

ऐसा प्रतीत होता है कि ज्योतिष शास्त्र को सिद्धान्त, संहिता और होरा - इन तीन खण्डों मे विभाजित करने का काम आचार्य वराह मिहिर के समय मे हुआ है। वास्तव में संहिताग्रंथों में केवल 'जागतिक भविष्य' पर ही चिन्तन हुआ हो, ऐसा नहीं है, केवल वराह मिहिर के वाराही संहिता (बृहत्संहिता) में ऐसा दृष्टि गोचर होता है। ज्योतिषशास्त्र मे अनेक संहिता

ग्रंथ हैं, यथा—वशिष्ठसंहिता, नारद संहिता, गर्गसंहिता, लोमश संहिता इत्यादि। इनमें 'जागतिक भविष्य' के साथ ही जातक (होरा), मुहूर्त आदि विषयों पर भी पर्य्याप्त सामग्री उपलब्ध होती है। भृगुसंहिता, सूर्यसंहिता, अरुणसंहिता, रावणसंहिता आदि तो विशुद्धरूप से होरा (फलित) से संबंधित मानी जाती रही हैं यद्यपि आज इनका अस्तित्व नहीं रह गया है।

संहितागंथों में होरा (जातक) सम्बन्धी जो फलादेश प्राप्त होता है वह महत्वपूर्ण है। इसमें तो कुछ तो ज्योतिष होरा में सर्वमान्य सिद्धान्तों के अनुरुप ही है लेकिन कुछ में अपने स्वतंत्र सिद्धांत है। यह संहिता ग्रंथ भी आज के युग में दुर्लभ है और कालान्तर में अलभ्य हो सकते है। ऐसी दशा में इन बहुमूल्य सिद्धान्तों का संकलन तुलनात्मक अध्ययन और प्रकाशन आवश्यक है, ताकि आगामी पीढ़ी इस ज्ञान से लाभान्वित हो सके। यदि संहिता ग्रंथों में वर्णित फलादेश पर गहन अध्ययन किया जाय तो इनमें वर्णित विविध योगों पर सैकड़ों शोध निबन्ध तैयार हो सकते है।

संस्कृत विश्वविद्यालयो मे जहा ज्योतिष में उच्च शोध का विषय है, उन्हे इस दिशा में ध्यान देना चाहिए।

इसी भावना मे मैने समय-समय पर इन दुर्लभ ग्रंथों (संहिताओं) के आधार पर अनेको लेख लिखें हैं जो प्रकाशित भी हुए है। विद्वानों एव ज्योतिषशास्त्र के अध्येताओं की ओर से निरन्तर इन महत्वपूर्ण लेखों को पुस्तक रूप में प्रकाशित करने का अनुरोध प्राप्त होता रहा है। यद्यपि आज के युग मे ऐसी पुस्तकों के अध्येता अति सीमित है, ऐसी स्थिति में पुस्तक का प्रकाशन अलाभकर तथा व्ययसाध्य भी है। फिर भी काल के प्रवाह से जो कुछ बचा है, सरस्वती की इस आराधना में मुझे जो कुछ प्राप्त हो सका है उसे मैं जिज्ञासुओं मे बाँट देना आवश्यक समझता हूँ।

प्रस्तुत पुस्तक में संहिता के अलावा सिद्धान्त व होरा विषयक लेखों का भी समावेश है। मुझे विश्वास है कि इससे ज्योतिषशास्त्र के अध्येताओं के ज्ञान में अवश्य वृद्धि होगी और वे इन सिद्धान्तों से चमत्कारिक फल कथन कर ज्योतिष शास्त्र के गौरव– की रक्षा एवँ उनकी वैज्ञानिकता सिद्ध करने में सफल होंगे।

—भास्करानन्द लोहनी

१५ चाँदगंज गार्डन, लखनऊ।

भारतीय काल गणना

कालगणना के लिये सारा विश्व भारत का ऋणी है और विश्व में कालगणना के जो प्रचलित सिद्धान्त हैं वे सब भारतीय कालगणना पर आधारित हैं। वर्तमान समय में लोकप्रचलित "ग्रेग्रोरियन कलैण्डर" को वर्तमान स्वरूप १७५२ ई० में पोपग्रेगरी ने दिया था, तभी से इसे "ग्रेग्रोरियन" कलैण्डर कहा जाता है। इसके पहले इसमें समय-समय पर संशोधन होते रहे। ईसा के जन्म के बाद ही जनवरी को पहला मास माना गया, इसके पूर्व ईस्वी कलैण्डर भी मार्च से प्रारम्भ होता था (जो भारतीय चैत्र) के समकालीन था। आज भी सितम्बर (सातवां) अक्टूबर (आठवां) आदि नाम वैसे ही हैं, जब कि वे अब नवां तथा दसवां माह हैं।

सप्ताह के दिन जिन्हें हम रविवार, सोमवार के क्रम से सम्बोधित करते हैं, इसका क्या कोई वैज्ञानिक आधार है? रविवार के बाद सोमवार, मंगलवार ही क्यों आते हैं—क्या आपने इस विषय पर सोचा है? वास्तव में इसके पीछे जन साधारण में अनेक भ्रान्तियां हैं अधिकांश व्यक्ति तो यही सोचते हैं कि इसके पीछे कोई आधार नहीं है अपितु यह एक संयोग की बात अथवा मनगढ़न्त क्रम है—जो चिरकाल से चला आ रहा है। केवल जन साधारण ही नहीं बड़े-बड़े ज्योतिर्विद एवं वैज्ञानिक भी वास्तविक तथ्य से अनभिज्ञ हैं।

बहुत से लोग जो इसके रहस्य को नहीं समझते या नहीं जानते हैं—वे प्रायः ऐसा भी कह देते हैं कि वारों का क्रम भारतीय नहीं पाश्चात्य है, जो पश्चिम से भारत में आया है। वह एक कोरी एवं मिथ्या कल्पना है, यह कहना कोई अत्युक्ति न होगी कि पञ्चांग (कलैण्डर) के लिये समस्त विश्व भारत का ऋणी है। यह सर्वविदित है कि पश्चिमी कलैण्डर बहुत पीछे के बने हैं और उन्होंने भारतीय तिथिपत्र के क्रम से काफी सहायता ली है। केवल मासों में ही नहीं, तारीखों से घण्टा मिनट सेकिण्ड तक भारतीय कलैण्डर का ही रूप है जो होरा (आवर्स) निमेष (मिनट) विनिमेष (सेकिण्ड) का ही रूपान्तर है।

'षष्ट्यानु विनिमेषाणां निमेषः कीर्तितो बुधैः।
तेषां षष्ट्याभवेद्धोराऽहोरात्रं तज्जिनैर्मतम् ॥

यह सर्वविदित है कि भारतीय तिथिपत्र को अनादिकाल से, ज्योतिष शास्त्र के जन्मकाल से ही 'पञ्चांग' के नाम से सम्बोधित किया जाता है, स्पष्ट है कि उसके पांच अंग होने से ही उसका पञ्चांग नाम पड़ा।

'तिथि वारं च नक्षत्रं योग करण मेवच'

यह पांच अंग हैं--तिथि, वार नक्षत्र, योग और करण --इससे स्पष्ट है कि वारों का प्रचलन काफी प्राचीन है (उल्लेखनीय है कि पश्चिमी कलैण्डर के डे एन्ड डेट केवल दो ही अंग हैं)।

वार प्रणाली को पाश्चात्य मानने वाले पश्चिमी विद्वान ही नहीं अपितु कुछ भारतीयों को भी भ्रांति है। जो वार प्रणाली को पश्चिमी बताते हुए यह तर्क उपस्थित करते हैं कि प्राचीन भारतीय वाङ्मय ऋग्वेद आदि में रवि, सोम आदि ग्रहों का नाम तो है किन्तु, दिनों के रूप में कहीं रविवार, सोमवार आदि का उल्लेख नहीं मिलता है, यदि वारों का क्रम भारतीय होता तो वेदों मे इसका उल्लेख होता ? यह तर्क सर्वथा हास्यास्पद है क्योंकि वैदिक साहित्य की जो सामग्री है, उसका जो विषय है उसमें रविवार, सोमवार आदि वारों के नाम से कोई प्रयोजन ही नहीं है तो वारों के नाम उसमें कैसे आ जाते ? फिर भी रविवार आदि के रूप में न आकर जहाँ दिनों से प्रयोजन है वार, वासर शब्द कई जगह आया है—

'ज्योतिष्पश्यन्ति वासरम् परोयदिध्यते दिवा

(ऋ० ८।६।३०)

'तारीरवा नीव सूर्यो वासराणि (ऋ ८।४८।७)

(सूर्य दिनों को बढ़ाता है)

वेदांगकालीन अथर्ववेद के 'अथर्वज्योतिष' में वासरों के नाम, उनका क्रम तथा महत्व का स्पष्ट वर्णन है—

तिथिरेकगुणा प्रोक्ता नक्षत्रं च चतुर्गुणं ।
वारश्चाष्ट गुण:प्रोक्ता -- -- -- -- -- -- -- -- ।।
आदित्य सोमो भौमश्च तथा बुध बृहस्पति ।
भार्गव: शनैश्चरश्चैव एते सप्त दिनाधिपा: ।।

(९०—९६)

एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि अथर्व ज्योतिष' महाभारत से प्राचीन है अत: यह सर्वसम्मत है वह कम से कम पांच हजार वर्ष पुराना है और कम

से कम आज से पाँच हजार वर्ष पहले भारतीयों को वारों का पता था इसके विपरीत यूरोपीय विद्वान कनिंघम के मत ही से यूरोप में वारों के नामों का जो प्राचीन से प्राचीन उल्लेख मिलता है वह ई० पू० २० या २७ वर्ष है— इसके अर्थ यह हुए कि यूरोपवाले वारों का नाम केवल पिछले दो हजार वर्ष से ही जानते हैं।

महाभारत (आदिपर्व १६०।७) में भी वारों का उल्लेख मिलता है।

प्राचीन वैदिक वाङ्मय में रविवार सोमवार इत्यादि आधुनिक रूप से वारों का नाम न आने का एक और भी कारण है। वारों का क्रम ज्ञात होते भी उस युग में वारों का प्रचलन बहुत कम था—वारों के नामों का इतना व्यापक प्रचलन तो अभी नया नया है क्योंकि प्रत्येक महीने में एक एक वार चार या पाँच बार आता है, किस महिने का कौन सा रविवार ? इत्यादि व्यवहार में बाधक है अत: वैदिक युग में तिथि की मुख्य प्रधानता थी वही सर्वत्र लोक व्यवहार में प्रचलित थी—जैसे कहा जाय कि 'भाद्र शुक्ला ८" इससे वर्ष का एक दिन निश्चित हो गया क्योंकि 'भाद्रशुक्ल ८' वर्ष में केवल एक ही दिन पड़ेगा, इसके स्थान पर यदि वार का प्रयोग किया जाय तो 'भाद्र शुक्ला ८ रविवार इतना लम्बा शब्द बनेगा अथवा 'भाद्र पद मास का अमुक (पहला, दूसरा ?) रविवार' आदि कहना पड़ेगा। वास्तव में तिथि के साथ वार के प्रयोग की कोई आवश्यकता ही नहीं है जैसा कि आज भी व्यवहार में देखा जाता है कि पुराने लोग केवल तिथि का ही प्रयोग करते हैं पाश्चात्य कलैण्डर के अनुयायी भी पत्रव्यवहार आदि में कहीं रविवार, सोमवार आदि तारीखों के साथ प्रयोग में नहीं लाते केवल दिनांक, मास व ईस्वीसन इन तीनों का ही प्रयोग होता है, भले ही बोलचाल में वार का प्रयोग हो जाता है. अस्तु जब आज भी वार का प्रयोग सर्वथा गौण है तो उस समय भी वह गौण रहा होगा। वास्तव में वार का अधिक प्रयोग पश्चिमी कलैण्डर (ग्रैग्रोरियन) बनने के बाद हुआ, क्योंकि उक्त कलैण्डर में डे एण्ड डेट दो ही अंग हैं अत: 'डेट' की पुष्टि के लिए 'डे' का प्रयोग नितान्त आवश्यक था।

वारों का क्रम कैसे बना ?

समस्त विश्व भर में वारों का एक ही क्रम है और उनके नाम भी एक ही हैं, केवल भाषा से नामों में कुछ परिवर्तन है। यूरोपीय विद्वान जो कि वारों को पश्चिम की देन कहते हैं—उनसे वारों के इस क्रम का क्या रहस्य है ?

यह प्रश्न पूछा जाय तो उनके पास कोई उत्तर नहीं है इसके विपरीत हमारे पास ठोस वैज्ञानिक तथ्य हैं, भारतीयों ने बारह 'पूर्ण चन्द्रमा' के आधार पर वर्ष को बारह महिनों में विभाजित किया इसी आधार पर खगोल को बारह राशियों में विभाजित किया, तदनुसार राश्यर्धम् होरा अर्थात राशि के आधे भाग को होरा कहते हैं, अतः प्रतिदिन पृथ्वी की परिक्रमा करने में सूर्य (वस्तुतः पृथ्वी द्वारा अपनी धुरी पर) जितने समय मे १५ अंश—(आधी राशि) चलता है उतने समय का नाम 'होरा' है। सूर्य एक दिन रात मे पृथ्वी की एक परिक्रमा करता है (पृथ्वी धुरी पर घूमती है), क्योंकि एक दिन रात में २४ घंटे, तथा एक खगोल में १२ राशि अतः १ राशिभ्रमण में २ घंटे लगे और आधी राशि भ्रमण में १ घंटा अतः १ घण्टा = १ होरा। अहोरात्र = खगोल १२ भागों में अतः 'अ (हो रा) त्र' अर्थात् खगोल के २४ भाग, अथवा दिन रात के २४ होरायें (घण्टे)।

वर्ष के महिने = १२
खगोल की राशियां = १२
१ अह (दिन) = १२ होरा
१ रात = १२ होरा
१ दिन + १ रात = १ अहोरात्र

क्योंकि पूरे खगोल के १२ भाग अतः दिन और रात को भी १२-१२ भागों में विभक्त किया है।

ज्योतिषशास्त्र में फलित भाग को 'होरा' कहते हैं, जो 'अहोरात्र' शब्द के दो मध्यस्थ शब्दों के रूप में लिये गये हैं, इसी होरा से वारों की गणना प्रारम्भ हुई है। उल्लेखनीय है कि भारतीय ज्योतिष में सम्पूर्ण गणना पृथ्वी को केन्द्र मानकर की गयी है (सौरमण्डलीय ग्रहों का केन्द्र नहीं अपितु अपनी सुविधा के लिये, जैसा कि पृथ्वी पर के निवासी प्रत्यक्ष देखते अनुभव करते हैं गणना का केन्द्र यदि सौर मण्डल का केन्द्र पृथ्वी को मानते तो उनकी गणना आधुनिक विज्ञान से गलत बैठती) अतः पृथ्वी के अनन्तर ग्रहों की कक्षा इसक्रम से मानी हैं—

'भूमेः पिन्डः शशांक ज्ञ कवि—रवि
कुजे ज्यार्कि नक्षत्र कक्षा."

अर्थात् १—चन्द्र, २—बुध, ३—शुक्र, ४—सूर्य, ५—मंगल, ६—बृहस्पति, और ७—शनि

यह क्रम इस आधार पर लिया गया है कि जिस ग्रह का भगण (खगोल की एक परिक्रमा करने का समय) काल सबसे कम है उसे पहले लेकर उसी क्रम से कक्षा मानी है—

चन्द्र—२७ दिन ७ घं० ४३.१६ से
बुध—८७.९०—दिन
शुक्र—२२४.७०१ दिन
सूर्य—३६५.२५६ दिन
मंगल—६८६.९४३ दिन
गुरु—११.८६२ वर्ष
शनि—२९.४५८"

ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है कि जितने समय में (पृथ्वी पर से देखने में) सूर्य खगोल के १५ अंश चलता है उतने समय को होरा या घण्टा कहते है। अस्तु सर्व प्रथम सौर मण्डलीय ग्रहों में सबसे तेजस्वी तथा प्रधान होने से सृष्टि के आरम्भ में पहले दिन का पहला घण्टा सूर्य को दिया गया शेष एक एक घण्टा क्रम से प्रत्येक ग्रह को दिया गया। इस तरह (पृथ्वी को छोड़कर) विभाग करने पर सर्वप्रथम सूर्य, तदनुसार उसका सबसे निकटवर्ती शुक्र, फिर सबसे निकट बुध, फिर चन्द्र, फिर भौम, गुरु, शनि पूर्वोक्त विपरीत क्रम से—

१, ८, १५, २२ वे घण्टे सूर्य
२, ९, १६, २३ शुक्र
३, १०, १७, २४ बुध
४, ११, १८, २५ चन्द्र
५, १२, १९—शनि
६, १३, २०—गुरु
७, १४, २१—भौम

२४ घण्टे में एक अहोरात्र पूरा हो जायगा, २५ वां घण्टा (दूसरे दिन प्रात:) चन्द्रमा का होगा, इसी प्रकार गिनते जायें तो, तीसरे दिन प्रात: मंगल का चौथे दिन बुध का घण्टा पड़ेगा। जिस दिन प्रात: जिसका घण्टा पड़े—उसी ग्रह के नाम पर उस दिन का नाम रक्खा गया है।

क्योंकि पृथ्वी को केन्द्रमान कर गणना करने की विधि भारतीय है, अत: उपरोक्त वार गणना का क्रम विशुद्ध भारतीय है ।

कुछ लोग शंका करते हैं कि यदि पृथ्वी से ग्रहों की चन्द्र बुध (उपरोक्त) कक्षायें भारतीयों ने ली हैं तो पहला दिन सोमवार होना चाहिए था, पहला चन्द्रमा है ? इसका कारण यह है कि भारतीय ज्योतिष में गणना की सुविधा से पृथ्वी को केन्द्र तो माना है किन्तु ग्रहों में सूर्य को मुख्यत्व (सौर मण्डल का प्रधान एवं केन्द्र) दिया है अत: प्रथमगणना उसी से है । इसके अलावा और भी कारण हैं जो विस्तार भय से देना संभव न होगा । उल्लेखनीय है कि भारतीय ज्योतिष में राशि स्वामियों की गणना भी सूर्य से तथा इसी कक्षा क्रम से ही है जब की प्रथम राशि मेष का स्वामी भौम है । इससे स्पष्ट है कि भारतीय ज्योतिष की गणना में सूर्य को सर्वत्र प्रथम स्थान प्राप्त है ।

दूसरी शंका है 'होरा' शब्द पर ? कुछ लोग इसे ग्रीक शब्द मानते हैं जिसकी पुष्टि में कहा जाता है कि प्राचीन मिस्रवासी अहोरात्र एवं होरा का अपभ्रंश 'होराश' देवता को पूजते थे । अत: उनका कथन है कि होरा शब्द की उत्पत्ति तथा वारों का क्रम मिश्र अथवा बाबीलोन (खाल्डिया) का है । किन्तु वे यह भूल जाते हैं कि प्राचीन मिश्र में सप्ताह का प्रचलन तक न था, वे लोग दस-दस दिन करके महीने को तीन भागों में बाँटते थे । हाँ मिश्र या बाबीलोन के साहित्य में 'होरा' हो सकता है—उसका कारण यह है कि 'अहोरात्र' और होरा शब्द वैदिक हैं तथा वेदों में हजारों बार प्रयुक्त हुए हैं । वेदों में एक दो स्थान पर नहीं सैंकड़ों बार 'अहोरात्र' शब्द का उल्लेख है और इसी प्रसंग में है (ऋग्वेद १०। ९०।१३, ऐतरेय ब्रा० ७।१७, तैतरीय ब्रा० ३।११।१ आदि) । क्योंकि बाबीलोन व भारतीय आर्यों का मूल एक है, उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त से वैदिक आर्यों का एक दल दक्षिण पूर्व (भारत) को बढ़ा और दूसरा पश्चिम को । केवल होरा शब्द ही नहीं अपितु वैदिक संस्कृत शब्दों से यूनानी, ईरानी साहित्य भरा पड़ा है । इससे स्पष्ट है कि वेद काल में ही आर्य वारों से परिचित थे ।

भारतीय कालगणना की विशेषता

भारतीय कालगणना की विशेषता यह है कि वह अत्यन्त सूक्ष्म है, जिसमें त्रुटि से लेकर प्रलय तक की कालगणना है. ऐसी सूक्ष्म कालगणना और कहीं भी प्राप्त नहीं है । भारतीय कालविज्ञान एवं खगोल विज्ञान के सबसे प्राचीन एवं अपौरुषेय ग्रंथ "सूर्यसिद्धान्त" में काल के दो रूप बतलाये गये हैं—

(अ) अमूर्तकाल—ऐसी सूक्ष्मकाल गणना जिसको न तो देखा जा सकता है न गणना की जा सकती है।

(आ) मूर्तकाल—अर्थात् जिसमें गणना सम्भव है और जिसे देखा जा सकता है।

स्वयं सूर्यसिद्धान्त के अनुसार इस ग्रंथ का जन्म लगभग २२०००,०० वर्ष पूर्व है, लेकिन समय-समय पर इसमें संशोधन परिवर्धन होते रहे हैं। अन्तिम रूप से ग्यारहवीं शताब्दी में भास्कराचार्य द्वितीय ने इसको वर्तमान स्वरूप दिया होगा, ऐसा भारतीय व पाश्चात्य विद्वानों का विचार है। इस ग्रंथ में त्रुटि से प्रलय तक की कालगणना का इस प्रकार उल्लेख है।

सेकिण्ड का तीन करोड़वां भाग

इसमें काल गणना की मूल इकाई "त्रुटि" है, जो ०.३२४,००,००० सेकिण्ड के बराबर है अर्थात् एक त्रुटि = सेकिण्ड का तीन करोड़वां भाग। त्रुटि से प्राण तक 'अमूर्त' समय है और इसके बाद का समय 'मूर्त' है।

सूर्यसिद्धान्तकी काल गणना—त्रुटि से प्रलय तक

प्राणादि कथितो मूर्तस्त्रुट्याद्योऽमूर्त संज्ञकः।
सूच्याभिन्ने पद्मपत्रे त्रुटिरित्यभिधीयते ॥ ४ ॥
तत्षट्या च भवेद्रेणुः रेणुषष्ट्या लवं स्मृतं।
तत्षष्ट्या लेशकं प्रोक्तं तत्षष्ट्या प्राण मुच्यते ॥ ५ ॥
षष्टिप्राणैर्विनाड़ीस्यात्तत्षष्ट्या नाड़िका स्मृता।
नाड़ि षष्ट्या तु नाक्षत्रमहोरात्रं प्रकीर्तितम् ॥ ६ ॥

—सूर्यसिद्धान्त, अध्याय-१

मूल इकाई = त्रुटि = (सेकिण्ड का ३ करोड़वां भाग) = ०.३,२४,००,००० से०

६० त्रुटि = रेणु

६० रेणु = लव

६० लव = लेशक

६० लेशक = प्राण

६० प्राण = विनाड़ी

६० विनाड़ी = नाड़ी

६० नाड़ी = अहोरात्र (दिन रात)

७ अहोरात्र = सप्ताह

२ सप्ताह = पक्ष

३० अहोरात्र = मास
२ मास = ऋतु
६ मास = अयन
१२ मास (२ अयन) = वर्ष
४,३२,००० वर्ष = कलियुग
८,६४,००० वर्ष = द्वापर युग
१२,९६,००० वर्ष = त्रेतायुग
१७,२८,००० वर्ष = सत्ययुग
४३,२०,००० वर्ष = एक चतुर्युगी
७१ चतुर्युग = एक मन्वन्तर (खण्ड प्रलय)
(३,२२,५८,००० वर्ष)
१४ मन्वन्तर = एक ब्रह्मदिन
(= ४,३२,००,००,००० वर्ष)
८,६४,००,००,००० वर्ष = ब्रह्मा का एक अहोरात्र
(= एक सृष्टिचक्र)
अर्थात् आठ अरब, चौंसठ करोड़ वर्ष की एक सृष्टि।

यह तो पृथ्वी के जीवधारियों का एक सृष्टि चक्र है। इसके आगे की भी गणना है—

ब्रह्मा के ३६० अहोरात्र = ब्रह्मा का एक वर्ष।
ब्रह्मा के १०० वर्ष = ब्रह्माण्ड का महाप्रलय।

सूर्यसिद्धान्त मे कालगणना की सबसे सूक्ष्म इकाई को "त्रुटि" कहा गया है, लेकिन महर्षि नारद की गणना इससे भी सूक्ष्म है। नारद संहिता के अनुसार "लग्नकाल" त्रुटि का हजारवाँ भाग है—

लग्नकाल = ०.३२,४०,००,००,००० सेकिण्ड
(अर्थात् सेकिण्ड का बत्तीस अरबवाँ भाग)

इसकी सूक्ष्मता के सम्बन्ध मे उनका कथन है कि यह इतना सूक्ष्म समय है - स्वयं ब्रह्मा भी इसे नहीं जानते फिर साधारण मनुष्य की बात ही क्या है ?

'त्रुटे: सहस्त्रभागोयो लग्नकाल: स उच्यते।
ब्रह्माऽपि तं न जानाति किं पुन: प्राकृतोजन: ।।"

आधुनिक वैज्ञानिक परमाणुचालित घड़ियों से सेकिन्ड के हजारवें भाग तक की गणना करने की क्षमता रखते हैं लेकिन भारतीय कालगणना की सूक्ष्मता तो इससे भी अत्यन्त सूक्ष्म है।

राष्ट्रीय सम्वत् 'शक' का इतिहास

भारत स्वतन्त्र हुआ, उसके साथ ही एक राष्ट्रीय कैलेण्डर (तिथिपत्र) की आवश्यकता हुई, ताकि दासता के प्रतीक अंग्रेजी कैलेण्डर के स्थान पर उसे प्रतिष्ठित किया जा सके। विद्वानों ने इसके हेतु भारत मे प्रचलित 'शाकाब्द' को इसके योग्य माना और उनके प्रतिवेदनानुसार अंग्रेजी कैलेण्डर के साथ-साथ शासकीय रूप से शक-सम्वत् का प्रचलन हो रहा है, यह प्रसन्नता का विषय है।

जिस शक-सम्वत् को शासकीय मान्यता मिली है, वह कोई नया सम्वत् नहीं है, उसका प्रयोग सांस्कृतिक एवं धार्मिक रूप से परम्परा हो रहा है। किंतु सामान्यत: समाज में इस समय दो सम्वतों का समान रूप से प्रचलन है—(१) विक्रम सम्वत्, (२) शाके। भ्रान्तिजनक स्थिति हो जाने के भय से दोनों सम्वतों को मान्यता नहीं दी जा सकती है अत: दोनों में एक का चुनाव करना था। इनमें शासन ने जिस पद्धति से 'शाके' को चुना है, उसमें कोई पक्षपात अथवा अधिक प्रचलन का दृष्टिकोण नहीं अपनाया गया है, प्रत्युत प्राचीन परम्परा से अनुमोदित प्रणाली का ही अनुसरण किया गया है। सम्वतों का प्रयोग किस रूप से होना चाहिए? इसका सम्यक् प्रमाण पुरातन काल गणना से सम्बन्धित-साहित्य में उपलब्ध होता है—

युधिष्ठिरो, विक्रम, शालिवाहनो, तथैव राजा विजयाभिनन्दन:।
नागार्जुनश्चेति तथैव कल्कि, ऐते कलौ: षट् शक कारका नृपा: ॥

अर्थात् कलियुगारम्भ से क्रमश: युधिष्ठर सम्वत्, विक्रम सम्वत्, शालिवाहन सम्वत्, विजयानन्दन सम्वत्, नागार्जुन सम्वत्, और कल्कि सम्वत् यह ६ सम्वत् क्रमश: चलेंगे। इन सम्वतों का काल-निर्धारण भी कालशास्त्रज्ञों ने निर्धारित किया है—

क्रमेण वेदाब्धिखवह्नयस्तत:, शराग्नि चन्द्रा खखखाहिभूमय:।
ततोयुतं लक्षचतुष्टयं च, चन्द्रद्विनागा शक समित: कलौ: ॥

अर्थात् कलियुगारम्भ से सर्वप्रथम युधिष्ठर सम्वत् चलेगा, उसका कुल मान—३०४४ वर्ष है, अर्थात् इतने वर्षों तक उसकी मान्यता रहेगी उसके बाद

क्रमश: विक्रम सम्वत् १३५ वर्ष, शालिवाहन शाके १८००० वर्ष, विजयानन्दन सम्वत् १०००० वर्ष, नागार्जुन सम्वत् ४०० ०. वर्ष और अन्त में कल्किसम्वत् ८२१ वर्ष मान्य होगा।

उल्लेखनीय है कि शालिवाहनीय सम्वत् जिसे शक-सम्वत् नाम से सम्बोधित किया गया है, जिसका आरम्भ ठीक विक्रम सम्वत् के १३५ वर्षों बाद हुआ, उपर्युक्त व्यवस्थानुसार विक्रम सम्वत् की मान्यता शक-सम्वत् के जन्म से ही समाप्त हो जाती है, और शक सम्वत् १८,००० वर्षों तक मान्य बना रहेगा। यह उचित है कि भारतीय जनता स्वतन्त्रता के प्रहरी वीर विक्रम की स्मृति को अभी नहीं भूली है, और सम्वत् के स्वरूप में उसे स्मरण करती है—करना भी चाहिए किन्तु मान्यता के रूप में शक सम्वत् की प्राथमिकता उचित ही है।

शक सम्वत् का प्रवर्तक

इसके बाद अगला प्रश्न यह उठता है कि शक-सम्वत् का प्रवर्तक कौन था। कुछ ऐतिहासिक विद्वान् शक जातीय कुशाण सम्राट् कनिष्क को शक-सम्वत् का प्रवर्तक मानते है, और कुछ विमकड़-फिसिज को। प्राय: इसे भारतीय शासन द्वारा राष्ट्रीय सम्मान प्राप्त होने के उपरान्त भी कुछ दिग्भ्रान्त भारतीय भी ऐसा ही विचार रखते हैं कि इसका प्रवर्तक जो भी हो, किन्तु वह विदेशी (शक जातीय) ही था, जिससे इसका नाम शक-सम्वत् पड़ा। किन्तु ऐसे पुष्ट और सबल प्रमाण उपलब्ध है कि शक सम्वत् का प्रवर्तक कोई शक जातीय विदेशी नहीं, अपितु भारतीय ही था –

> निहन्ति यो भूतलमण्डले शकान्,
> स पंच कोट्यब्ज वल प्रमान् कमो: ।
> स राजपुत्र: शक कारको भवेत् ।।

शक सम्वत् के प्रवर्तक का सम-सामयिक विद्वान् कालिदास का यह कथन 'आक्रमणकारी शक जाति का नाश करने वाला भूप ही शक कारक होता है' यह सिद्ध करता है—कि शक-सम्वत् शक-जाति के राज्य का प्रतीक नहीं, अपितु आक्रमणकारी शक-जाति की दासता से मुक्ति का प्रतीक है।

इसके अलावा जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, कालिदास ने स्पष्ट कहा है युधिष्ठर, विक्रम, और शालिवाहन क्रमश: शक कारक होंगे, विक्रम का प्रर्वतित सम्वत् है, जैसा कालिदास ने उल्लेख किया है विक्रम के बाद १३५ वर्षों

में शालिवाहनीय सम्वत् मान्य होगा। और यह प्रत्यक्ष सिद्ध है कि विक्रम सम्वत् और शक में ठीक १३५ वर्ष का ही अन्तर है।

आगे चलकर कालिदास ने और स्पष्ट किया है, सम्वत् प्रवर्तकों के जन्म स्थान का भी उल्लेख आया है –

युधिष्ठिरोभूद्भुवि हस्तिनापुरे,
ततोऽजयिन्यां पुरि विक्रमाह्वय: ।
शालेयधाराभृत शालिवाहन: ।

प्रथम शककर्ता युधिष्ठिर हस्तिनापुर मे, दूसरे विक्रमादित्य उज्जयनी म, और तीसरे शालिवाहन शालेयधारा में उत्पन्न हुए। (वर्तमान कर्नाटक)।

यहाँ पर यह भी विचारणीय है कि यदि शक-सम्वत् शक-विजय का प्रतीक होता तो क्या उसका इतना समादर, इतना प्रचलन होता ? प्रसिद्ध ऐतिहासिक अलबेरूनी भी इस बात से सहमत है कि शक-सम्वत् विक्रम सम्वत् से १३५ वर्ष बाद चला, और यह सम्वत् 'शक नाश' का प्रतीक आरम्भ हुआ।

इन सब तथ्यो से यह स्पष्ट हो जाता है कि शक-सम्वत् का प्रवर्तक सम्राट् शालिवाहन था, जो अपभ्रंश रूप से 'सातवाहन' नाम से प्रसिद्ध हुआ। आधुनिक इतिहास भले ही ७८ ई० में सातवाहन का अस्तित्व और उसके द्वारा शक-विनाश स्वीकर करे या न करे, किन्तु अलबेरूनी और कालिदास इसके प्रबल प्रमाण हैं, जिसे असत्य कदापि नहीं माना जा सकता।

शक-सम्वत् नाम क्यों पड़ा ?

अन्त में यह प्रश्न उठता है कि शालिवाहन द्वारा प्रवर्तित इस सम्वत् का नाम शक-सम्वत् क्यों पड़ा ?। किन्तु 'शक-सम्वत्' यह नाम हमें शक सम्वत् के जन्म से अब तक कहीं भी नहीं मिलता। शासकीय मान्यता से पहले 'शक सम्वत्' शब्द का प्रयोग कहीं ढूंढ़कर भी नहीं मिलता। भारतीय जीवन के सांस्कृतिक क्षेत्र में जहाँ भी इस सम्वत् का प्रयोग किया गया है, वहाँ या तो 'शकारि शालिवाहनीये' अर्थात् शक-जाति के शत्रु शालिवाहन का प्रवर्तित' शब्द प्रयुक्त हुआ है अथवा केवल 'शाके' (शकनाश का प्रतीक) का उल्लेख मिलता है। प्रथम शब्द में तो 'शकारि' अर्थात् शकों का शत्रु स्पष्ट ही है, और दूसरे में भी 'शाके' शब्द के अर्थ शक-सम्वत् कदापि नहीं है।

कालिदास के साहित्य से तो यह सिद्ध होता है कि 'शक' शब्द न तो शक-जाति का प्रतीक है, और न शक-नाशक। 'ऐते कलौ: षट् शककारका नृपा:, 'स राजपुत्र: शक कारको भवेत्' इससे सिद्ध होता है कि शक शब्द सम्वत् का पर्यायवाची है। शक कारका नृपा: = सम्वत् चलाने वाले राजा। स राजपुत्र: शक कारको भवेत् = वह राजपुत्र सम्वत् चलाने वाला होता है। इत्यादि

अपने साहित्य में कालिदास ने कहीं भी 'सम्वत्' शब्द का प्रयोग नहीं किया है, जहाँ सम्वत् से तात्पर्य है, वहाँ शक शब्द ही का प्रयोग किया है, यहाँ तक कि उन्होंने विक्रम-सम्वत् को भी 'विक्रम-शक' ही कहा है, युधिष्ठर सम्वत् को भी युधिष्ठर शक' कहा है। ऐसी स्थिति में यह सिद्ध होता है कि शक = सम्वत् होता है। यह केवल संयोग था कि शालिवाहन शक (सम्वत्) का प्रवर्तक भी रहा होगा, और शकों का विनाशक भी।

सही शीर्षक क्या हो ?

भारतीय कलैण्डर-पद्धति को मान्यता मिलने से हमें जितनी प्रसन्नता है, उतना ही खेद भी है कि दिग्भ्रान्त विचारकों की इस सम्मति से सहमत होकर कि शाके, शक-विजय का प्रतीक है -- इस विषय पर अनुसधान किये बिना ही 'शाके' को 'शक-सम्वत्' नाम दे दिया गया। और अब 'शक सम्वत् = शक जाति व विजय का प्रतीक सम्वत्' स्पष्ट हो गया है। जो कलैण्डर भारतीय स्वतन्त्रता के वैजयन्ती का प्रतीक हो, उसे दासता के प्रतीक में परिवर्तित कर देना हर एक देशभक्त के हृदय में आघातकारी तो है ही, साथ ही एक स्वतन्त्रता के सेनानी का घोर अपमान भी है। हमें आशा है कि शासन इस विषय पर ध्यान देकर तुरन्त इस त्रुटि को सुधारेगा।

उपर्युक्त तथ्यों से यह सिद्ध किया जा चुका है कि शक के अर्थ सम्वत् हैं, तदनुसार शक-सम्वत् के अर्थ होगे सम्वत्-सम्वत्' जिसका कोई अर्थ ही नहीं इस दशा में शक-सम्वत्' शब्द केवल दासता का ही प्रतीक रहेगा।

शासन को चाहिए कि वह इसे 'शालिवाहनीय-शक' (शालिवाहन का सम्वत्) अथवा शकारि-सम्वत्' (शक जाति के शत्रु का सम्वत्) नाम देकर प्रसिद्ध करे, जैसा कि भारत में परम्परा से प्रयुक्त होता आया है।

ऐसा विश्वास किया जाता है कि शालिवाहन शक के समय आरम्भ में 'विक्रम-शक' और शालिवाहनीय-शक' शब्द प्रयुक्त होते होंगे, बाद में भ्रान्ति न हो इस उद्देश्य से भारतीय विद्वानों ने इन्हें 'विक्रम-सम्वत्' और 'शालिवाहन-शक' नाम से सम्बोधित किया होगा—जो अब तक हो रहा है।

रहस्यमय ब्रह्माण्ड

ज्ञान की कोई सीमा नहीं है, हम अन्वेषक के रूप में ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते हैं त्यों-त्यों उसकी सीमा और दूर होती जाती है ।

एक तरफ हम चन्द्रलोक की यात्रा कर चुके हैं, भौमलोक तथा शुक्रलोक की यात्रा का कार्यक्रम बना रहे हैं और वहाँ पर मानव जीवन की सम्भावना व्यक्त कर मंगल आदि पर मानवकृत नहरें होने का भी विश्वास करते हैं । केवल सौर मण्डल तक ही नहीं अपितु सौर मण्डल के बाहर भी ब्रह्माण्ड में अवस्थित नीहारिकाओं तारों आदि के सम्बन्ध में भी बड़े निश्चय के साथ उनकी दूरी, आकार, व्यास आदि का भी ऐसा वर्णन करते हैं मानो यह सब प्रत्यक्ष रूप मे हमने देखा हो किन्तु अपने सूर्य और पृथ्वी के बारे मे अभी भी अनेक रहस्य हैं ।

(अ) सूर्य अपने स्थान पर स्थिर नहीं है, उसमे गति है, यह सर्वसम्मत मत है । किन्तु सूर्य ब्रह्माण्डस्थ किस पिण्ड की परिक्रमा कर रहा है ?

(आ) सम्पात-चलन का क्या कारण है ? ।

(इ) ब्रह्माण्ड में सूर्य एवं सौर मण्डल की स्थिति कहाँ पर किस रूप में है ? ।

(ई) पृथ्वी का २३·१/२ अंश झुकाव क्यों है ? ।

(उ) पृथ्वी का ध्रुवत्व ध्रुव से है ? ।

(ऊ) पृथ्वी के उत्तर पथ (१७८ दिन और दक्षिण पंथ (१८७) में समानता क्यों नहीं है ? । इत्यादि

सूर्य के बारे में अद्यावधि अनेक कल्पनायें की जा चुकी हैं । कोई प्रभास को, कोई अगस्त्य को और कोई अभिजित् को सूर्य का केन्द्र मानते हैं । यहाँ तक कि सूर्य का केन्द्र ठीक से निश्चय हुए बिना ही सूर्य के कक्ष तथा गति के बारे में भी कल्पनायें की जा चुकी हैं । एक मत है—सूर्य अभिजित् की दिशा में चालीस करोड़ मील प्रतिवर्ष की गति से जा रहा है । दूसरा मत सूर्य के कक्ष

पर सूर्य की गति दो सौ मील प्रति सेकिण्ड (६,२२,०८,००,००० मील प्रति वर्ष) मानकर कक्ष की एक परिक्रमा का समय २५ करोड़ वर्ष मानता है। और भी अनेकों मत है।

जब तक ब्रह्माण्ड का आकार और उसके परिधि का ठीक से निर्णय न हो जाय, ब्रह्माण्ड में सूर्य की स्थिति का ठीक से निरूपण न हो जाय। तब तक ब्रह्माण्ड सम्बन्धी किसी भी तथ्य की सत्यता में सन्देह है।

अशुद्धियों की सम्भावना

यद्यपि आकाश गंगा तारों का समूह मात्र है या गैस रूपी पदार्थों का बादल ? निश्चय नहीं है (यद्यपि अधिकांशत: तारों का समूह मानने लगे हैं)। किन्तु फिर भी उसके विस्तार के बारे में कोई उसका लघु—व्यास दस हजार प्रकाश वर्ष का मानता है और कोई हजार प्रकाश वर्ष।

इसी प्रकार ध्रुव तारे की पृथ्वी से दूरी कोई ४६ प्रकाशवर्ष कोई ४० प्रकाशवर्ष, तथा कोई केवल २४ अरब मील अर्थात् आधे प्रकाशवर्ष से भी कम मानते हैं। उल्लेखनीय है कि एक प्रकाशवर्ष दूरी का अर्थ है—लगभग साठ खरब मील दूरी। जब कि दूसरी ओर ध्रुव की दूरी पचास हजार प्रकाशवर्ष से भी अधिक होने की सम्भावना है।

जरा सोचिये तो, पृथ्वी के उपग्रह केवल २ ३८ ८४० मील दूरी पर स्थित चन्द्रमा के तल का यथार्थ पता हमे नहीं चल सका है। मंगल की नहरें मानव कृत है, या पहाड़ी पठार यह तो हम निश्चय नहीं कर पाये है, तो हमारी इन कल्पनाओं की क्या सत्यता है कि देवयानी तारामण्डल की नीहारिका पृथ्वी से सात लाख, पचास हजार प्रकाशवर्ष दूर है, और उसका व्यास पैंसठ हजार प्रकाशवर्ष का है ? जिसे हम बड़ी दृढ़ता से कहते हैं।

मुझे यह कहने में कुछ भी संकोच नहीं है कि हम अभी काफी अंधकार में है, और ब्रह्माण्ड सम्बन्धी जो कल्पनायें (जिन्हें हम सही तथ्य ही मान रहे हैं) हमने की है वास्तविक सत्य उनसे काफी दूर है। और कालांतर में हमारी इन कल्पित मान्यताओं के मिथ्या सिद्ध होने की काफी सम्भावनायें हैं। विशेषकर तारों की दूरी सम्बन्धी तथ्यों में।

प्रकाश की किरण

यह एक कटु सत्य है कि ज्योतिर्विज्ञान में पिछले पन्द्रह-बीस शताब्दियों के अन्दर हमने जितना भी कार्य किया है—वह उस कार्य के एक शतांश-तुल्य

भी नहीं है जिसे हमारे पूर्वजों ने केवल चर्मचक्षु और ज्ञान चक्षुओं के सहारे सकड़ों वर्ष पूर्व किया है। विनाश की दिशा में विज्ञान ने भले ही जितनी उन्नति कर ली हो, परंच ज्योतिर्विज्ञान में इस यांत्रिक युग में भी हमने उन्हीं पूर्वजों के शोधित ग्रहों—तारों में मीन—मेष निकालने के अलावा और क्या किया है ?। शताब्दियों–सहस्त्राब्दियों के दीर्घकाल में साधन–समन्वित उन्नत विज्ञान के युग में भी व ी वैदिक २७ नक्षत्र, और वही ग्रह हैं। खगोल की खाक छानकर ३–४ उपग्रहों को ढूंढ लिया तो क्या किया ? । क्या इन आधुनिक स्पुतनिकों की तुलना अतीत के उस स्पुत्तानिक से की जा सकती है– जिसे विश्वामित्र ने स्थापित किया था (त्रिशंकु) और अद्यावधि वह ब्रह्माण्ड मे अवस्थित है ? । एतदर्थ हमारा प्राचीन साहित्य 'प्राचीन' के नाम पर सर्वथा उपेक्षायोग्य नहीं है, अपितु वह हमारे पथ का प्रकाश किरण है। जिसके मार्ग दर्शन मे सफलता की काफी सम्भावना है।

सूर्य पथ का केन्द्र

इसी उद्देश्य से मैने अद्यावधि जो कुछ भी कार्य किया है, उसमे मैने आधुनिक मतों, उपकरणों के साथ-साथ अपने पुरातन साहित्य का आश्रय भी अवश्य ही किया है और इन प्रश्नों के बारे म भी सयोग ने मुझे पर्याप्त साहित्य मिला है। सूर्य के केन्द्र बिन्दु के सम्बन्ध मे अनेक ग्रथो मे एक ही तथ्य की पुष्टि की गई है, वह तथ्य है—

'तस्मिन्नृक्षे कृतमूलो द्वितीयोक्ष—
तुर्यमानेनसम्मित स्तैल यंत्रवत्,
ध्रुव कृति परिभाग: ।

इससे सिद्ध होता है कि सूर्य ध्रुव से काफी नीचे रहकर ध्रुव की परिक्रमा करता है और लगभग २५,५६० वर्षों में एक परिक्रमापूर्ण होगी।

इसी प्रश्न के साथ सम्पात-चलन सम्बन्धी दूसरे प्रश्न का समाधान भी हो जाता है। क्योंकि खगोल में ध्रुव बिन्दु से (उसे खगोल का केन्द्र मानकर) जिस रेखांश बिन्दुपर अपने कक्ष में सूर्य होगा उस रेखांश और उसके ठीक १८० अंश पर (विपरीत दिशा में) सम्पात होगा। अर्थात् जब पृथ्वी अपने पथ पर इस रेखांशों से जायगी, तब दिन-रात बराबर होंगे और सम्पात-रेखांशों से ९०।९० अंशों की दूरी पर दक्षिणायन (सब से लम्बा दिन) और उत्तरायन (सब से छोटा दिन) प्रारम्भ होता है।

वर्तमान समय में (यह परिवर्तन शील है) सूर्य की गति अपने कक्ष पर लगभग ५० विकला प्रतिवर्ष है और उसका पथ विपरीत क्रम (मीन, कुम्भ, मकर इत्यादि) से है। लगभग ७२ वर्षों में सूर्य एक अंश (एक दिन) चलता है, अत: सम्पात भी प्रतिवर्ष ५० विकला पीछे चल रहा है।

सृष्टयारम्भ काल में जहाँ पर वसन्त सम्पात हुआ था (रेवती नक्षत्र के अन्त एवं अश्विनी के आरम्भ पर) उसे आकाशीय गणना का आरम्भ स्थल अर्थात् शून्य रेखांश मानते हैं। आज से लगभग तीन हजार वर्ष पहले मुनि पराशर के काल में वसन्त सम्पात २३ २० रेखांश पर होता था तब सबसे छोटा दिन ६ फरवरी को और सबसे लम्बा दिन ९ अगस्त को होता था —

'अश्लेषार्धा दक्षिणमयनं, उत्तरं रवे धनिष्ठाद्यम्।'

किन्तु आजकल वसन्त सम्पात ३३६ रेखांश पर आ चुका है जिससे सबसे छोटा दिन (उत्तरायन) २२ दिसम्बर को और सबसे लम्बा दिन (दक्षिणायन) २१ जून को होता है।

ध्रुवत्व और ध्रुव तारा

केवल हमारी पृथ्वी का ध्रुवत्व ही ध्रुव नहीं है। अपितु सारे सौरमण्डल और राशिचक्र का ध्रुवत्व भी ध्रुव ही है। समस्त राशिचक्र एवं सौर मण्डल ध्रुव से आबद्ध होकर प्रवाह रूपी वायु के वेग से गतिशील है और ब्रह्माण्ड मध्यरेखा पर ध्रुव की परिवर्तनशील गति से क्रान्तिवृत्त मे २३ १/२ अंश का झुकाव है। उदाहरण के रूप में हजारों, लाखों लट्टूओं को तागे के सहारे एक ही कीली में ऊची छत पर बांध कर लटका दें और उस कीली को वहीं पर जोरों घुमाया जाय - परिणाम स्वरूप आप देखेंगे कि वेग से सभी लट्टू छिटक कर पृथक्-पृथक् वृत्ताकार घूमने लगेंगे, और ज्यों-ज्यों वेग बढ़ता जायगा, त्यों-त्यों केन्द्रबिन्दु से उनकी दूरी बढ़ती जायगी। इसी प्रकार राशिचक्र-ध्रुव से आबद्ध है, और वह ब्रह्माण्ड मे फैलता जा रहा है। वर्तमान में इस ब्रह्माण्ड का केन्द्रबिन्दु उस स्थान पर है जहाँ ध्रुव तारा है।

प्रत्यक्ष परीक्षण से भी इस मत की पुष्टि होती है। ब्रह्माण्ड में जिस दिशा को सूर्य का पथ है, उसी दिशा में राशिचक्र भी चलता प्रतीत होता है।

रहस्यमय ब्रह्माण्ड

(रेखांश स्थिर सम्पात बिन्दु से)

नक्षत्रपिण्ड		दो हजार वर्ष पहले		आजकल
रोहिणी	—	४९ अंश पर	— ४७	अंश
पुनर्वसु	--	९३ ,, ,,	-- ९०.३०	,,
मघा	—	१२९ ,, ,,	—१२६.३०	,,
चित्रा	—	१८० ,, ,,	—१७९	,,

इसी प्रकार अन्य तारे भी। यद्यपि सौर-मण्डल और राशिचक्र की गति एक ही दिशा में होने से अन्तर कम रहता है और गति अतिमध्यम रहती हैं, तथापि इससे गति सिद्ध हो जाती है।

ब्रह्माण्ड में सौर मण्डल

जिस ब्रह्माण्ड मे हम अवस्थित है, उसका आकार दो कटाहों के सम्पुट (दो कढ़ाइयों को सीधे और उलटे रख देने से बने गोलाकार) के समान है। किन्तु इस वृत्त के बाहर कोई आवरण नहीं है। इस गोलाकार शून्य में समस्त ज्योति: पिण्ड परस्पर आकर्षण शक्ति के सहारे निराधार लटके हुए है—

' नान्याधार: स्वशक्त या '

इस शून्याकार ब्रह्माण्ड वृत्त के ठीक मध्य मे (परिधि रेखा पर) आकाश की कक्षा है, इसी कक्षा में राशिचक्र तथा हमारा सौरमण्डल स्थित है—

कटाह द्वितयस्यैव मपुटागोलकाकृति: ।
ब्रह्माण्ड मध्य परिधि व्योमकक्षाभिधीयते ।
तन्मध्ये भ्रमणं भानां तदधोध: क्रमादथ ।।

वर्तमान मे आकाशकक्षा अथवा ब्रह्माण्ड के केन्द्रबिन्दु से लगभग ठीक ऊपर (शीर्षस्थ) ध्रुवतारा है, वह भी एक छोटे से वृत्त के रूप में गतिवान् है। ध्रुव और राशिचक्र की तुलना ऊँचे खम्भे पर लटकाये कांटे (ध्रुव) और तराजू के पलड़ों (राशि-चक्र) से की गई है।

उपरिस्थस्य महतीकक्षाल्याध:स्थितस्य च ।
महत्या कक्षया भागामहान्तोल्यास्तथाल्यया ।।

इसके बाद ब्रह्माण्ड मे किस स्थान पर सौर मण्डल एवं पृथ्वी की स्थिति है, इसके उत्तर में—

चतुरुत्तरोत्तरा:स्युर्विंशति भागा भवन्ति मेषाद्ये ।
मानमिहार्धे पूर्वे, मीनाद्येचोत्क्रमादर्द्धे ।।

अर्थात ब्रह्माण्ड में जिस बिन्दु से राशियों का विभाजन इस प्रकार हो—

मेष मीन, = २० अंश
वृष, कुम्भ = २४ अंश
मिथुन, मकर = २८ अंश
कर्क, धन = ३२ अंश
सिंह, वृश्चिक = ३६ अंश
कन्या, तुला = ४० अंश

वहीं पर सौरमण्डल स्थित है । इस कथन के दो अर्थ हो सकते है—

[अ] केन्द्रबिन्दु (ध्रुव) से सभी राशियाँ ३०।३० अंशों में विभाजित हैं, और सौर मण्डल से यह स्थिति है ।

[आ] सौरमण्डल बिन्दु से राशियों का विभाजन ३०।३० अंशों में है, और ध्रुव से उक्त विभाजन है ।

किन्तु इससे एक बात तो एकदम स्पष्ट हो जाती है कि सूर्य का कक्ष ब्रह्माण्ड केन्द्रबिन्दु से ३० अंश की दूरी पर है । दिशा ज्ञान के लिये कुछ ऐसे तथ्य है, जिनसे प्रथम (अ) मत ठीक बैठता है । पुरातन साहित्य से भी प्रथम मत की हो पुष्टि होती है । दूसरी ओर पृथ्वी का ध्रुवत्व ध्रुवतारा होने से हमें आकाश का वही चित्र दृष्टिगोचर होता है, जैसा कि वह ध्रुव बिन्दु से है । तदनुसार सूर्य की वर्तमान स्थिति १५६ अंश पर कन्या राशि में है ।

इन तथ्यों से पृथ्वी—पथ के २३-१/२ अंश का झुकाव का कारण भी स्पष्ट हो जाता है । सूर्य से आबद्ध रहते भी पृथ्वी का पथ उसी रूप में होगा—जिस दिशा में ध्रुव से वृत्त बनेगा । क्योंकि पृथ्वी का ध्रुवत्व भी ध्रुव है । सूर्य और पृथ्वी इतने निकट हैं (९ करोड़ मील की दूरी विशाल ब्रह्माड के सामने कुछ भी नहीं है) उनका पृथक् बिन्दुओं में चित्रण नहीं हो सकता । यहां तक कि सम्पूर्ण सौरमण्डल को ही एक बिन्दु मानना पड़ेगा ।

पृथ्वी जब भूमध्य रेखा से उत्तर में रहती है तब, २३-१/२ अंश का कोण सूर्य से निकट में बन जायगा, एतदर्थ यह पथ छोटा (१७८ दिन) का होता है और दक्षिणायन में कुछ दूरी पर बनेगा, इसलिये पृथ्वी का दक्षिण पथ कुछ लम्बा (१८७ दिन) हो जाता है।

सम्पात के बारे में भारतीय साहित्य में सम्पात का पूर्ण भ्रमण नहीं होता, अपितु केवल कुछ अंशों में घूमता है।

सभी कुछ चलायमान

क्योंकि समस्त ब्रह्माण्ड चलायमान है, इसकारण ब्रह्माण्ड की कोई भी वस्तु, कोई भी बिन्दु स्थिर नहीं है। इसी प्रकार कोई संख्या भी जो ब्रह्माण्डीय गणना में आज सत्य है, कल बदल सकती है।

अयनांश की गति के बारे में ही पिछले दो हजार वर्षों में ४६ विकला से एक कला तक के मान प्राप्त होते हैं। सम्पात का पूर्ण भ्रमण भी विवादास्पद है। जिस तरह ब्रह्माण्ड का ध्रुवबिन्दु (केन्द्र बिन्दु) परिवर्तनशील है उसी तरह पृथ्वी का ध्रुवबिन्दु भी स्थिर नहीं है। कुछ विद्वानों का यह कथन कि कभी पृथ्वी का ध्रुवतत्र वहाँ पर था जहाँ आज हिमालय है। ऐसा भी उल्लेख है कि लंका की स्थिति भूमध्य रेखा पर है (ऐसा कभी रहा होगा अथवा लंका वर्तमान लंका से भिन्न होगी)। कहने का तात्पर्य यह है कि ब्रह्माण्ड सम्बन्धी कोई भी गणना सदैव एक समान स्थिर नहीं हो सकती।

आगामी वर्ष निर्णायक

अयनांश की परम गति के बारे में मतभेद है, सूर्य सिद्धान्त ने परमगति २७ अंश माना है। क्या सम्पात का पूर्ण भ्रमण होता है, क्या पृथ्वी के झुकाव और सम्पात में कोई परस्पर सम्बन्ध है? इसका निर्णय करने के निमित्त अब से पाँच सौ वर्षों के बाद निर्णायक समय होगा। यदि इस अवधि में सम्पात की गति विपरीत दशा में जाने लगती है तो ब्रह्माण्ड की इस पहेली का हल हो जायगा। जो भी हो समय समय पर विद्वानों को खगोलीय सिद्धान्तों में संशोधन करना ही पड़ेगा।

हमें प्राचीनता के नाम पर उसके सभी अंशों को ब्रह्मवाक्य नहीं मानना है, अपितु केवल उसका नवनीत ग्रहण करना है और साथ ही आधुनिक विज्ञान का भी सहारा लेना होगा, तभी हम ब्रह्माण्ड विषयक गहन प्रश्नों का उत्तर पा सकेंगे।

अधिमास का वैज्ञानिक विवेचन

पृथ्वी पर सौर वर्ष लगभग ३६५।१/४ दिन का तथा चन्द्रवर्ष ३५४ दिन ८ घंटा ४८ मि० ३६ सेकेन्ड का होता है, जिससे प्रतिवर्ष लगभग ११ दिन का अन्तर आ जाता है। परस्पर इस अन्तर में सामंजस्य लाने के लिए एक चान्द्र-मास (जो लगभग २९।। दिन का होता है) लगभग ३३ चान्द्रमासों के बाद जोड़ दिया जाता है, इसी का नाम "अधिमास" है, जो 'मलमास" या 'लोंध" भी कहा जाता है।

ज्योतिष एवं कालगणना पद्धति के बारे में विश्व, भारत का ऋणी है। कालगणना के जो सिद्धांत वैदिक आर्यों ने स्थिर किये थे वे आज भी विज्ञान सिद्ध एवं कसौटी पर खरे हैं। भारतीय कालगणना पद्धति से ही आधार लेकर आज विश्व के दूसरे कलेण्डर बने हैं। वैदिक साहित्य के अनुशीलन से स्पष्ट है कि चान्द्र मास तथा सौरमास सम्बन्धी निर्णय और अधिमास की कल्पना अतीव प्राचीन है। वैदिक काल में ही आर्यों ने चन्द्रमा के क्षय से लेकर पुन: चन्द्रमा के क्षय तक अथवा पूर्ण चन्द्रमा से दूसरे पूर्ण चन्द्रमा तक के काल को मास की संज्ञा दी होगी। उल्लेखनीय है कि चान्द्रमास वेदों में सदैव चन्द्र क्षय से दूसरे चन्द्र क्षय तक (अमावस्या से अमावस्या) माना है। लेकिन कालान्तर में सम्प्रति उत्तरी भारत में चन्द्रमास पूर्णचन्द्र से पूर्णचन्द्र तक (पौर्णमासी) प्रयुक्त होता है, जबकि देश के दक्षिण-पश्चिमी शेष भागों में अब भी प्राचीन परम्परा से अमान्त मास (अमावस्या से अमावस्या) ही प्रचलित हैं। सौर मासों की अपेक्षा चान्द्र मास वेदों में प्राचीन है, लेकिन इसके साथ ही उन्हें सौरमासों का भी सम्यक् ज्ञान था। वेदों में चान्द्रमासों के नाम चैत्र, वैशाख इत्यादि प्रचलित नाम ही मिलते हैं :—

'फाल्गुन्यां पौर्णमास्यां' (गोपथ ब्रा० ६।१९)

'फाल्गुनी पौर्णमासी' (शतपथ ब्रा० ६।२।२।१८)

'चित्रा पूर्णमासे' (तैत्तरीय सं० ७।४।८)

सौरमासों के नाम मधु, माधव शुक्र, शुचि इत्यादि प्रयुक्त हुए हैं। सौर-वर्ष तथा सौर मासों की कल्पना भी वैदिक महर्षियों ने पृथ्वी के (सूर्य के) एक परिभ्रमण काल के अनुसार ऋतु परिवर्तन से की होगी।

वेदों में मास बारह ही मुख्यत: माने हैं :—

"वेदमासो धृतव्रतो द्वादशप्रजावत:" —ऋ० सं० १।२५।८

"द्वादशारं न हि तज्जराय" —ऋ० सं० १।१६४।११

"द्वाशमासा: सम्वत्सर:" – तै० सं० ५ ६।७

किन्तु अधिमास के रूप में तेरह महीनों को भी स्वीकृत किया गया है, जिसका उल्लेख बारह महीनों के साथ ही अनेक स्थलों पर है, जैसे :—

"स्यात् त्रयोदश माला: सम्वत्सर:" —तै. सं० ५।६।७

"तस्य त्रयोदशो मासो विष्टपं" —तै० ब्रा० ३।८।३

"तंत्रयोदशमासादक्रीणंस्तस्मात् त्रयोदशो मासो नानुविद्यते।"

— ऐ ब्रा० ६।१

इस प्रकार सम्प्रति प्रचलित व्यवस्था के अनुसार ऐतरेय ब्राह्मण में त्रयोदशमास को निन्द्य भी कहा है।

अधिमास के साथ क्षयमास का भी सम्बन्ध है। अधिमास के लिए 'अहंसस्पति" "अहस्पति" 'संसर्प' 'मलिम्लुच" नाम आये हैं—

"ससर्पोस्यहंस्पत्याय त्वा" — तै० सं० १।४।१४

"तपस्याय अहंस्पतये त्वा" —वा० सं० ७।३०

"तपस्याय स्वाहाहंसस्पतये स्वाहा" — वा० सं० २२।३१

इसके पश्चात 'वेदांग-ज्योतिष" में (जिसका काल अविदित है) अधिमास का नाम तथा उसकी गणना का सविस्तार उल्लेख है।

'मध्ये चांते चाधिमासको' इत्यादि।

वेदांग ज्योतिष को प्रो० मैक्स-मूलर ने ईस्वी पूर्व तीसरी शताब्दि का माना है जबकि अन्य कुछ लोग ईस्वी की तीसरी से पांचवीं शताब्दि का मानते है।

अहंसस्पति, संसर्य, मलिम्लुच यह नाम अधिमास के लिए तथा "अहंस्पति" क्षयमास के लिए प्रयुक्त हुआ है, ऐसा भी कुछ विद्वान मानते है, लेकिन यह निश्चय नहीं कहा जा सकता।

वेदों में अधिमास, क्षयमास की गणना को देखकर विदित होता है कि हमारे यहां प्राचीन काल से ही इस प्रकार सुव्यवस्थित पंचांग एवं कलेण्डर का निर्माण हो चुका था, यह बड़े महत्व और गौरव का विषय है। सबसे बड़ी बात यह है कि इतने दीर्घकाल में भी इसमें अभी तक कोई त्रुटि नहीं हो पायी है। यूरोपियन विद्वान भी यह बात स्वीकार करते हैं कि हमारे जिन ग्रंथों में अधिमासका उल्लेख आया है, उनकी रचना कम से कम १५०० वर्ष ईस्वी पूर्व की है। इससे सिद्ध होता है कि उन्हें (वैदिक महर्षियों को) उस समय ही अधिमास आदि का पूर्णज्ञान था और वे लोग इसे साधारण सा विषय मानने लगे थे।

जहाँ तक पाश्चात्य जगत की बात है, प्राचीन रोमन राष्ट्र में, जो एक सबल और उन्नतिशील राष्ट्र समझा जाता था, बहुत दिनों तक वर्ष में दस ही मास मानते थे। इस्लाम मतावलम्बियों का हिजरी कलेण्डर प्रत्यक्षत: वैदिक चान्द्रमास पर आधारित है केवल मासारम्भ में एक या दो दिन का अन्तर है जो कि चन्द्रोदय से चलने वाले वैदिक "चान्द्रायण" की प्रतिकृत्ति है। केवल उसमें अधिमासों की मान्यता नहीं है जिससे हिजरी वर्ष में प्रति ढाई वर्ष बाद एक मास का अन्तर, पड़ जाता है। और बारों (दिनों) के बारे में तो क्या हिजरी, क्या ग्रेगोरियन दोनों कलेण्डर वेदों के ऋणी है। अंग्रेजी कलेण्डर के अधिकांश नाम भी वैदिक शब्दों के ही अपभ्रंश है।

पाश्चात्य कलेण्डरों में सौरमास और चान्द्रमासों का तारतम्य न होने से बहुधा अन्तर पड़ जाना स्वाभाविक है जैसे प्रत्येक ढाई वर्ष के बाद एक-एक मास का अन्तर पड़ते-पड़ते अन्तत: इतना अन्तर हो जाता है कि मोहर्रम कभी जाड़ों में होता है तो कभी ग्रीष्म में। ग्रेगोरियन कलेण्डर यद्यपि सौर प्रणाली से बना है तथापि १७५२ ई० तक इसमें भी ११ दिन का अन्तर आ गया था अत: पोप ग्रेगरी ने राजाज्ञा द्वारा ३ सितम्बर के दिन १४ सितम्बर मानने की आज्ञा देकर ११ दिन उडा दिये, तभी से इसका नाम "ग्रेगोरियन" कलेण्डर पड़ा। लेकिन अब भी १७५२ से अब तक २ दिन का और अन्तर पड़ चुका है। वास्तव में बड़ा दिन अब २३ दिसम्बर को हो जाता है, जबकि वह २५ को माना जाता है। भारतीय विद्वान सौर पद्धति में पडने वाने वाले इस अन्तर से भी परिचित थे, जिसके लिए उन्होने स्वाभाविक रूप मे "अयनांश" की कल्पना की है।

"अधिमास" मासों के यथाक्रम न होकर एक परिशिष्ट एवं पूरक के रूप में जोड़े जाने के कारण अन्य मासों की तुलना में निम्न कोटि का माना जाता है। अन्य मासों से अपने को निम्न स्थान मिलने पर अधिमास का भगवान से रोना पुराणों में मनोरंजक कथानक के रूप में कल्पित है।

क्षय-मास

क्षय मास कई वर्षों में आता है, पिछली बार सम्वत् २०२० में १४१ वर्षो बाद क्षय मास पड़ा था। सामान्यत: सौरमास चान्द्रमास से बडा होता है, लेकिन बहुत वर्षों में चन्द्रमा, सूर्य तथा पृथ्वी की गति के कारण कभी ऐसा भी होता है कि सौरमास से कोई चान्द्रमास बड़ा हो जाता है, इस प्रकार सौरमास का घटकर चान्द्रमास से छोटा हो जाना प्रकृति विरूद्ध मानकर एक चान्द्रमास का लोप कर देते हैं और यह छोटा सौरमास "क्षयमास" के नाम से कहा जाता है, जो प्रकृति विरूद्ध होने से शुभ नहीं माना जाता। लेकिन एक चान्द्रमास का लोप होने से जो वर्ष में दिनों की कमी पड़ती है, उसे एक "अधिमास" जोड़कर पूरा कर लेते हैं। यह उल्लेखनीय है कि क्षयमास अधिमास वाले वर्ष ही होता है अत: एक अधिमास स्वाभाविक और दूसरा क्षयमास का पूरक-इस प्रकार क्षयमास के वर्ष में एक वर्ष के अन्दर दो अधिमास होते हैं।

धूमकेतु : भारतीय महर्षियों का अनुसंधान

२१, अक्टूबर ६५ को २५० मील प्रति सेकिण्ड से चलने वाला 'इकेया सेकी' नामक पुच्छल तारा जिसकी पूंछ एक करोड़ मील लम्बी थी, सूर्य मण्डल के समीप पहुँचकर खण्डित हो टुकड़ों में विभाजित हो गया। आधुनिक विज्ञान के अनुसार (भारतीय साहित्य में ऐसे ३३ पुच्छलतारों का उल्लेख है) मानव की स्मृति में अब तक ऐसे ६ धूम्रकेतु सूय के निकट पहुँचे थे, लेकिन वे सब केवल सूर्य का चक्कर लगाकर सौर परिवार से बहुत दूर अन्तरिक्ष में विलीन हो गये थे। सूर्य के निकट जाने वाला यह सातवाँ धूमकेतु था, जो सूर्य का चक्कर लगाकर बाहर जाने के बजाय सूर्य के परिमण्डल से जहाँ विद्युत और चुम्बकीय क्षेत्र अन्तरग्रहीय अन्तरिक्ष से भिन्न हैं, टकराकर बिखर गया। इसके प्रति ऐसा भी अनुमान था कि यह शायद सूर्य से टकराकर सूर्य के प्रज्वलित महासागर में समा जायगा। वैज्ञानिकों के लिये यह अभूतपूर्व घटना थी, जिसको देखने के लिये सोवियत रूस जापान न्यूजीलैण्ड तथा आस्ट्रेलिया के वैज्ञानिक वेधशालाओं में सक्रिय थे। इस पुच्छल तारे का पता सर्वप्रथम शौकिया ज्योतिर्विद श्री काओरु काइकेया और त्सुतोमू ने लगाया था। इसके पहले ऐसा ही पुच्छल तारा १८८२ में सूर्य का चक्कर काटकर निकल गया था।

ज्योतिर्विज्ञान के अनुसार सौर मण्डल की इन घटनाओं का प्रभाव सौर परिवार की सदस्या पृथ्वी पर भी अवश्य पड़ता है। यद्यपि स्थूल रूप से यह बात हास्यास्पद ही लगती है लेकिन केवल पुरानी मान्यताओं से ही नहीं अपितु आधुनिक विज्ञान से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है विज्ञान वेत्ता मानते है कि धूमकेतु की गैसों के पर्याप्त अंश का आयनीकरण हो जाता है अर्थात् उनका प्लाज्मा बन जाता है। इसलिये यह सम्भव है कि सूर्य परिमण्डल में धूमकेतु के प्रवेश से परिमण्डल के विकिरण पर कुछ प्रभाव पडेगा। और उसका प्रभाव पृथ्वी तथा उसके चराचरों पर भी अवश्यम्भावी है। सोवियत रूस के प्रख्यात गणित तथा भौतिक शास्त्र के विद्वान डा० बी० लेविन ने 'इजवेस्तिया' समाचार पत्र के १२ अक्टूबर ६५ के अंक में लिखा है—इस बात की सम्भावना है कि इस टकराव से ऐसी घटनायें घटित हों जिसका पूर्व अनुमान न किया जा सके।

भारतीय संस्कृत साहित्य में भी इस विषय पर पर्याप्त साहित्य है। गर्ग, पराशर, देवल, कश्यप, नारद आदि ने इस पर पर्याप्त अनुसंधान किया है। महर्षि वशिष्ठ ने लिखा है—

राहो:सुतास्तामस कीलकाख्या: कबन्ध काकोष्ट्र शृगाल रूपा: ।
यदा रवेर्मण्डलगास्तदानी मातंगभूपाहव भीतिदास्यु: ॥
छत्रध्वजे भांकुश गोवृषाश्व, दंडास्त्रसिंहासनभद्ररूपा: ।
दृष्टा रवेर्मण्डलगा यदा ते, जगद्विपत्तीतिभयप्रदा स्यु: ॥

तामस कीलक संज्ञा राहुसुता: सूर्यमण्डले दृष्टा: ।

आचार्य वराहमिहिर ने लिखा है —

तामस कीलक संज्ञा राहुसुता: केतवस्त्रयस्त्रिंशत् ।
वर्णस्थानाकारैस्तान् दृष्ट्वार्के फलं ब्रूयात् ॥

मेरे विचार से पुच्छलतारे के दर्शन प्राय: प्रत्येक व्यक्ति ने किये होंगे, और नाम तो अवश्य ही सुना होगा। इसे धूमकेतु पुच्छलतारा अथवा झाड़तारा कहा जाता है और अंग्रेजी में COMET कहते हैं। किन्तु क्या आप यह जानते हैं कि पुच्छलतारा क्या है ? उनका स्थान और गति क्या है ?, क्या वे लौटकर आते हैं ? क्या उनके उदय का कोई समय है ? निश्चय पथ का अभाव क्यों है ? क्या सभी ग्रहों के पृथक २ पुच्छलतारे हैं ? अब तक पता चले पुच्छलतारों की कितनी संख्या है ? सौरमण्डल से बाहर कितने पुच्छल तारे हैं, पुच्छलतारों के अन्वेषक कौन हैं ? क्या पुच्छल तारे शुभफल भी करते हैं ?

हमारे आकाश में केवल ग्रह तथा तारे ही नहीं हैं, अपितु कई अन्य पिण्ड भी हैं। पृथ्वी से जो पिण्ड अपने नियत स्थानों पर नियत समय पर नियत मार्ग मे घूमते दिखलाई देते है, वे ग्रह कहलाते हैं। किन्तु ब्रह्माण्ड में अनेक पिण्ड इस प्रकार के भी हैं, जिनका न तो कोई नियत मार्ग है, और न नियत स्थान। ये सभी सौर-मण्डल तथा ब्रह्माण्ड में यत्र तत्र निरुद्देश्य घूमते रहते हैं। इनके भी दो विभाग है *(अ)* उल्का, *(आ)* पुच्छलतारे।

पुच्छलतारा क्यों ?

इस पिण्ड की बनावट इस प्रकार होती है कि एक तरफ बड़ा सिर होता है और दूसरी ओर एक लम्बी पूंछ, इसी कारण इसे पुच्छलतारा कहते हैं। संस्कृत साहित्य में इसे धूमकेतु कहा गया है, धूम = धुआं, केतु = ध्वजा या पूंछ) अर्थात धुआं के समान वर्णमाला पूंछ सहित।

धूमकेतु पुच्छलतारा क्या है ?

जिस समय ब्रह्माण्ड में ग्रहों, तारों और सौरमण्डल की रचना हुई वे सभी गैस (तरल) रूप में थे इसी गैस से जब ग्रहों और तारों की रचना हुई तो उस तरल पदार्थ का कुछ भाग संगठित न हो सका। जिस प्रकार जहाँ कोई पुल, मकान आदि बनाया जाता है, कुछ ईंटें, बालू शेष बिखरी रह जाती हैं, उसी प्रकार उस तरल पदार्थ का कुछ अंश शेष रह गया, उसी का स्वरूप पुच्छल तारा है। कालान्तर में इनमें भी कुछ टुकड़े ठोस रूप में परिवर्तित हो गये और उन्होंने अपना प्रकाश खो दिया। उन्हें उल्का कहा जाता है।

ज्योतिष शास्त्र के नियमानुसार मंगल तथा बृहस्पति के बीच एक अन्य ग्रह होना चाहिए था पर है नहीं। सन १८०१ ई० में दूरवीक्षण यंत्र से पता चला है कि वास्तव में इन दोनों के बीच ग्रह बनने के तरल तत्व मौजूद थे—किन्तु वह संगठित होकर ग्रह रूप में एक पिण्ड नहीं बन सका। आज उस तरल पदार्थ के ४०० टुकड़े बन गये हैं जो आज ठोस रूप में है। इसी प्रकार उल्का और पुच्छल तारों की सृष्टि होती है।

पुच्छलतारों का स्थान और गति

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, पुच्छल तारों का कोई स्थान या मार्ग नियत नहीं है। धूमकेतु कभी तो हमारे पृथ्वी के निकट आ जाते हैं, और कभी अदृश्य हो जाते हैं। बहुत से इनमें सीधी गति से घूमते हैं और बहुत से वक्र (उलटे) गति से। भिन्न-भिन्न पुच्छलतारों का एक अपना केन्द्र होता है, प्राय: वे उसी की परिक्रमा करते हैं—किन्तु उनका पथ नियत नहीं है। धूमकेतुओं का पथ वृत्ताकार न होकर वलयाकार होता है और कभी-कभी वे सौरमण्डल का भी अतिक्रमण कर जाते हैं।

कभी लौटकर नहीं आते

कुछेक धूमकेतु इस प्रकार के भी हैं, जो एक बार हमें अपनी झाँकी दिखलाकर लुप्त हो जाते हैं, फिर कभी लौटकर नहीं आते। प्राय: यह सौरमण्डल में प्रविष्ठ होकर सूर्य के चारों ओर एक परिक्रमा करके अनन्त की ओर सौरमण्डल से बाहर चले जाते है, सम्भवत: सदा के लिये।

नियतकालीन धूमकेतु

प्राय: अधिकांश धूमकेतु किसी नियम विशेष के अनुसार धीरे धीरे हमारे सम्मुख नहीं आते, किन्तु वे अकस्मात दिखाई देते हैं और कई दिनों तक लगातार आकाश में अपने परिवर्तनशील स्वरूप के दर्शन कराकर वेग से सूर्य के समीप गमन करता है, फिर थोड़े दिनों के बाद सूर्य से दूर भागने लगता है और अकस्मात लुप्त हो जाता है।

कुछ पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार कुछेक पुच्छलतारे नियत समय में भी पुन: उदय होते हैं। जिनका समय सवा तीन वर्ष से ७६ वर्ष तक का है। उनके कथनानुसार हाली का पुच्छलतारा (तीन शताब्दि पूर्व हाली नामक व्यक्ति ने इसकी गणना की थी, इसी से इसे हाली का पुच्छलतारा कहते हैं। ७५ वर्ष में एक चक्कर काटता है, पिछली बार यह मई १९१० में दिखाई दिया था, और अब १९८५ में पुन: दृष्टिगोचर होगा। एन्की का पुच्छल तारा सवा तीन वर्ष में उदय होता है। इसके अलावा और भी समय-समय पर पुच्छलतारे दिखलाई देते हैं। पाठकों को याद होगा कि १९४८ ई० में बड़ा पुच्छलतारा दिखाई दिया था।

निश्चय पथ क्यों नहीं ?

शायद आप यह जानने को इच्छुक होंगे कि पुच्छलतारे का मार्ग नियत क्यों नहीं होता, जब कि ब्रह्माण्ड के प्रत्येक ग्रह और तारों का मार्ग नियत है। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, पुच्छलतारे तरल रूप में ही हैं, न कि ठोस रूप में। तथा वे गेंदनुमा वृत्ताकार न होकर चपटे आकार मे गैस (वायु) की तरह फैले हैं। इसी कारण वे हमें पूंछ युक्त दिखलाई देते हैं। क्योंकि इस प्रकार उनमें ठोस पदार्थ की मात्रा बहुत कम होती है, कभी-कभी तो पदार्थ की मात्रा पृथ्वी के पदार्थ के एक हजारवें नहीं, अपितु दस लाखवें भाग होती है—१ का दस लाखवां भाग।

पुच्छलतारों के तीन भाग

प्राय: पुच्छल तारे तीन भागों में विभक्त होते हैं—

(अ) नाभि

(आ) नाभ्यावरण

(इ) पुच्छ।

सिर के बीच का भाग जो कि बहुत गहरा होता है, उसे नाभि कहते हैं। पुच्छलतारे के सिर का व्यास (घेरा) कभी-कभी सूर्य के व्यास से भी अधिक

होता है, और सिर के भीतर का केन्द्र बिन्दु पृथ्वी के व्यास के बराबर होता है।

नाभि के आसपास जो हलका भाग होता है। वह नाभ्यावरण है, तथा दूर तक फैला हुआ धुंधला भाग पुच्छ है।

सभी ग्रहों के पुच्छल तारे

भारतीय महर्षि अपने अनुसंधान से इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि सभी ग्रहों एवं तारों के अपने अपने पुच्छल तारे हैं जैसे कि उपग्रह चन्द्रमा है। प्रत्येक ग्रह का जब निर्माण हुआ तब शेष पदार्थ के सभी ग्रहों से उल्का व पुच्छल तारे बने, और बाद में भी इन तारों ग्रहों में विस्फोट होने से भी उल्का व पुच्छल-तारों का जन्म हुआ। इस प्रकार पृथ्वी, बुध, शुक्र, चन्द्रमा, मंगल, बृहस्पति, शनि सूर्य सभी के पुच्छल तारे हैं। प्रत्येक ग्रह के पुच्छल तारों का केन्द्र वही होता है जिससे उसका निर्माण हुआ हो।

यथा सूर्य से उत्पन्न पुच्छलतारों का केन्द्र बिन्दु सूर्य ही है।

सम्भव है, आज तक बहुत से ग्रहों के पुच्छल तारे नष्ट हो चुके हों, उल्का रूप में परिवर्तित हो गये हों। यह भी सम्भव है कि बृहस्पति, मंगल, शनि में जो उपग्रह (जिन्हें इन ग्रहों के चन्द्रमा कहते हैं—बृहस्पति के ८, मंगल के २, शनि के १०) हैं, उनका निर्माण इन्हीं से हुआ हो।

सौरमण्डल के धूमकेतु

भारतीय महर्षियों ने पुच्छल तारों के सम्बन्ध में काफी अध्ययन किया है, और जिन पुच्छल तारों का उन्हें पता चला, उन्हें उन्होंने दो भागों में विभक्त किया है—

(अ) सौर मण्डलीय।

(आ) इससे अन्य।

सौर मण्डलीय धूमकेतु वे हैं जो सौरमण्डल के ही अन्तर्गत है। तथा सौर मण्डल से बाहर ब्रह्मांड में जो धूमकेतु हैं वे पृथक है।

सौर मण्डलीय धूमकेतुओं की संख्या निम्न प्रकार से है—

(अ) सूर्य जनित—२५ केतु सूर्य से उत्पन्न है, जिनका केन्द्र बिन्दू सूर्य है, यह मोती अथवा चन्द्रकान्ता मणि के समान स्वच्छ वर्ण के होते हैं, पूर्व या पश्चिम दिशा में दिखलाई देते हैं।

'हेली' ने १८३५ में जिस पुच्छल तारे की गति गणना की वह इन्हीं में से एक धूमकेतु था।

(आ) तमोह्य अथवा राहूभूत—इनका नाम 'तामस' और 'कीलक' है, यह संख्या में ३३ हैं। इनमें कोई चमक नहीं है, अपितु यह सभी अन्धकारमय काले धब्बे हैं, इनका भी केन्द्र बिन्दु सूर्य ही है।

आधुनिक वैज्ञानिक इन्हें पुच्छलतारा न कहकर रजोवलय (अरोरा बेरेलिस) कहते हैं। पाठकों को ज्ञात होगा कि इधर कई बार इनका प्रभाव सूर्य मण्डल पर हो चुका है, जब समस्त वायविक एवं रेडियो व्यवहार कुछ क्षण के हेतु रुक गये थे।

महर्षियों ने कहा है—इन तामस कीलकों के उदय होने पर नदी, तड़ाग आदि का जल स्वत: बिना किसी कारण के कलुष (गदला) हो जाता है। आकाश में धूल छा जाती है। पर्वत और वृक्ष, गृहों को हिला देने वाली धूलि सहित प्रचण्ड हवा चलती है। ऋतु विपर्यय हो जाता है। मृग, पक्षी पशु आदि सूर्य की ओर मुख करके रूखे शब्द बोलते है, दिशायें काली हो जाती हैं, पवन के घर्षण से शब्द (निर्घात) होते हैं इत्यादि।

तेषामुदयेरूपाण्यम्भ: कलुषं रजोवृत्तं व्योम।
नग तरु शिखरामर्दी, सशर्करो मारुतश्चण्ड: ॥
ऋतुविपरीतास्तरुवो, दीप्तामृगपक्षिणो दिशां दाहा।
निर्घात महीकम्पादयो, भवन्त्यत्र चोत्पाता: ॥

उपर्युक्त चिन्ह रजोवलय व्याप्त होने के चिन्हों से मिलते हैं, इससे इस बात की भी पुष्टि हो जाती है कि भारतीय महर्षियों को रजोवलयों (अरोरा बेरेलिस) का भी पता था और उन्होंने इस विषय पर भी सम्यक विचार किया था।

(इ) चन्द्रमा से उत्पन्न—चांदी, हिम के सदृश स्वच्छ ३ केतु चन्द्रमा से उत्पन्न हैं, जिनका उदय उत्तर में होता है।

(ई) शुक्र के—८४ धूमकेतु शुक्र से उत्पन्न हैं, जो उत्तर या ईशान में उदय होते हैं, इनकी नाभि बहुत बड़ी, और देखने में तेज होते हैं, वर्ण सफेद होता है।

(उ) शनि के—यह पुच्छल तारे किसी भी दिशा में दिखलाई दे सकते हैं। इनकी ज्योति स्निग्ध होती है, तथा दो शिखा होती हैं। इनकी संख्या ६० है।

(ऊ) बृहस्पति के—बृहस्पति से उत्पन्न ६५ केतु हैं जो दक्षिण में उदय होते हैं, इनकी शिखा नहीं होती।

(ए) बुध के—इक्यावन केतु बुध के हैं, ये मोटे नहीं होते, सफेद वर्ण के लम्बे आकार के होते हैं तथा किसी भी दिशा में उदय हो सकते हैं।

(ऐ) मंगल से उत्पन्न ६० धूमकेतु हैं यह मंगल के समान ही लाल वर्ण के होते हैं, इनकी तीन शिखा होती है इनका उदय उत्तर दिशा में होता है।

(ओ) दर्पण की भाँति वृत्ताकार, शिखा रहित, किरणों से युक्त, जल या तेल के वर्ण के २२ धूमकेतु अतीत में पृथ्वी से उत्पन्न हैं। इनका उदय ईशान कोण में होता है।

इस प्रकार कुल ४०३ धूमकेतु *(पुच्छलतारे)* सौर मण्डल में व्याप्त हैं।

सौरमण्डल से बाहर

उपर्युक्त विवरण सौरमण्डल के धूमकेतुओं का है। इनके अतिरिक्त बहुत से पुच्छल तारे सौरमण्डल से बाहर भी हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है :—

(अ) तोते की चोंच, गुलदुपहर का फूल, रक्त के समान लाल रंग के २५ पुच्छल तारे अग्नि से उत्पन्न हैं, *(*भारतीय ज्योतिर्वैज्ञानिक वर्तमान सम्पात से आकाश में ७६वें रेखांश पर तथा क्रान्तिवृत्त से ८ अंश उत्तर में स्थित ग्रह को 'अग्नि' कहते हैं इनकी उत्पत्ति उसी से मानी गई है।) जो आग्नेय दिशा में उदय होते हैं।

(आ) इसी अग्नि नामक तारे से उत्पन्न १२० अन्य पुच्छल तारे भी हैं, यह भी आग्नेय में उदय होते हैं, इनका पुच्छल तारा उनसे अधिक तेजवान होता है।

(इ) टेढ़ी शिखा वाले, रूखे, तथा कृष्ण एवं नीले वर्ण के २५ केतु 'मूल' नामक नक्षत्रमण्डल से उत्पन्न हैं *(*२६५ रेखांश पर क्रान्तिवृत्त से ८ अंश दक्षिण में स्थित है) इनका उदय दक्षिण दिशा ही में होता है।

(ई) चामर के तुल्य अर्थात् शिखा रहित केवल पूंछ वाले रूखे वर्ण के, बैंगनी रंग के समान ज्योति के, चारों ओर किरण फैलाये ७७ पुच्छलतारे प्रसिद्ध स्वाती नामक तारे से उत्पन्न हैं। इनका उदय किसी भी दिशा में हो सकता है।

(उ) अन्य तारों के ही समान आठ ८ पुच्छलतारे प्रजापति नामक प्रसिद्ध तारे *(*८४ रेखांश एवं ३९ उत्तर में स्थित*)* से उत्पन्न हैं।

(ऊ) चौकोर रूप में दिखलाई देने वाले २०४ धूमकेतु सम्भवत: रोहिणी नामक प्रसिद्ध नक्षत्र से उत्पन्न हैं।

(ए) चन्द्रमा के समान कान्ति वाले बांसे के पिड़े के समान ३२ पुच्छलतारे प्रसिद्ध शतभिषा नामक तारे से उत्पन्न हैं।

(ऐ) शिर कटे पुरुष के समान आकार वाले, जिनकी तारा साफ नहीं होती है, ९६ पुच्छल तारे प्रसिद्ध भरणी तारे से उत्पन्न हैं। इस प्रकार कुल संख्या ५८७ है।

अज्ञात पुच्छल तारे

इतने पुच्छल तारों के उत्पत्ति के सम्बन्ध में तो भारतीय वैज्ञानिकों को सफलता मिल चुकी है, किन्तु इनके अलावा और भी बहुत पुच्छल केतुओं का उन्हें पता चला, उनका भी उन्होंने गहरा अध्ययन किया, किन्तु यह निश्चय नहीं हो पाया कि इनकी उत्पत्ति किस तारे एवं ग्रह से है? एतदर्थ उनके काल्पनिक नाम रख कर उन्होंने उनका अध्ययन किया—

(अ) वसाकेतु—यह पश्चिम में उदय होता है, उत्तर को दीर्घ होता है, आकार में बड़ा तथा निर्मल स्वरूप होता है। कोई इसे सौम्यकेतु कहते हैं।

(आ) अस्थिकेतु—यह स्वरूप में रूखा होता है, अन्य लक्षण वसाकेतु के ही समान हैं।

(इ) शस्त्रकेतु—इसके लक्षण वसाकेतु के ही समान हैं किन्तु इसका उदय पश्चिम में न होकर पूर्व में होता है। कुछ महर्षि इसको याम्य केतु कहते हैं।

(ई) कपालकेतु—अमावास्या के दिन पूर्व में उदय होता है, धूम्र वर्ण का होता है, आकार में आधे आकाश तक लम्बायमान होता है।

(उ) रौद्रकेतु—पूर्व में उदय होता है, तारे की शिखा त्रिशूल के समान होती है, देखने में रूखा, और तांबे के समान लाल वर्ण की किरणें होती हैं, आकाश में तिहाई भाग तक लम्बायमान होता है तथा यह पूर्वाषाढ़ा अथवा उत्तराषाढ़ा नक्षत्रमण्डल में ही दिखाई देता है, अन्यत्र नहीं।

(ऊ) चलकेतु—पश्चिम में उदय होता है, शिखा एक अंगुल ऊंची, तथा शिखा का अग्रभाग दक्षिण को होता है, इसकी गति उत्तर को होती है, यह

अभिजित नक्षत्र मण्डल तथा पुष्तर्षि मण्डल तक आकर वापस लौटता है। आधे आकाश में आकर दक्षिण दिशा में लुप्त होता है।

(ए) श्वेतकेतु –अर्धरात्रि के समय पूर्व में उदय होता है बैल जोतने के जुये के समान आकर होता है, अर्थात एक शिखा का अग्रभाग दक्षिण को एक का पश्चिम को (दो शिखा वाला होता है। कुछ लोगों के मत से एक पूर्व में उदय होता है और एक पश्चिम में, दोनों एक साथ यह सात दिन तक दिखाई देते हैं।

(ऐ) अन्य श्वेतकेतु-श्वेतकेतु एक दूसरा भी है बैंगनीवर्ण का तथा रूखा, आकाश में १/३ भाग तकचलता है, अन्त में बायों तरफ घूमकर लौटता है।

(ओ) रश्मिकेतु—थोड़ी सी धुंधल इसकी शिखा होती है, आकाश में कृतिका नक्षत्र के पास दिखलाई देता है।

(औ) कुमुदकेतु—श्वेतवर्ण का केवल एक रात्रि के निमित्त पश्चिम में उदय होता है। अथवा ६ दिन दिखता है।

(अं) मणिकेतु—पश्चिम में एक छोटे तारे से युक्त केवल कुछ घेरे या घंटे तक दिखलाई देता है, इसकी शिखा दु.धधारा के समान अत्यन्त्य शोभायमान होती है।

(अः) जलकेतु—स्निग्ध वर्ण का पश्चिम में उदय होता है इसकी शिखा भी पश्चिम को होती है।

(क) भवकेतु—सूक्ष्मतारा सहित पूर्व में उदय होता है, और केवल एक रात्रि ही दिखलाई देता है। इसकी शिखा सिंह पुच्छ के समान दक्षिण को घूमी हुई होती है।

(ख) पद्मकेतु—कमल की जड़ के समान शुक्लवर्ण पश्चिम में केवल एक रात्रि दृष्टिगोचर होता है।

(ग) आवर्तकेतु—लालवर्ण का पश्चिम दिशा में आधी रात के समय उदय होता है। शिखा दक्षिण को होती है।

(घ) सम्वर्त केतु—धुमैले एवं तांवे के समान वर्ण वाला सायंकाल के समय पश्चिम में दृष्टि गोचर होता है आकाश भाग तक लम्वायमान होता है। तथा इसकी तीन शिखा होती हैं।

(ङ) धूमकेतु—एक नियत स्थान पर कई दिनों तक दिखलाई देता है।

(च) नवकेतु—इसकी संख्या ९ है इनका उदय किसी दिशा में न होकर दिशाओं के मध्य-आग्नेय वायव्य आदि में होता है। इनमें शुक्ल वर्ण की एक बड़ी तारा होती है।

इस प्रकार सौरमण्डलीय, सौरमण्डल से बाहर तथा अज्ञात पुच्छलतारों को मिलाकर कुल १०१६ पुच्छल तारे हैं।

''सहस्रमपरे वदन्ति केतूनां''

पुच्छलतारों के अन्वेषक

जिन वैज्ञानिकों और महर्षियों ने अथक परिश्रमद्वारा इन पुच्छलतारों का अन्वेषण किया है, उनमें वशिष्ठ, गर्ग, पराशर, असित, देवल, कश्यप, ऋषिपुत्र, नारद तथा वज्र के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

यह एक साधारण बात नहीं है, इतने पुच्छल तारों का इतना गहन अध्ययन आज के साधन पूर्ण युग में होना भी सम्भव नहीं है। तब अपने साधारण उपकरणों से निरन्तर आकाश में दृष्टि लगाये, इनके उदय का स्थान, गति, दिशा, स्वरूप, वर्ण, उदय समय का अध्ययन किस प्रकार उन्होंने किया होगा? यह स्मरण आते ही श्रद्धा से नत मस्तक हो जाता है वास्तव में यह उनके अकथनीय साहस, उत्साह, प्रेम निष्ठा तथा बुद्धि वैभव का ज्वलन्त प्रमाण है, जैसा कि अवश्य ही एक ज्योतिर्वैज्ञानिक को होना चाहिए—

जगति प्रसारित मिवालिखित

मिवमती निषिक्तमिव हृदये

अर्थात ज्योतिर्वैज्ञानिक को इस प्रकार का होना चाहिये कि मानो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का चित्र उसके मस्तिष्क में खिच गया, मानो सारी विद्यायें उसकी जिह्वा में लिख दी हों, मानो सम्पूर्ण ज्ञान से उसका हृदय भर गया हो, वही ज्योतिर्वैज्ञानिक है।

भारतीय महर्षि उक्त कथन को पूर्णतः चरितार्थ करते हैं।

इन सब बातों के अलावा भारतीय महर्षियों ने प्रत्येक धूमकेतु का भूतल पर शुभाशुभ क्या प्रभाव होगा। इस विषय पर भी साधिकार अन्वेषण किया है।

युगान्तकर धूमकेतु

भारतीय महर्षियों की यह धारणा भी रही है कि युग के अन्त में एक ब्रह्मदण्ड अथवा विषय नामक धूमकेतु का उदय होता है। जिसके बारे में

उनका अनुमान है कि उसकी तीन शिखा होती हैं और प्रत्येक शिखा का वर्ण भिन्न २ होता है आकार में वह आकाश के भाग तक दीर्घ होता है, तथा उलटे और टेढ़े गति से चलता है, इस केतु के उदय होने पर सृष्टि की तिहाई भाग जनसंख्या नष्ट होने की कल्पना की गई है। तथा इसके उदय से पृथ्वी के भार, आकर्षण शक्ति में भी व्यवधान होता है—

ब्रह्मसुत एक एवत्रिशिखोवर्णैस्त्रिभिर्युगान्तकर: ।
केतुर्भूभारमपनयति ।
ऋजुवक्रगति कुरूते क्रमशो जगतस्त्रिभागहर: ।

धूमकेतु और समाज

आकाश में धूमकेतुओं का उदय महा अशुभ फल सूचक माना गया है यह धारणा केवल भारत ही में नहीं है अपितु विश्व में सर्वत्र लोगों के यही विचार रहे हैं। अभी १९४८ और १९५७ में पुच्छल तारा दिखलाई दिया था संयोगवश मई १९५७ में इस पुच्छल के अन्वेषण के लिये मैं नैनीताल गया था, उस स्थान पर इसके बारे में लोगों का कथन था कि—

एक ज्योतिषी ने लिखा है कि दुनिया की दो तिहाई आबादी नष्ट होगी और सात देशों के कर्णधार (राजा) मरेंगे।

सुना है कि यह तारा जापान के लोगों ने नकली बनाकर छोड़ा था, जो पंजाब में गिर गया है। इत्यादि अन्तत: उन्हें समझा बुझाकर भ्रान्त धारणा दूर की। वास्तव में यह सब अन्तर्गत बातें अल्पज्ञता व अज्ञान से फैलती है, और कुछ स्वार्थी नक्षत्र सूची भी प्रलोभन वश इन मिथ्या भविष्यवाणियों से जनता में आतंक व भय उत्पन्न करते है।

धूम केतु शुभ भी होते हैं

प्रत्येकधूमकेतु अशुभ ही होगा, यह बात आवश्यक नहीं है, प्राय: आधे से अधिक पुच्छल तारे शुभ फल सूचक (सुभिक्ष, सुख कर) होते हैं।

ह्रस्वस्तनु: प्रसन्न: स्निग्धस्त्वृजुरचिर संस्थित: शुक्ल: ।
उदितो वाप्यभिवृष्ट सुभिक्ष सौख्यावह: केतु: ।।

अर्थात् न बहुत लम्बा हो, न बहुत चौड़ा हो, निर्मल कान्ति हो सफेद वर्ण हो, थोड़े दिनों दृष्टिगोचर हो, जिसके उदय होने पर वर्षा हो जाय, वह धूमकेतु प्रजा में सुभिक्ष तथा सुख करता है।

धूमकेतु का प्रभाव शुभ होगा या अशुभ यह इन बातों पर निर्भर रहता है कि उसका उदय किस दिशा में हुआ है ? वर्ण क्या है, गति किस दिशा को है, और उदय काल क्या है ? पूर्वोक्त चिन्हों के विपरीत जो धूमकेतु हो उसका ही फल अशुभ हो सकता है—

उक्त विपरीत रूपो न शुभ करो धूमकेतुरुत्पन्न: ।
इन्द्रायुधानुकारी विशेषतोद्वित्रिचूलो वा ।।

अर्थात् टेढ़ा, धुंधले-धुमैले वर्ण का, लालवर्ण का, अतिदीर्घ, अथवा दो या तीन शिखा वाला धूमकेतु अशुभ होता है ।

शुभफलप्रद-धूमकेतु

पूर्वोक्त विवरण शुभाशुभ केतुओं को पहचानने का एक प्रकार है । भारतीय महर्षियों ने जिन धूमकेतुओं के बारे में अन्वेषण किया है उनके फलादेश का भी निर्णय कर दिया है, तदनुसार—

'सौरमण्डलीय पुच्छलतारों' में चन्द्रमा से उत्पन्न धूमकेतु शुभफल सूचक हैं । इनके बारे में कहा है —

'सुभिक्षावहा: शिखिन:'

अर्थात् यह धूमकेतु सुभिक्षकारक होते हैं ।

अज्ञात पुच्छल तारों में वसाकेतु' का फल शुभ तथा अशुभ मिश्रित है, लोक में रोगभय करता है, किन्तु सुभिक्ष करता है—

'सद्य:करोतिमरकंसुभिक्षमप्युत्तमं कुरुते ।'

इसी प्रकार श्वेतकेतु' का भी मिश्रित फल है, यदि यह केवल सात दिन तक दृष्टिगोचर हो, स्निग्ध हो तो कल्याणकारी और सुभिक्ष कारक है । इसके विपरीत रूक्ष हो, सात दिन से अधिक दृष्टिगोचर हो तो दश वर्ष तक शस्त्र-भय युद्ध आदि करता है ।

स्निग्धौ सुभिक्षशिवदौ तथाधिकं दृश्यते क नामाय: ।
दशवर्षाण्युपतापं जनयति शस्त्रकोपकृतम् ।

'कुमुदकेतु' के उदय होने पर दश वर्ष तक संसार में सुभिक्ष करता है —

दृष्ट:सुभिक्षमतुलंदश किल वर्षाणि स करोति ।

'मणिकेतु' और 'जलकेतु' सदैव शुभफल ही करते हैं ।

'उदयन्नेव सुभिक्षं चतुरोमासान्'

जलकेतुजल सदृश: सुभिक्षकरस्तुसर्वं जंतूनाम् ।
नवमासान्सुभिक्षं करोति शान्ति च लोकस्य ।।

'भवकेतु' का फल उसके वर्ण पर निर्भर है, स्निग्ध वर्ण हो तो जितने मुहूर्त (४८ मिनट का एक मुहूर्त होता है) दृष्टिगोचर हो उतने महीने सुभिक्ष करता है, और रूक्ष होने पर प्राणान्तक रोग करता है—

यावत एव मुहूर्तान्दर्शनमायाति निर्दिशेन्मासान् ।
तावदतुलं सुभिक्षं रूक्षे प्राणान्तिकान् रोगान् ।।

'पद्मकेतु' का उदय सात वर्ष तक सुभिक्ष कारक है ।

'सप्तकरोति सुभिक्षं वर्षाण्यतिहर्षायुक्तानि ।
क्षेमकरो नृपतीनां सुभिक्षद: सर्वं जंतूनाम् ।।

आवर्तकेतु' भी जितने मुहूर्तो तक उदय रहे, उतने मास तक सुभिक्ष करता है—

'यावत्क्षणान्सदृश्य स्तावन्तांसान्सुभिक्षकर' इत्यादि ।

इस प्रकार यह निश्चय हो जाता है कि पुच्छल तारे शुभ फल भी देते हैं, अत: सभी पुच्छल तारों को अशुभ मान लेना ठीक नहीं ।

अभी १९५७ में उदय हुए पुच्छल तारों का मैंने अध्ययन किया था, जो मई मास से सितम्बर तक दिखलाई दिया था, उसके दिशा, वर्ण, उदयकाल, गति के आधार पर मैंने उसे 'मणिकेतु' अथवा 'जलकेतु' माना था जिसका फल था कि इसके उदय होते ही सुभिक्ष व शान्ति हो, और इसके उदय होते ही आर्डन में शान्ति स्थापित हुई थी ।

अशुभ-धूमकेतु

शुभ केतुओं का उल्लेख करने के बाद अब हम अन्य अशुभफल सूचक धूमकेतुओं का जो फल भारतीय महर्षियों ने निश्चय किया है उससे अवगत करायेंगे । सौरमण्डलीय धूमकेतुओं में—

सूर्यजनित—परस्पर राजाओं से विरोध कराते हैं ।

तमोमय या राहुभूत—अशुभफल ही करते हैं ।

शुक्रजनित—अशुभफल करते हैं ।

शनिजनित—अत्यन्त अशुभफल करते हैं ।

बृहस्पति—
बुधजनित— } अशुभफल करते हैं।
मंगलजनित—

पृथ्वीजनित—दुर्भिक्ष करते हैं।

सौरमण्डल के बाहर—

अग्नि से उत्पन्न—अग्निभय करते हैं।

'मूल' नक्षत्र से उत्पन्न—महामारी भयकर।

'स्वाती' से उत्पन्न—अशुभफल।

प्रजापति से उत्पन्न—और रोहिणी से उत्पन्न भी अशुभ है।

शतभिषा और भरणी के उत्पन्न—महा अशुभफल देते हैं। अज्ञात पुच्छल तारों में—

अस्थिकेतु—दुर्भिक्ष (अकाल) करता है।

शस्त्रकेतु—शस्त्रभय, युद्ध, महामारी भय करता है।

कपालकेतु—] भी इसी प्रकार दुर्भिक्ष, महामारी, अनावृष्टि रोगभय
रौद्रकेतु—] कारक है।

चलकेतु—के उदय होने से ४ दिन बाद फल आरम्भ होता है, और दस महिने (कुछेक के मन से १८ महिने) तक फल होता है। 'प्रयाग से लेकर उज्जैन तक' इस प्रदेश में रोग और दुर्भिक्ष (अकाल) करता है।

अन्य श्वेतकेतु—तृतीयांश प्रजा शेष रहे दो तिहाई जनसमूह नष्ट हो। 'त्रिभाग शेषा: प्रजा: कुरुते।'

रश्मिकेतु—का फल ही इसी के समान है।

सम्वर्तकेतु—जितने मुहूर्त, जिस देश से दृष्टिगोचर हो, उस देश में उतने वर्ष तक युद्ध, रोग, दुर्भिक्ष करता है।

ध्रुवकेतु—जिस देश में, जिस व्यक्ति को दृष्टिगोचर हो, उनके हेतु अशुभ फल करता है।

नवकेतु—मिश्रित फल सूचक है।

पुच्छल तारे का फल पाक

पूर्वोक्त शुभाशुभ फल जो कि प्रत्येक पुच्छल तारे का निर्धारित किया गया है, एक निर्धारित समय पर ही होगा। शायद कुछ लोग यह अनुमान करें कि जिस तिथि से जिस तिथि तक उसके दर्शन हों, उक्त काल ही में उसका फल

हो जायगा। किन्तु ऐसा नहीं होता, क्योंकि ज्योतिर्विज्ञान के नियमानुसार उक्त तारे के उदय होने से कुछ काल बाद इस शुभाशुभ फल के बीज का सिंचन पृथ्वी पर होगा, और उसके परिपक्वता पर ही शुभ या अशुभ दृष्टिगोचर होगा। जैसे कि रोग भय सूचक पुच्छल तारे के उदय पर कुछ काल में ऋतु-विपर्यय द्वारा रोग उत्पन्न होने का वातावरण बनेगा, तब कुछ काल के बाद ही रोग फैलेंगे। इत्यादि।

इन्हीं आधारों पर भारतीय ज्योतिर्वैज्ञानिकों ने यह सिद्धान्त स्थापित किया है कि जितने दिनों तक पुच्छल तारा दिखलाई देगा, उतने महीनों तक उसका फल होगा। यदि पुच्छल तारा एक महीने से अधिक दिखलाई दे तो जितने महीने तक दृष्ट्रिगोचर हो। उतने वर्षों तक फल होगा, और उस फल का आरम्भ पुच्छल तारे के उदय दिन से ४५ दिन बाद आरम्भ होगा।'

यावन्त्यहानिदृश्यो, मासास्तावन्त एवं फल पाक: ।
मासैरब्दाश्चवेन्, प्रथमात्पक्षत्रयात्परत: ।।

मणिकेतु' के बारे में महर्षियों ने लिखा है कि वह उदय होने के दिन से ही अपना फल करता है' 'उदयमेव'।

पुच्छलतारों का उदय

इन पुच्छलतारों में कौन पुच्छल तारा कब, किस वर्ष दिखलाई देगा, यह निश्चय नहीं हो पाता। कुछेक पुच्छल तारे इस प्रकार के हैं, जिनके उदय काल के बारे में कुछ पता चलता है, पर अधिकांश पुच्छल तारों के सम्बन्ध में कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता। क्योंकि ब्रह्माण्ड में इनका मार्ग नियत नहीं है, और यह स्वतन्त्र घूमते हैं, इसी कारण भारतीय महर्षियों ने गणित के द्वारा पुच्छल तारों के उदय काल को जानना असम्भव बतलाया है जैसे कि सौर-मण्डल के अन्य ग्रहों का—

दर्शनमस्तमयोवा, नगणितविधिनाऽस्याशक्यते ज्ञातुम् ।।

एन्की का पुच्छल तारा प्रति सवातीन वर्ष बाद दृष्ट्रिगोचर होना चाहिए था, पर नहीं होता। इससे हमारे महर्षियों के मत की पुष्टि होती है।

आखिर ब्रह्माण्ड के सभी पदार्थों पर मानव-बुद्धि का अधिकार कैसे हो सकता है, जगदीश्वर के सन्मुख मानव को अपनी लघुता और क्षुद्रता का बोध तो होना ही चाहिए।

और अन्त में इन धूमकेतुओं के प्रति अथर्ववेद के शब्दों में हमारी भी प्रार्थना है कि वे विश्व के हेतु शान्तिकारक ही उदय हों—

'शन्नोमृत्युर्धूमकेतु:'

भूकम्प और ज्योतिष

भूकम्प कभी-कभी बड़े विनाशकारी भी होते हैं, लेकिन यह कोई नयी घटना नहीं है, इसका इतिहास भी उतना ही पुराना है जितनी कि सृष्टि है। आजकल तो भूकम्प यदा-कदा होते हैं लेकिन सृष्टि के आरम्भ में आये दिन बड़े-बड़े विनाशकारी भूकम्प आते होंगे। यहां तक कि भूकम्प से ही पहाड़ों के स्थान पर समुद्र और समुद्रों के स्थान पर पर्वत बन जाने तक का इतिहास पुरातत्व से सिद्ध होता है। कभी प्राचीन काल में वर्तमान हिमालय के स्थान पर समुद्र था ऐसा पुरातत्व एवं प्राचीन साहित्य से भी सिद्ध है, यह भारी परिवतन भूकम्प जैसी घटनाओं से ही हुए होंगे। विद्वानों का अनुमान है कि पर्वतीय क्षेत्र में बड़ी-बड़ी झीलें भूकम्प के उथल-पुथलों से ही निर्मित हुयी हैं। हिमालय की पहाड़ियों पर भूकम्प की उथल-पुथलों के चिह्न अभी भी देखे जा सकते हैं।

प्राचीन साहित्य में भूकम्प के प्रति अनेक धारणायें मिलती हैं। पहले कुछ लोग यह भी मानते थे कि समुद्र में जो बड़े भारी जीव-जन्तु हैं उनके चलने आदि से पृथ्वी कांपती है। एक प्राचीन धारणा यह भी है कि पृथ्वी दस हाथियों के दांतों पर टिकी है, वे हाथी जब थककर विश्राम करते हैं तब भूकम्प होता है। आकाश में परस्पर वायु टकराकर जब पृथ्वी पर टकराती है तब भूकम्प होता है, ऐसी भी एक धारणा है। कुछ लोग पृथ्वी पर पाप या पुण्य की अधिकता पर शुभ अथवा अशुभ फल सूचनार्थ भूकम्प को दैवी घटना भी मानते थे। इसके अलावा पुराणों में एक रोचक कथानक मिलता है— "सृष्टि के आरम्भ में पर्वतों के पंख थे, वे उड़कर इधर उधर जाते थे इस कारण उनके इधर-उधर जाने से पृथ्वी कांपती थी। एक बार पृथ्वी ने ब्रह्मा से कहा—आपने मेरा नाम अचला' (नहीं चलने वाली) रक्खा है, लेकिन यह पर्वत उड़कर मुझे चलायमान करते हैं जिससे मेरा नाम 'अचला सार्थक नहीं रह जाता। पृथ्वी के इस प्रकार रुदन पर ब्रह्मा ने इन्द्र को पर्वतों के पंख काटने की आज्ञा दी, इन्द्र ने पंख काट दिये और वे पंखहीन हो गये। लेकिन इसके साथ ही ब्रह्मा ने पृथ्वी से कहा कि अब पर्वत तुझे चलायमान न करेंगे। लेकिन कभी-कभी वायु, अग्नि, इन्द्र और वरुण तुझे चलायमान करेंगे।"

आधुनिक विज्ञान के अनुसार पृथ्वी का भीतरी गर्भ (लावा) अत्यन्त गरम और तरल है जहां कहीं पृथ्वी की ऊपरी परत पतली होती है उसे फोड़कर भीतरी लावा ज्वालामुखी के रूप में फूटकर बाहर निकल आता है या बाहर आने को आतुर होता है, इससे पृथ्वी पर जो दबाव पड़ता है उसी से भूकम्प होता है। अत: ज्वालामुखी फूटने से प्राय: भूकम्प आता है, जापान आदि देश जहां कि ज्वालामुखियों की बाहुल्यता है प्राय: भूकम्प आते रहते हैं।

आधुनिक विज्ञान का मत यथार्थ होते भी पूर्णत: सत्य नहीं है, क्योंकि प्रत्यक्षत: सभी कारणों में ज्वालामुखी ही भूकम्प का कारण नहीं होते। इस दृष्टि से पुराणों का उपर्युक्त कथानक रहस्यपूर्ण प्रतीत होता है। पौराणिक वर्णन काल्पनिक है जिसका भावार्थ यही है कि सृष्टि के आरम्भ में इतने भूकम्प होते होंगे कि पहाड़ों का अस्तित्व मिट जाना और नये पर्वतों का उदय हो जाना एक साधारण सी बात रही होगी, यही पर्वतों का उड़ना है, आज यहां कोई पर्वत है कुछ दिनों बाद नहीं है, जहां पर्वत नहीं है वहां पर्वत आ गया है यही कवि की कल्पना है। लेकिन बाद मे प्राकृतिक रूप से स्वत: ऐसे भूकम्प कम होते गये। फिर भी वायु (आकाश में वायु टकराकर वह जोर से पृथ्वी पर टकराये जाने से), अग्नि (ज्वालामुखी की अग्नि), इन्द्र (असाधारण एवं अनियमित तापमान आदि से पृथ्वी के सतह पर होने वाले प्रभावों से) तथा वरुण (पृथ्वी के गर्भ में स्थित जल के कारण) के कारणों से भूकम्प होंगे।

भारतीय साहित्य में आकाशीय ग्रह नक्षत्रों की स्थिति के अनुसार भूकम्प का पूर्वानुमान करने की विधि भी मिलती है, लेकिन वह स्थूल है। आधुनिक विज्ञान भी अभी भूकम्प का पूर्वानुमान करने में पूर्णत: सफल नहीं है, वास्तव में यह एक आकस्मिक एवं दैवी घटना ही है जिसका पूर्वानुमान असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है।

भारतीय साहित्य में समय तथा चन्द्रमा की स्थिति के अनुसार यह जानने का विधान है कि भूकम्प का कारण वायु, अग्नि, इन्द्र या वरुण क्या कारण थे, और भूकम्पों के द्वारा संसार पर होने पर शुभाशुभ प्रभाव का भी उल्लेख है। इसके साथ ही भूकम्प का क्या विस्तार होगा इसको जानने की भी विधि है। भूकम्प से पहले होने वाले ऐसे लक्षण भी बतलाये है कि जिससे भूकम्प होने की पूर्व सूचना प्राप्त हो सके।

यद्यपि वराहमिहिर आदि मूर्धन्य ज्योतिर्विदों का यह स्पष्ट कथन है कि ग्रहस्थिति अथवा गणित के द्वारा भूकम्प का ज्ञान संभव नहीं है तथापि कुछ ज्योतिर्विदों ने ऐसी ग्रहस्थितियों का उल्लेख किया है—जिसमें भूकम्प संभव है—

१—जब अग्नितत्व और आकाशतत्व अर्थात् मंगल और बृहस्पति एक-राशि में युति (समान अंश) करते हों, तब भूकम्प की संभावना होती है।

२—राहु से मंगल सातवें हो, मंगल से पंचम बुध हो और बुध से केन्द्र में चन्द्रमा हो तो भूकम्प संभव होता है।

उपप्लवगात्सप्तमगोमही जो, महीसुतात्पंचमगोयदा बुध:।
बुधाद्विधुस्याच्चतुष्टयस्थित:, सचेद्भूकम्पन योग उक्त:।।

३—शनि के वक्री अवस्था होने में भूकम्प अधिक संभावना रहती है।
इत्यादि।

यह योग कहाँ तक सत्य सिद्ध होते हैं, यह परीक्षण का विषय है।*

---

* क्रमांक १ का योग जून ९१ के तीसरे सप्ताह में बन रहा है।

राष्ट्रीय सम्वत् एवं तिथिपत्र का स्वरूप क्या हो ?

भारत जैसे एक स्वतंत्र एवं महान राष्ट्र का अपना स्वतंत्र सम्वत् एवं तिथिपत्र न होना एक लज्जा का विषय है, विशेषकर ऐसी स्थिति मे जब कि समस्त विश्व तिथिपत्र (कलैण्डर) के बारे में भारत का ऋणी रहा हो। पराधीनता के काल में १७५७ से भारत में ईस्वीसन् का प्रचलन हुआ था, जो बना हुआ है। इसी बात को ध्यान में रखकर स्वाधीनता के उपरान्त भारत सरकार ने एक 'पंचांग सुधार समिनि'' का गठन किया था जो भारतीय तिथिपत्र एवं पंचांग (कलैण्डर) का स्वरूप नियत करे। समीति के प्रतिवेदनानुसार केन्द्र द्वारा ''शक सम्वत्'' के नाम से एक राष्ट्रीय तिथिपत्र को १९५६ ई० में मान्यता दे दी थी। लेकिन इस तिथिपत्र में कुछ विसंगतियां होने और भारतीय धर्मशास्त्रों एवं प्रचलित मान्यताओं से विरोधाभास होने के कारण समाज में इसकी प्रतिष्ठापना नहीं हो सकी है, और न आगे होगी ही, जब तक कि प्रचलित सामाजिक एवं धार्मिक मान्यताओं के आधार पर इसे नया स्वरूप न दिया जाय। प्रारम्भ में तो ग्रेग्रोरियन कलैण्डर की निथियों के साथ ही कुछ शासकीय पत्रों में इसे स्थान मिला था, अब वह भी समाप्त है। वर्तमान में तो आकाशवाणी एवं दूरदर्शन के अलावा कहीं भी इसकी प्रतिष्ठापना नहीं है। इस प्रकार १९५६ से अब तक ३५ वर्षों के बाद भी इसकी उपेक्षा चिन्तनीय है।

ग्रेग्रोरियन कलैण्डर को अन्तर्राष्ट्रीय स्थान मिला है लेकिन हम स्वदेशीय व्यवहार में तो अपने तिथि पत्र का प्रयोग कर ही सकते हैं। अपना राष्ट्रीय पंचांग समाज में घर-घर स्थान प्राप्त कर सके और भारतीय गौरवान्वित हो सकें, एतदर्थ इसमें जो संशोधन व सुधार वांछनीय है वह इस प्रकार हैं :—

नाम परिवर्तन

सर्व प्रथम तो इसके नाम परिवर्तन की है, 'शक' सम्वत् इस शीर्षक से यह बोध होता है कि यह 'शक' शासकों द्वारा प्रस्थापित सम्वत् है, जब कि

सम्राट शालिवाहन ने शकों को पराजित एवं देश से बाहर कर विजय के उपलक्ष में इसे प्रवर्तित किया था और आज भी समूचे राष्ट्र में इसी रूप में "शाके" अथवा "शालिवाहन शाके" के नाम से मान्य है। अत: इसका नाम "सम्वत—शालिवाहनीय" अथवा "शाके" के रूप में होना चाहिए।

वर्ष का प्रथम दिन

उक्त प्रतिवेदनानुसार वर्ष का प्रथम दिन २२ मार्च या २१ नियत है, जो भारतीय समाज में प्रचलित मान्यताओं, परम्पराओं, धर्मशास्त्रों के विरुद्ध है। समस्त भारतीय भूभाग में सौरमान से नववर्षारम्भ १३ अथवा १४ अप्रैल को माना जाता है। बंगाल, दक्षिण भारत, तमिलनाडू में (नव वर्षारम्भम्), पंजाब (वैशाखी) आसाम (विहु) केरल (विषु), उत्तर प्रदेश (विषुवति), हरियाणा आदि में यह इन्हीं तिथियों को मनाया जाता है, जो वैशाख की पहली तिथि होती है। यहाँ तक कि पड़ौसी राज्य नेपाल में भी। अत: नव-वर्षारम्भ १३ या १४ अप्रैल ही स्वीकार्य हो सकती है। २२ मार्च का कही भी, कोई भी औचित्य नहीं है।

पहला मास

प्रतिवेदनानुसार वर्ष का प्रारम्भ चैत्र मास से माना गया है यह भी अव्यावहारिक है। यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि भारत में पांच प्रकार के (सौर, चान्द्र, सावन, नाक्षत्र और वार्हस्पत्य) महिनों की मान्यता है लेकिन इनमें "सौर" और "चान्द्र" इन पद्धतियों का ही प्रचलन विशेष है। चान्द्रमान (पौर्णमासी से पौर्णमासी तक अथवा अमावास्या से अमावास्या तक) से वर्ष का प्रारम्भ चैत्र में माना जाता है लेकिन उसमें प्रत्येक ढाई वर्ष बाद अधिकमास की कल्पना होने से वह राष्ट्रीय तिथिपत्र के अनुरूप नहीं है और न इसकी कोई एक तिथि ही है, अत: अव्यावहारिक है।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अन्य तिथिपत्रों से सामंजस्य रखने को सौरमास ही प्रयुक्त होने योग्य है और उसका प्रारम्भ "वैशाख" होता है। अत: वर्ष का प्रथम मास "वैशाख" होगा। निरयन गणना से इसी तिथि को हमें सूर्य खगोलीय गणना के प्रारम्भ बिन्दु पर प्राप्त होता है, अत: सामाजिक व धार्मिक मान्यतायें इसी के पक्ष में हैं।

उपरोक्त समाज में प्रचलित, धार्मिक मान्यताओं के अनुसार मासों की क्रम संख्या, नाम, दिनों की संख्या इस प्रकार होगी ।

राष्ट्रीय तिथिपत्र का प्रस्तावित स्वरूप

क्रम	नाम	पहली तिथि	दिनों की संख्या	अवैज्ञानिक 'शक' सम्वत् के अनुसार
१-	वैशाख—	१४ अप्रैल—	३१	—(२— २१ अप्रैल— ३१ दिन)
२-	ज्येष्ठ —	१५ मई —	३१	—(३— २२ मई— ३१ ,,)
३-	आषाढ़—	१५ जून —	३२	—(४— २२ जून — ३१ ,,)
४-	श्रावण --	१७ जुलाई—	३१	—(५— २३ जुलाई— ३१ ,,)
५-	भाद्रपद—	१७ अगस्त —	३१	—(६—२३ अगस्त— ३१ ,,)
६-	आश्विन --	१७ सितम्बर-	३१	—(७—२३ सितम्बर- ३० ,)
७-	कार्तिक —	१८ अक्टूबर-	३०	—(८—२३ अक्टूबर— ३० ,,)
८-	मार्गशीर्ष-	७ नवम्बर-	२९	—(९— २२ नवम्बर— ३० ,,)
९-	पौष --	१६ दिसम्बर-	३०	—(१०—२२ दिसम्बर- ३०)
१०—	माघ --	१५ जनवरी --	२९	—(११—२१ जनवरी— ३० ,,)
११-	फाल्गुन—	१३ फरवरी —	३०	—(१२—२० फरवरी — ३० ,,)
१२-	चैत्र —	१५ मार्च —	३०	—(१—२२ मार्च — ३० दिन)

(हर चौथे वर्ष लीपइयर में १४ मार्च—३१ दिन) (लीपईयर में ३१ दिन, पहला दिन २१ मार्च)

दुराग्रह त्यागना होगा

यों तो सौर तिथियाँ प्राय: अधिकांश भारत में प्रचलित हैं, लेकिन भिन्न-भिन्न प्रान्तों में महिनों के नाम में अन्तर है। तिथियों में भी कभी-कभी एक दो दिन का अन्तर पड़ जाता है। उत्तरी भारत में सौर तिथि २६ है तो बंगाल में तथा दक्षिण भारत तमिलनाडू, केरल में ५ हो सकती हैं। नववर्षारम्भ पंजाब में १३ अप्रैल से होता है तो अन्यत्र १४ या १५ से भी नववर्षारम्भ माना जाता है। इस प्रकार जो एक दो दिनों का अन्तर विभिन्न प्रान्तों में रहता है—उसके स्थान पर राष्ट्रहित को देखते हुए एक नियत तिथि १४ अप्रैल मानना होगा। परस्पर सहयोग, सदभावना से ही राष्ट्रीय एकता संभव है। मासारम्भ की जो उपरोक्त तिथियाँ दी हैं, स्पष्ट गणित से उनमें भी एक दिन इधर-उधर होने से धर्म शास्त्र की दृष्टि से एक दिन का अन्तर हो सकता है,

किन्तु एक राष्ट्रीय तिथिपत्र की स्थापना और भारतीय अस्मिता की प्रतिष्ठापना हेतु देशवासियों को कुछ त्याग करना ही पड़ेगा और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय तिथिपत्र का अन्य कलैण्डरों से सामजस्य स्थापित करने हेतु यह आवश्यक है।

महिनों के नाम क्या हों ?

सर्वप्रथम यह निर्धारित करना होगा कि महिनों के नाम क्या हों ?

वैदिक काल में चान्द्र तिथिपत्र और सौरतिथिपत्र के निमित्त महिनों के अलग-अलग नाम प्रचलित थे, ताकि यह शंका न रहे कि यह सौर तिथि है या चान्द्रतिथि। चान्द्र कलैण्डर में महिनों के नाम मधु, माधव इत्यादि थे लेकिन सौरमासों के नाम वैशाख, ज्येष्ठ आदि ही प्रचलित थे। उदाहरण स्वरूप यदि हम "मधु–२०" तिथि लिखें तो स्पष्ट होगा कि चान्द्रमान से वैशाखकृष्णपक्ष (दक्षिण भारत में चैत्र कृष्ण) की पंचमी तिथि। इसी प्रकार 'वैशाख २०" से सौरमान से वैशाख की २० तिथि होगी, कोई शंका नहीं रहेगी। लेकिन वर्तमान में मधु, माधव आदि वैदिक नाम कहीं भी प्रचलित नहीं है। हाँ, उत्तर भारत में जहां महिनों के नाम वैशाख आदि ही प्रचलित हैं, दक्षिण भारत में सौरमासों का नाम सूर्य स्थित राशि के अनुसार मेष, वृष इत्यादि राशियों पर प्रचलित हैं—

वैदिक नाम— (चान्द्र)	उत्तर भारत— (सौर)	दक्षिण भारत में (सौर मास)
माधव—	वैशाख—	मेष
शुक्र—	ज्येष्ठ—	वृष
शुचि—	आषाढ़—	मिथुन
नभस्—	श्रावण—	कर्क
नभस्य—	भाद्र(भद्दर)—	सिंह
इष—	आश्विन (कुंवार)—	कन्या
ऊर्ज—	कार्तिक—	तुला
सहस्—	मार्गशीर्ष (अगहन)—	वृश्चिक
सहस्य—	पौष (पोह)—	धनु
तपस्—	माघ—	मकर
तपस्य—	फाल्गुन—	कुंभ
मधु—	चैत्र	मीन

राष्ट्रीय सौर कलैण्डर में चान्द्रमासों से तो सम्बन्ध ही नहीं है। प्रश्न यही है कि उत्तर भारतीय नाम रक्खें जांय या दक्षिण भारतीय, यह प्रश्न परस्पर सहमति से हल किया जा सकता है। किसी एक को तो त्याग करना ही पड़ेगा।

शासन का दायित्व

उपरोक्त प्रकार से जो राष्ट्रीय तिथिपत्र निर्मित होगा वह प्रचलित मान्यताओं के अनुरूप तथा धर्मशास्त्र सम्मत होने से व्यावहारिक होगा। लेकिन दासता के युग में देशवासी पाश्चात्य कलैण्डर के अन्धानुगामी हो गये है, अभी भी हैं अतः राष्ट्रीय सम्मान की पुनः प्रस्थापना के निमित्त इस कार्य में शासन को महत्वपूर्ण कार्य करने होंगे, ताकि ग्रेग्रोरियन कलैण्डर की भांति ही भारतीय तिथिपत्र भी सर्वत्र प्रतिष्ठापित हो सके। यथा—

(अ) प्रत्येक पंचांग, यंत्री, पंजिका डायरी आदि के प्रकाशकों, सम्पादकों को को अपने प्रकाशन में भारतीय तिथिपत्र की तिथियाँ देना अनिवार्य कर दिया जाय।

(आ) भारत में छपने वाले किसी भी ग्रेगोरियन कलैण्डर में अंग्रेजी तिथियों के साथ साथ भारतीय राष्ट्रीय तिथिपत्र की तिथियाँ भी उसी आकार में (उसी प्वाइंट टाइप में) प्रकाशित करना अनिवार्य हो।

(इ) समस्त राजकीय कार्यालयों, न्यायालयों आदि में प्रस्तुत आवेदन पत्रों, निविदाओं, दावों में राष्ट्रीय तिथि अंकित होना अनिवार्य हो। राष्ट्रीय तिथि रहित कोई भी आवेदन पत्र स्वीकार न किया जाय और ऐसा कोई भी अभिलेख वैध न माना जाय।

(ई) निमंत्रण पत्रों, समाचार पत्रों आदि समस्त राजकीय अर्ध राजकीय, निजी संस्थाओं, व्यक्तियों के लिए भी राष्ट्रीय तिथि का उल्लेख वहाँ आवश्यक कर दिया जाय, जहाँ ग्रेग्रोरियन तिथि का प्रयोग हुआ हो। अर्थात् जहाँ कहीं भी ग्रेग्रोरियन तिथि अंकित हो, उसके साथ राष्ट्रीय तिथि अंकित करना अनिवार्य हो।

●

खगोलीय चमत्कार : ग्रहण

भारतीय वाङ्मय में सूर्य को जगत का आत्मा तथा चन्द्रमा को मन कहा गया है। वास्तव में सूर्य और चन्द्रमा ही इस पृथ्वी पर जीवन के आधार हैं; वैज्ञानिकों का कहना है कि पृथ्वी पर जीवन सूर्य पर निर्भर है, वही इसका कारण है अन्यथा यह पृथ्वी भी एक जनशून्य लोक होती।

सूर्य तथा चन्द्रमा की किरणें पृथ्वी के चराचरों को जीवन दान देती हैं, क्योंकि ग्रहण के समय सूर्य या चन्द्रमा की किरणें पृथ्वी पर नहीं पहुंचती या अपेक्षाकृत कम पहुँचती हैं—अत: ग्रहण का प्रभाव पृथ्वी के जन-जीवन पर पड़ना स्वाभाविक है। चन्द्रग्रहण की अपेक्षा सूर्यग्रहण का प्रभाव अधिक व व्यापक होता है। वैज्ञानिकों के अनुसार ग्रहण के समय कुप्रभावकारी गामा किरणों का विकिरण अधिक होता है, इससे जीवधारियों के स्वास्थ्य व मन पर कुप्रभाव पड़ता है। मानसिक संतुलन बिगड़ने, रक्तचाप बढ़ने आदि की संभावना रहती है। प्राय: ग्रहण के समय, विशेषत: सूर्यग्रहण के समय पशु-पक्षी उत्तेजित या भयभीत हो उठते हैं, पक्षी घौंसलों में छुप जाते हैं, अनेक फूल अपनी पंखुड़ियाँ समेट लेते हैं, इससे स्पष्ट है कि वे ग्रहण से प्रभावित होते हैं। वैज्ञानिकों ने परीक्षणों द्वारा यह पाया है कि ग्रहण के समय पराबैंगनी विकिरण घटता है किन्तु एक्सकिरणों में कोई अन्तर नहीं आता।

पाठकों को याद होगा कि फरवरी १९८० में सम्पूर्ण सूर्यग्रहण के समय वैज्ञानिकों ने चेतावनी दी थी कि सीधे नंगे आंखों से इसे देखने पर आँख का 'रेटीना' जल सकता है और मनुष्य अन्धा हो सकता है। इसी तरह नपुंसक होने का भी भय है। क्योंकि ग्रहण के समय हमारे वायुमण्डल में स्थित जीवनीय गैस की मात्रा दस प्रतिशत कम हो जाती है जो सूर्य से पृथ्वी पर पहुंचने वाली घातक इन्फारेड' किरणों से हमारी रक्षा करती है। इस कारण ग्रहण के समय, सूर्य या चन्द्रमा को नंगे आंखों देखना और धूप या चांदनी में जाना हितकर नहीं है। कोमल एवं सम्वेदनशील व्यक्ति, पक्षी, बालक तथा गर्भस्थ शिशु पर इसका अधिक प्रभाव पड़ता है।

लेकिन ग्रहण का कुप्रभाव पूरे विश्व पर नहीं होता केवल उसी भाग पर प्रभाव होता है जहाँ ग्रहण दृष्टिगोचर हो अर्थात् जिस भाग में सूर्य या चन्द्रमा की सीधी किरणें न पहुँचती हों। ग्रहण के प्रभावों का अध्ययन अनादिकाल से होता आया है भारतीय महर्षियों एवं ज्योतिर्विदों ने इस वैज्ञानिक तथ्य को धर्म के साथ जोड़कर जनसाधारण में आस्था एवं विश्वास को प्रस्थापित किया है।

जरा ग्रहण की वैज्ञानिकी स्थिति का भी अध्ययन करें। सूर्यग्रहण के समय चन्द्रमा का वही भाग प्रकाशित होता है जो सूर्य की ओर होता है अतः चांदनी नहीं होती और सूर्य की किरणें भी पृथ्वी पर (ग्रहण वाले स्थान पर) नहीं पहुँचती क्योंकि चन्द्रमा आड़े आ जाता है, इसी प्रकार सूर्यग्रहण में ग्रहण स्थान विशेष पर सूर्य और चन्द्रमा दोनों में से किसी की भी सीधी किरणें प्राप्त नहीं होतीं।

चन्द्रग्रहण के समय सूर्य की किरणें सीधे उस भाग में नहीं पहुँचती हैं—जिस भाग में ग्रहण होता है क्योंकि उस भाग में उस समय रात का समय होता है और चन्द्रमा पर पृथ्वी की छाया पड़ने से चन्द्रकिरणें भी सीधे नहीं पहुँचती है क्योंकि वे सूर्य के प्रकाश से प्रतिफलित होती है।

ग्रहण के समय क्या होता है ?

सूर्य और चन्द्रमा के ग्रहण ही एक ऐसा आधार है जिनके माध्यम से जनता का विश्वास ज्योतिष विज्ञान पर अनादि काल से विद्यमान है सुदूर आकाश में घटने वाली इस घटना का ज्योतिर्विद लोग वर्षों पहले से कैसे ठीक समय ज्ञात कर लेते हैं ? इस सत्यता पर ही जनता को ज्योतिष शास्त्र पर, और ज्योतिर्विदों पर विश्वास करना पड़ा, जैसा कि आचार्य चाणक्य ने कहा है—

दूतो न संचरति खे न चलेच्चवार्ता, पूर्वं न जल्पितमिदं न च सगमोस्ति।
व्योम्निस्थितं रविशशि ग्रहणं प्रशस्तं, जानाति यो द्विजवरः स कथं न विद्वान॥

बहुत से लोग जो कि ज्योतिषशास्त्र के बारे में नहीं जानते उन्हें ऐसा भ्रम है कि भारतीयों को ग्रहण का सही कारण ज्ञात नहीं था। उनके इस भ्रम का आधार उन पौराणिक कथाओं से है जिसमें कहा गया है कि सूर्य और चन्द्रमा के ग्रहण का कारण राहू नामक राक्षस है। क्योंकि समुद्रमंथन के समय जब देवताओं को अमृत बँट रहा था यह राक्षस भी देवताओं का रूप धारण कर छद्मवेष से उस पंक्ति में बैठ गया था जिसे सूर्य और चन्द्रमा ने देख लिया और सूर्य तथा

चन्द्रमा के कहने पर विष्णु ने उसका सिर काट दिया, क्योंकि छद्मवेश से वह अमृत पी चुका था इसलिये उसकी मृत्यु नहीं हुई और शिर राहु तथा धड़ केतु बन गया। यही राहु अपनी शत्रुता के कारण सूर्य तथा चन्द्रमा पर आक्रमण करता है।

पौराणिक कथायें अलंकारिक रूप में वर्णित हैं अत: उसका वास्तविकता से कोई सम्बन्ध नहीं है और ज्योतिषविज्ञान इससे सर्वथा पृथक है।

क्योंकि ग्रहण का ज्ञान ज्योतिष के सिद्धान्त से ही होता है। पुराणों की अलंकारिक कथाओं से हमारा वैज्ञानिक साहित्य सर्वथा भिन्न है। वेद केवल भारतीय साहित्य में ही नहीं अपितु विश्व भर में सबसे प्राचीन माने जाने जाते हैं, उनमे ग्रहण का उल्लेख होना इस बात का प्रमाण है कि भारतीयों को ग्रहण का वैज्ञानिक कारण अनादिकाल से ज्ञात रहा है—

यत्त्वा सूर्यं स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुर:। ऋग्वेद ४।४०।५

यं वै सूर्यं स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुर:। ऋग्वेद ४।४।६

इस प्रकार वेदों में यत्र-तत्र ग्रहण का वर्णन है जिसमें कहा है कि स्वर्भानु नामक असुर सूर्य को अन्धकार से अच्छादित करता है। यह ध्यान देने योग्य है कि अन्धकार को अलंकारिक रूप से स्वर्भानु नामक असुर कहा गया है, किन्तु इसके साथ ही स्पष्ट है कि 'अन्धकार से आच्छादित करता है''।

वास्तव मे स्वर्भानु का अर्थ है कि अपनी छाया। ग्रहणों का कारण यह है कि जब सूर्य चन्द्रमा और पृथ्वी एक समसूत्र में आते हैं तो ग्रहण सम्भव होता है ऐसी स्थिति प्रत्येक पौर्णमासी और अमावास्या को वर्ष में २४ बार आती है किन्तु यह तीनों एक समसूत्र में होते भी प्रत्येक बार ग्रहण इसलिये नहीं होते हैं कि वे परस्पर एक समतल पर नहीं होते हैं। सूर्य चन्द्र और पृथ्वी एक समसूत्र में और एक समतल में वर्ष में केवल चार बार हो सकते हैं इसीलिये एक वर्ष में अधिक से अधिक चार (दो सूर्य के दो चन्द्र के) ग्रहण हो सकते हैं। इन चारों में भी कोई ग्रहण किसी देश में होते हैं—कोई किसी देश में। इसीलिये एक ही स्थान पर चार ग्रहण नहीं देखे जा सकते।

सूर्य चन्द्रमा और पृथ्वी यह तीनों आकाश के जिस बिन्दु पर समसूत्र और एक समतल रेखा पर आते हैं इन्हीं दो बिन्दुओं में एक का नाम राहु और दूसरे का केतु है। इस प्रकार राहु तथा केतु कोई ग्रह नहीं अपितु आकाश के दो बिन्दु हैं, जो परस्पर एक दूसरे से विपरीत १८० अंश पर स्थित हैं। इसलिये ज्योतिष-सिद्धांत में राहु का नाम 'चन्द्रपात' भी कहते हैं अर्थात सूर्य और

चन्द्रमा (पृथ्वी के समतल पर) जहाँ एक दूसरे के पथ को काटते हैं। वेदों के बाद ज्योतिष के खगोल विषयक वैज्ञानिक ग्रंथ जिसमें खगोल विज्ञान का सोदाहरण, सटीक और विस्तृत वर्णन हैं वे पांचसिद्धान्त ग्रंथ (पौलिश सिद्धान्त, सूर्यसिद्धान्त, रोमक सिद्धान्त वशिष्ठसिद्धान्त, ब्रह्म सिद्धान्त) हैं, जिनका समय विद्वानों ने ढाई हजार वर्ष प्राचीन माना है। जिनमें ग्रहण का समय जानने का गणित विद्यमान है। इन्हीं के समकालीन महाभारत में भी ग्रहण का अनेक स्थलों पर वर्णन है। ब्रह्मगुप्त कृत ब्रह्मसिद्धान्त तथा भास्कराचार्य कृत सिद्धान्त शिरोमणि में पौराणिक कथाओं का खण्डन पूर्वक बतलाया गया है कि चन्द्रसूर्य ग्रहणों का कारण राहुनामक दैत्य नहीं अपितु चन्द्रग्रहण का कारण पृथ्वी की छाया और सूर्यग्रहण का कारण चन्द्रमा है। आज के युग में यह सर्वविदित है कि सूर्यग्रहण के समय चन्द्रमा पृथ्वी और सूर्य के मध्य में आ जाता है और चन्द्रमा के बिम्ब से सूर्य बिम्ब ओट में आ जाने (ढक जाने) से ग्रहण लगता है। इसी प्रकार चन्द्रग्रहण के समय पृथ्वी सूर्य और चन्द्रमा के मध्य मे रहती है इस कारण पृथ्वी की छाया (सूर्य से उत्पन्न पृथ्वी छाया) सीधे चन्द्रमापर पड़कर उसे आच्छादित कर देती है। आचार्य वराहमिहिर ने इतनी बड़ी पहेली को एक ही पंक्ति मे सुलझादी है—

"भूच्छायां स्वग्रहणे भास्करमर्कग्रहणे प्रविशतीन्दुः"

अपनी राशि पर ग्रहण का प्रतिकूल फल होने पर सोने का नाग बनाकर तांबे के पात्र में तिल सहित विद्वान व्यक्ति को दान देने का विधान है—

सुवर्ण निर्मितं नागं सतिलं ताम्रभाजनं।
सदक्षिणं स वस्त्रं च श्रोत्रियाय निवेदयेत॥

धार्मिक पक्ष

ग्रहण में दान का विशेषपुण्य है, सूर्य ग्रहण मे १२ घंटे और चन्द्र ग्रहण के आरम्भ से ९ घण्टे पहले मे ही सूतक दोष है, किन्तु सामान्यतया ग्रहण काल में भोजन निषिद्ध है। इसके अलावा पेड़ काटना, नीद में सोना मलमूत्र त्यागना, दातून करना, बालबनाना मैथुन, तथा पशुओं का दूध दुहना भी निषिद्ध है।

आज वैज्ञानिक भी यह मानते हैं कि ग्रहण को नंगी आखों से देखने से अंधे होने का भय रहता है आंखों के ऊपर कुप्रभाव होता है और ग्रहण के समय पृथ्वी का समस्त वायुमण्डल दूषित हो जाता है। अतः प्राचीन महर्षियों ने ग्रहण के समय स्नान तथा शुद्धता सम्बन्धी जो नियम बनाये है वे विज्ञान सम्मत हैं।

ज्योतिष एवं आयुर्वेदीय सिद्धान्तानुसार

इच्छानुसार सन्तान प्राप्ति सम्भव है

गृहस्थ जीवन में सन्तानोत्पादन भी एक कर्तव्य है, लेकिन सन्तानोत्पादन तभी सुखदायक है जब इच्छानुसार सन्तानोत्पादन (पुत्र या पुत्री) हो। विशेषकर आज के युग में जब कि "बहुसन्तति" की जगह "हम दो—हमारे दो" को मान्यता दी जा रही हो। लेकिन प्रकृतिवश किसी दम्पति को पुत्र ही पुत्र प्राप्त होते हैं और कन्या की कामना अपूर्ण ही रह जाती है। इसी प्रकार किसी दम्पति को कन्या ही कन्या होने से पुत्र की कामना अधूरी रह जाती है।

यद्यपि आज मान्यतायें बदल रहीं हैं, लेकिन गृहस्थ जीवन में सन्तानोत्पादन का एक लक्ष्य यह भी था कि वृद्धावस्था म उनका पालन हो सके। यह सन्तान और अभिभावकों का एक प्रकार से मनोवैज्ञानिक, नैतिक अनुबन्ध ही था कि बाल्यावस्था में जिस प्रकार अभिभावक सन्तान का पालन-पोषण करते हैं उसी प्रकार वृद्धावस्था में सन्तान उनका पोषण करे। आयुर्वेद के आचार्य वाग्भट्ट ने कहा है :—

अच्छाय: पूति कुसुम: फलेन रहितो द्रुम।
यथैकश्च शाखश्च निरपत्यस्तथा नर: ॥

अर्थात् जिस तरह छायाहीन, दुर्गन्धयुक्त फूलों वाला और एक शाख वाला वृक्ष अच्छा मालूम नहीं होता उसी प्रकार सन्तानहीन पुरुष भी अच्छा नहीं लगता। धर्मशास्त्रों की मान्यतानुसार पुत्रहीन को कभी भी स्वर्ग नहीं मिल सकता। देव ऋण, ऋषि ऋण, पितृ ऋण से मुक्त होने के लिए धर्म-विधि से सन्तान उत्पन्न करे। पुत्र उत्पन्न करे। हमारे कहने का मतलब यह नहीं है कि मनुष्य का कर्तव्य पुत्रियों को जन्म देने का नहीं है। अगर पुत्रियां उत्पन्न नहीं होंगी तो पुत्र कहां से होंगे? यह तो एक विवादास्पद विषय है। हम तो केवल इतना कहते हैं कि पितृ ऋण से छूटने के लिए वंश परम्परा चलाने के लिए पुत्र की उत्पत्ति आवश्यक है। उत्तम तो यह है कि प्रत्येक दम्पत्ति के एक पुत्र तथा एक पुत्री हो।

क्या इच्छानुसार सन्तान की प्राप्ति सम्भव है ?

यह निर्विवाद सत्य है कि गर्भ धारण होना और गर्भ में पुत्र या पुत्री का होना ईश्वर की इच्छा पर है। यदि आप नास्तिक एवं अनीश्वरवादी हैं तो कह सकते हैं कि यह मनुष्य के अपने वश की बात नहीं है, संयोग है। लेकिन आयुर्वेद तथा ज्योतिषशास्त्र के प्राचीन विद्वानों ने इस विषय पर निरन्तर अनुसंधान करके कुछ सिद्धान्त स्थापित किये हैं इन नियमों का दृढ़तापूर्वक पालन करने से इच्छानुसार सन्तान की प्राप्ति सम्भव है लेकिन मनुष्य अपनी शारीरिक एवं मानसिक दुर्बलताओं के कारण इन नियमों का पूर्णरूप से पालन नहीं कर पाता। इनका पालन अत्यन्त कठिन है। लेकिन दृढ़ता के साथ इन नियमों का पालन होने पर इच्छानुसार सन्तान प्राप्त की सकती है।

ऋतुचक्र का ज्ञान आवश्यक

इच्छानुसार सन्तान प्राप्ति के निमित्त ऋतुचक्र का ज्ञान सर्वप्रथम है। स्त्री को मासिक धर्म किस तिथि को किस समय पर होता है, इसे ध्यान में रखना होगा, और उस तिथि एवं समय से अगले साठघटी अर्थात् चौवीस घण्टे को एक चक्र (एक दिन रात) माना जाता है। इस प्रकार –

मासिक धर्म कि तिथि एवं समय से—२४ घण्टे = १ चक्र
,, —४८ घण्टे तक = २ चक्र
,, —७२ घण्टे तक = ३ चक्र

इत्यादि। उदाहरणस्वरूप किसी महिला को ७ मई ९१ मंगलवार को ७।० बजे मासिकधर्म प्रारम्भ हुआ। तो —

७।५।९१ —७।० सायं से—८।५।९१ —७।० सायं तक = एक
८।५।९१— ७।० सायं से—९।५।९१— ७।० सायं तक = दो
९।५।९१— ७।० सायं से १०।५।९१ --७।० सायं तक = तीन।

इस प्रकार से ऋतु चक्र माना जायगा।

इनमें से एक से सात ऋतुचक्र तक, अथवा सोलह से आगे के ऋतुचक्रों में गर्भ धारण की संभावना कम रहती है और यदि गर्भधारण होता भी है तो उससे उत्पन्न सन्तान अल्पायु, रोगी, विकलांग आदि होती है। अत: आठ से सोलहवें ऋतु चक्र तक का समय ही सन्तानोत्पादन के योग्य है।

इसके बाद उन नियमों का पालन करना होगा जो इच्छानुसार सन्तान-प्राप्ति के हेतु आवश्यक हैं।

यदि आप पुत्री चाहते हैं

(१) केवल नवें, ग्यारहवें, तेरहवें या पन्द्रहवें ऋतुचक्र (इस ऋतु के समय में) में ही समागम कर। मासिक धर्म रात्रि में प्रारम्भ हुआ हो।

(२) समागम के समय पुरुष का बायाँ स्वर चल रहा हो (अर्थात् बायीं नाक से श्वास चल रही हो) और स्त्री का दांयां स्वर चल रहा हो।

(३) कृष्णपक्ष हो (चांद घटता हो)।

(४) शय्या में स्त्री की पलंग दांये तथा पुरुष की पलंग बांये हो अर्थात् पुरुष बायें तथा स्त्री दायें हो। यथासम्भव दक्षिण शिर सोयें। देखा गया है कि जो दम्पति इसी क्रम में सोने के अभ्यस्त हैं, उनकी सन्तानों में पुत्रियों की संख्या अधिक है।

(५) सोमवार या शुक्रवार हो।

(६) रात्रि का समय हो। चन्द्रमा उदय हो।

यदि आप पुत्र चाहते हैं

पुत्र की कामना रखने वालों को इसके विपरीत नियमों का पालन करना होगा, यथा--

(१) केवल आठवें, दसवें, बारहवें, चौदहवें अथवा सोलहवें ऋतुचक्र में ही समागम हो। मासिक धर्म दिन से प्रारम्भ हुआ हो।

(२) समागम के समय पुरुष का दाहिना स्वर चल रहा हो, और पत्नी का बांया स्वर चल रहा हो।

(३) शुक्लपक्ष हो (चाँद बढ़ता हो)।

(४) शय्या पर पुरुष बायें तथा स्त्री दायें सोते हों। अर्थात् पत्नी पुरुष के बायें सोये। यथासम्भव शिर दक्षिण अथवा पश्चिम को हो।

(५) रवि, मंगल, गुरुवार हो।

(६) समय रात्रि का भी हो सकता है, असुविधा न हो तो दिन अधिक उपयुक्त है।

(७) पति को 'आनन्ददावटी (रस विज्ञान)' अथवा 'आकारकरभादि चूर्ण (शार्ङ्गधर संहिता)' का सेवन करना चाहिए।

(८) गर्भ स्थित हो जाने पर तीसरे माह (अर्थात् गर्भधारण के ६० दिन बाद 'पुंसवन' संस्कार करें। वैदिक युग में 'पुंसवनसंस्कार' को सोलह संस्कारों में एक संस्कार माना जाता था, लेकिन अब इसका लोप हो गया है। इसकी विधि यह है कि वटवृक्ष की कोमल नवविकसित जटायें लेकर थोड़े से पानी द्वारा पीसकर, छानकर पतला पेय सा बना लें (जो कम से कम चाय के चम्मच से चार-पाँच चम्मच या इससे अधिक हो) गर्भवती स्त्री को यह पेय दाहिने नाक द्वारा पिलाना होगा जो बांया नाक बन्द करके दाहिने नाक द्वारा श्वांस से खींचकर या नली अथवा चम्मच से इसे पी ले। पेय को पेट (आमाशय) तक पहुँचना है, इसी के अनुसार मात्रा पिलायी जाय।

आयुर्वेद के अनुसार भ्रूण में तीसरे माह से ही लिंग बनता है।

कुछ विद्वान दाहिने और बांये दोनों नाकों से पिलाने को लिखते हैं, अतः दोनों ही नाकों से पिलाना अधिक प्रभावकारी होगा, लेकिन पहले दाहिने नाक से ही पिलाया जायगा। यह क्रिया सूर्यास्त के बाद ही करनी चाहिए।

डाक्टर फ्रेंकलिन महोदय लिखते हैं कि सम्भाग के समय अगर मर्द थका-मांदा हो और स्त्री आराम का दिन गुजार चुकी हो तो लड़का पैदा होता है। यह अंग्रेज डाक्टरों का बा-बार अनुभूत सिद्धान्त बताया जाता है लेकिन यह विश्वस्त नहीं है, और आयुर्वेदीय सिद्धान्तों के भी विपरीत है।

दुर्लभ हस्तलिखित तमिल ग्रन्थों में--

दक्षिण भारतीय ज्यौतिष के विशिष्ट सिद्धांत

यह बात सर्वविदित है कि भारतीय साहित्य के बहुत से ग्रंन्थों को पुराकाल में विदेशी आक्रमण कारियों ने जला दिया था, अथवा अन्य प्रकार से नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था। जो कुछ साहित्य आज हमारे पास है वह हमारे विज्ञान एवं विद्या का केवल एक अश मात्र है। वास्तविकता तो यह है कि महत्व का जितना भी साहित्य था वह आज अलभ्य है और सामान्य साहित्य ही शेष बचा रह गया है। अन्य विषयक साहित्यों की ही तरह ज्योतिष शास्त्र से सम्बन्धित महत्व पूर्ण ग्रन्थ भृगुसंहिता, प्राचोन सूर्यसिद्धांत आदि भी आज के युग में अलभ्य हैं।

भृगुसंहिता की खोज करने के सिलसिले में मुझे एक दो ज्योतिष विषयक ग्रन्थ मिले है, जो सैकड़ों वर्ष पुराने बतलाये जाते है, और शीर्ण-जीर्ण अवस्था में हैं। साम्प्रत में इन्हें भृगुसंहिता का ही अंश माना जाता है। इन ग्रन्थों का पूरा विवरण तो एक छोटे से लेख में देना सम्भव कदापि नहीं है तथापि मैं इसके कुछ अंश यहां देना चाहता हूँ, क्यों कि इसके आधार पर ज्योतिष विषयक जो मान्यतायें अद्यावधि हैं, उनमें भी परिवर्तन हो जाता है, ज्योतिष विषयक यह नये सिद्धांत कहां तक सही हैं, और पुराने सिद्धांतों (प्रचलित) के स्थान पर इन नई मान्यताओं को कोई स्वीकार करेगा या नहीं, यह तो ज्योतिर्विदों पर निर्भर है, किन्तु जहां तक मैंने इनका परीक्षण किया है, मैंने इन्हें सत्यता की कसौटी पर खरा उतरा पाया है।

आयुर्दाय विचार

सर्व प्रथम हम आयु के सम्बन्ध में विचार करते हैं।

'लग्नेशरन्ध्रपत्योश्च लग्नेन्द्वोर्लग्नहोरयो:।
सर्वदायु: परिग्राह्यं वि संवादे तु कालत:॥'

के अनुसार यहाँ भी अन्य आचार्यों की तरह (१) लग्नेश अष्टमेश से, (२) लग्न–चन्द्रमा से (३) लग्न—होरालग्न से आयु निर्णय करने को कहा गया है, किन्तु जैमिनी आदि आचार्यों की तरह इस ग्रन्थ में इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि—

'लग्न सप्तमयो: स्थिते चन्द्रे लग्नचंद्राभ्यां अन्यथा शनि चन्द्राभ्यां'

इस ग्रन्थ के अनुसार चन्द्रमा किसी भी स्थान में हो आयुनिर्णय लग्न-चन्द्रमा से ही होगा।

(२)

दूसरा मतभेद इसमें होरा लग्न सम्बन्धी है। अन्य आचार्यों ने जहाँ—

द्विघ्नेष्टनाड्य: पंचाप्ता भंशेषं च पलीकृतम्।
दशाप्तमंशास्ते योज्या रवौ होरादयो भवेत्॥

× × ×

विषमेङ्के रवौ योज्यं समेगे लग्नभादिषु॥

कहकर प्रत्येक ढाई घड़ी का एक लग्न मानकर उसे सूर्य मे जोड़कर होरा लग्न माना है, अथवा विषमलग्न में सूर्य मे और समलग्न मे लग्न में जोड़ना कहा है। वहाँ इस ग्रन्थ में होरा लग्न साधन की रीति सर्वथा नवीन है—

'दिवामानं रात्रिमानं ज्ञात्वा प्रत्येकं द्वादशधा विभज्य ओजयुग्मानुसारेण जन्मलग्नस्योजक्रमेण युग्मे व्युत्क्रमेण इष्ट जन्मकाल घटिका यल्लग्नं भवति'

अर्थात् दिनमान और रात्रिमान प्रत्येक के १२ द्वादश भाग करें यदि जन्मलग्न विषम हो तो जन्म इष्टकाल पर्यन्त जितने भाग हों क्रम से जोड़ दें, और सम लग्न में हो तो लग्न से इष्टकाल पर्यन्त के भागों को उलटे क्रम से जोड़ दें अर्थात् घटायें, यही होरा लग्न होगा।

(३)

अष्टमेश कौन माना जाय ? इसमें भी मतभेद है, जैमिनी आदि अन्य आचार्य यही मानते है कि कोई भी लग्न हो, लग्न से अष्टम स्थान का स्वामी अष्टमेश है, किन्तु हमारे इस ग्रन्थकार ने कहा है—

'वृषभे मिथुनं रन्ध्रं वृश्चिके चापमादिशेत्।
सिंहे च कन्यका रन्ध्रं कुम्भे तु झषमं विदुः॥

स्थिरलग्ने प्रसूतानां तत्सप्तममारभ्य-अष्टमंद्रष्टव्यम् ।'

अर्थात् यदि जन्म चर लग्न है, तब तो उससे अष्टम राशि का स्वामी ही अष्टमेश है अन्यथा यदि स्थिर लग्न का जन्म है तो जन्म लग्न से सप्तमराशि को एक मानकर उससे जो अष्टम हो उसका स्वामी अष्टमेश होगा।

इस प्रकार वृष का अष्टम मिथुन, वृश्चिक का धन सिंह का कन्या, और कुम्भ का मीन अष्टम होगा। जो वास्तविक लग्न से द्वितीय होता है।

(४)

इस ग्रन्थ में कारक की परिभाषा भी पृथक है।

'यस्यभावस्याधिपतिर्यत्रराशौ वर्तते ।
तस्याधिपतिस्तस्य भावान्तरस्य कारकः।'

अर्थात् भाव का स्वामी जिस राशि में बैठा हो, उस राशि का स्वामी जो हो वह उस भाव का कारक होता है।

उदाहरण के लिये – वृष लग्न है, लग्नेश शुक्र कन्या राशि में है, कन्या का स्वामी बुध है एतदर्थ बुध लग्न भाव का कारक हो गया।

(५)

इस प्रकार लग्नेश + अष्टमेश, लग्न + चन्द्र और लग्न + होरा लग्न से आयु साधन हो जाने पर तीनों से भिन्न मत प्राप्त होने पर अन्य आचार्यों की तरह लग्न + होरा लग्न से प्राप्त आयु को ही ग्रहण किया गया है –

दीर्घायु	मध्यायु	अल्पायु
चरभे लग्नेश चरभे अष्टमेश	चरभे लग्नेश स्थिरभे अष्टमेश	चरमें लग्नेश द्विस्वभावे अष्टमेश
स्थिरभे लग्नेश द्विस्वभावे अष्टमेश	स्थिरभे लग्नेश चरभे अष्टमेश	स्थिरभे लग्नेश स्थिरभे अष्टमेश
द्विस्वभाव भे लग्नेश स्थिरभे अष्टमेश	द्विस्वभावे लग्नेश द्विस्वभावे अष्टमेश	द्विस्वभावे लग्नेश चरभे अष्टमेश

'त्रयाणा भिन्न भावं च, लग्न होरा कृतं स्मृतम्

आयुर्ज्ञान का यह चक्र अन्य आचार्यों के ही समान है, इसमें कोई भेद नहीं है।

अन्य आचार्यों ने—

'द्वात्रिंशपूर्वमल्पायु मध्यमायुस्ततो भवेत्'

अर्थात ३२ वर्ष तक अल्पायु: ३३ से ६४ तक मध्यायु ६४ के ऊपर दीर्घआयु माना है। किन्तु इस ग्रन्थ में ३३ वर्ष तक अल्पायु ६६ तक मध्यायु ६६ से ऊपर १०० तक दीर्घ या पूर्णायु माना है—

शतायुपूर्ण मित्युक्त, षटषष्टि मध्यमं तथा।
भवत्रिंशद्भवेद्ल्पं, ततन्मध्येनुपातत: ।।

*   *   *

जैमिनीय सूत्र में जो कि आज कल आयु साधन के हेतु सर्वाधिक उपयोग में लाया जाता है तथा सत्याचार्य ने स्पष्ट आयु साधन के हेतु ग्रहों के अंशों के माध्यम से आयु साधन की जो विधि दी है, वह सर्व विदित होने से यहाँ पर उसका उल्लेख करना आवश्यक नहीं है। हमारे ग्रन्थकार ने आयु साधन के हेतु ग्रहों में कोई सम्बन्ध नहीं रक्खा है, केवल लग्न एवं कुण्डली (होरालग्न) से ही स्पष्ट आयु साधन का विधान है—

उसका प्रकार है कि जसा ऊपर कहा जा चुका है, दिनमान अथवा रात्रिमान के १।१२ बारहवें हिस्से का एक होरालग्न होता है जो दिन एवं रात्रिमान के घड़ी पलों के घटा-बढ़ी से कभी कम कभी अधिक होगा। काल्पनिक रूप में यदि हम दिन और रात्रि प्रत्येक ३०·३० के बराबर मान लें तो एक लग्न ढाई घड़ी का होगा। होरालग्न के मान को ३३ भागों में विभक्त करने पर एक भाग का मान एक वर्ष का होगा।

जन्म के समय होरालग्न यदि प्रवेश हो रहा है तो पूर्वोक्त आयु पूर्ण होगी, होरालग्न जितना अधिक व्यतीत हो चुका होगा, प्रत्येक ३३वें भाग में १-१ वर्ष के क्रम से आयु कम होती जायेगी।

'तत्र होरा प्रथम भावे पूर्णम्'
'चरमभावे तु दीर्घप्रारम्भम् मध्ये अनुपात:'

उदाहरणार्थं एक कुण्डली

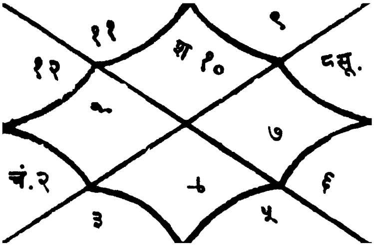

श्री सूर्योदयादिष्टम् ११/३०
दिनमान ३३/०

तदनुसार ३३ के बारहवें भाग २ घ. ४५ पल का होरा लग्न हो गया है। इष्टकाल पर्य्यन्त ४ भाग व्यतीत होकर पंचम भाग चला है, अत: लग्न से उलटे पंचम कन्या यह होरा लग्न हुआ।

पंचम भाग का आरम्भ ११/० इष्ट से हुआ है, अत: जन्म समय पर पंचम भाग के ३० पल व्यतीत हुए हैं। २/४५ में ३३ का भाग देने पर ५ पल का एक भाग हुआ अत: जन्म समय ६ भाग व्यतीत हो चुके हैं।

पूर्वोक्त तीनों प्रकार से आयुसाधन करने पर मध्यायु चक्र द्वारा सिद्ध होती है, और जन्म समय होरालग्न के ३३वें भाग के ६ भाग व्यतीत हो चुके हैं, एक भाग का मान १ वर्ष अत: ६ भाग के ६ वर्ष इन्हें मध्यायु का मान ६६ में घटा दिया तो शेष ६० वर्ष यह स्पष्ट आयु हुई, इसी प्रकार अधिक सूक्षता से मास, दिवसों की भी आयु ज्ञात हो सकती है।

मालव्ययोग भंग

जन्म लग्न से केन्द्र अथवा त्रिकोण में शुक्र यदि स्वक्षेत्री या उच्च का हो तो मालव्य योग कहा जाता है। यह योग महान राजयोग सूचक माना गया है। यह देखने को मिला है कि बहुत से मनुष्यों के जन्मकुण्डली में मालव्य योग रहते भी वे दरिद्र ही रहते हैं, अथवा उन्हें राजयोग नहीं प्राप्त होता ? इसका क्या कारण है ? इस विषय पर मैं पिछले काफी दिनों से सोचता रहा हूँ, इसी ग्रन्थ में मुझे एक इस प्रकार का सूत्र मिला है जिससे मेरे सन्देह का समाधान होता है।

> जीवे शनियुते दृष्टे, मालवी योग भंगवान्।
> भृगुरुच्चफलं व्यर्थं, ग्रहाच्छिद्रेण कथित: ।।

इससे यह सिद्ध हो जाता है कि बृहस्पति पर न तो शनि की दृष्टि हो, न शनि से युक्त हो, अन्यथा मालव्य योग का पूर्ण फल नहीं होगा।

नीच-उच्च ग्रहों का फल

यों सामान्यत: उच्च के ग्रहों को श्रेष्ठ माना गया है, उच्चग्रहों वाले बालक को भाग्यवान कहा जाता है। किन्तु मेरे सम्मुख अनेकों इस प्रकार की कुण्डलियां भी आई हैं, जिनमें तीन-तीन चार-चार ग्रह भी उच्च के थे, किन्तु उनका जीवन प्राय: साधारण था। उच्च के ग्रहों में नवांश का विशेष विचार होता है, भले ही कितने ही ग्रह उच्च के हों यदि वे नवांश में भी उच्च या स्वक्षेत्री रहें, तभी पूर्ण फल होगा, अन्यथा नहीं।

प्राय: बहुत से ज्योतिर्विद जब यह देखते हैं कि कुण्डली में ग्रह उच्च के हैं और कुण्डली वाले का जीवन एक साधारण है, तो कह देते हैं कि— मालूम होता है यह कुण्डली शुद्ध नहीं है, नहीं तो इतने अच्छे ग्रह होकर आप कि यह स्थिति न होती इस विषय में हम इस ग्रन्थ से कुछ प्रमाण दे रहे हैं, जिससे यह सिद्ध होता है कि कभी-कभी उच्च के ग्रहों का कैसा उलटा प्रभाव होकर दरिद्र योग बन जाता है —

समस्तखेटेषु च उच्चराशौ, स्थितेषु नीचांशगतेषु तेषु।
महीशपुत्रोऽपि रसाधिपश्च, भिक्षाशिनो मुख्य दिगम्बर स्यात् ।।

अर्थात भले ही सम्पूर्ण ग्रह उच्च के हों, किन्तु यदि वे नीच नवांश में हों तो भले ही राजा के घर में जन्म हो वह बालक भिक्षा मांगकर खाये, और नंगा रहे।

* * *

इसी प्रकार नीच के ग्रह भी कभी-कभी राजयोग करते हैं, भले ही वह नीच राशि में हो, यदि उसका नवांश उच्च या स्वक्षेत्री है तो वह शुभ फल ही देगा।

नीचोच्चभागे धनिक: सुभोगी, योगांशके भाग्यकुल प्रसूत:।

* * *

स्वोच्चेनीचांशके दु:खी, नीचे स्वोच्चांशगे सुखी।
स्वांशे वर्गोत्तमे भोगी, राजयोग भविष्यति ।।

कुछ विशेष योग

इसी ग्रन्थ के आधार पर हम कुछ प्रसिद्धयोग भी ज्योतिर्विदों के हितार्थ यहाँ पर दे रहे हैं—

(१) मत्तमातंग योग :—लग्नेश जिस राशि में उच्च का होता हो उस राशि में कोई ग्रह केन्द्र या त्रिकोण का स्वामी स्वक्षेत्री भी होकर केन्द्र या त्रिकोण ही में बैठा हो तो मत्तमातंग योग होता है, अतुलसम्पत्ति राज योग तथा विश्व-विश्रुत कीर्ति दायक योग है। उदाहरण के हेतु—मेष लग्न हो, लग्नेश की उच्च रशि मकर में केन्द्रेश शनि केन्द्र में (दशम) स्थित हो। अथवा—सिंह लग्न हो, लग्नेश की उच्च राशि मेष में केन्द्र (चतुर्थेश) मंगल स्वक्षेत्री भाग्य में बैठा हो। इत्यादि, लग्नेश भी बली हो तो विशेष फल होगा।

केन्द्रेशा कोणनाथा स्वभवन निहिता लग्नदाथस्यतुंगे।
केन्द्रवाथ त्रिकोणे यदि भवतितदा मत्तमातग योग: ॥
जातोऽस्मिन् भेरिकाणां मदगजतुरगस्यंदनानां निनादै।
नित्यं नादस्य गानी प्रवलतर गृहाचार वेश प्रसिद्ध: ॥

अखण्ड साम्राज्य योग

लाभेश, कर्मेश, धनेश इनमें से कोई एक ग्रह चन्द्रमा से केन्द्र में हो तथा बृहस्पति पंचमेश या लग्नेश हो तो अखण्ड साम्राज्य सुख होता है।

महा पण्डित योग

सूर्य और चन्द्रमा एक ही राशि में हों, अथवा एक ही अंश में हों, लग्नेश उच्च का हो, बृहस्पति पंचम हो अथवा उच्च का हो यह महा पण्डित योग है। शास्त्रकार, विद्वान, राज्य द्वारा सम्मान प्राप्ति, वक्ता, ज्ञानवान् हो यह इस योग के फल हैं।

अल्पायुयोग—

जन्म समय मिथुन का सूर्य मकर नवांश, धन में कर्क नवांश में, मीन में वृश्चिक नवांश में, कन्या में मेष नवांश का हो तो अल्पायु योग बनता है।

अमलायोग—

जन्म लग्न से अथवा चन्द्रमा से कर्मस्थान में यदि कोई शुभग्रह बली हो तो अमलायोग बनता है। इसका फल अतुल कीर्ति तथा जीवन पर्यन्त अतुल सम्पत्ति है।

नीचभंग—

जन्मकुण्डली में जो ग्रह नीच हो, उस राशि के उच्च का स्वामी और उस राशि का स्वामी लग्न या चन्द्रमा से केन्द्रवर्ती हो तो राजयोग होता है, तथा नीचभंग हो जाता है। उदाहरणार्थ—बुध मीन राशि में नीच का होकर बैठा है

मीन शुक्र की उच्च राशि है और मीन का स्वामी बृहस्पति है, अतः बृहस्पति और शुक्र लग्न या चन्द्र से यदि केन्द्रवर्ती हों तो बुध का नीच दोष नहीं रहेगा।

त्रिकेश योगेराजयोग:—

ज्योतिषशास्त्र में षष्ठ, अष्टम, व्ययभाव के स्वामियों को अशुभ माना गया है, कहा गया है कि जहाँ यह हों उस भाव की हानि होती है किन्तु यदि इनका आपस में ही परस्पर सम्बन्ध हो तो राजयोग हो जाता है—अर्थात षष्ठेश ६, ८, या १२ में हो, अष्टमेश और व्ययेश भी ६,८,१२ ही में हो—

षष्टाष्टम व्ययाधीशा अन्योन्य यदि वीक्षिताः।
क्षेत्रपरस्पराक्रान्ता महाराजो भविष्यति ॥

दुराचार व्यभिचार से शत्रुता

सप्तम, नवम, पंचम शुक्र हो, तथा सप्तम और दशम नवांश पापग्रह से युक्त हो (नवमांश कुण्डली में) तो जातक अपने व्यभिचार (परस्त्री गमन) के कारण समाज में अपने शत्रु उत्पन्न करेगा।

राजपत्नी भोग योग

(१) चन्द्रमा और शुक्र यदि दशमभाव में हों, अथवा इससे ५वीं ६वीं राशि पर हो।

(२) अथवा शुक्र ८, ५, ९, ७ स्थान में हो, अथवा उच्च का हो, और सप्तमनवांश (नवांश कुण्डली में सप्तमभाव) पाप सहित हो तो वह मनुष्य राजस्त्री से अथवा अन्य कोई उच्च स्त्री से अनुचित सम्बन्ध रखता है।

राजपूजायोग: —

भाग्येश बली अथवा उच्च का हो, तथा लग्न से केन्द्र या त्रिकोण में बुध के सहित हो, चन्द्रमा की उस पर दृष्टि हो तो राजपूजा योग होता है। राज्य द्वारा विशेष सम्मान पुरस्कार मिले।

वेदान्तवेत्ता योग

लग्नेश अपने वर्गोत्तमनवांश में हो, या उच्च का हो, तथा शुक्र से दृष्ट हो, जातक वेदान्तवेत्ता तथा ईश्वरतत्व का ज्ञाता होता है।

यह कुछ संक्षिप्त में लिखा है, आशा है इससे ज्योतिर्विदों को कुछ न कुछ लाभ अवश्य होगा, आज ज्योतिषशास्त्र में शोध की विशेष आवश्यकता है, अन्यथा जो आज है कल को वह भी नहीं रहेगा।

सिंहस्थ गुरु में—

विवाहादि मंगलकार्य निषिद्ध नहीं हैं

सिंह राशि में गुरु अर्थात् बृहस्पति हर बारह वर्षों बाद आता है, और एक वर्ष रहता है। कुछ आचार्यों ने कुछ प्रतिबन्धों के अनुसार इस अवधि में विवाहादि मंगलकार्यों को निषिद्ध माना है, लेकिन यह निषेध पूरे वर्ष भर तथा सार्वदेशिक नहीं है। कुछ अपवादों को छोड़कर सिंह के गुरू में भी विवाहादि मंगल कार्य सर्वथा शुभ माने गये हैं।

पिछले दिनों कुछ समाचार पत्रों में ऐसे भ्रामक समाचार अतिरंजित रूप से प्रकाशित हुए कि अगले दो वर्षों विवाहादि कार्य शुभ नहीं हैं और इस समय विवाह करने पर अनिष्ट की आशंका है अत: इस बीच विवाहादि सम्पन्न न हो पायेंगे. इस समाचार से जन साधारण में विशेषत: उन लोगों को जिनके घरों में विवाह योग्य प्रौढ़ कन्यायें हैं, बड़ी चिन्ता हुई है और देखा गया है कि वे बड़ी चिन्ता एवं निराशा में इन समाचारों की सत्यता के बारे में स्थानीय विद्वानों से पूछ-ताछ करते फिर रहे हैं।

अब जनता की मूर्खता देखिये—इस समाचार पर टिप्पणी करते हुए एक सज्जन कहते हैं कि "विवाह के लग्न जिसका विवाह ठहर जाय उसके लिए तो हैं ही, जिसका न ठहरे उसको नहीं हैं" उनके इस कथन का ऐसा अभिप्राय है कि वास्तव में दो वर्ष तक विवाह शुभ नहीं है, लेकिन जिसका विवाह निश्चय हो जाय वे ऐसे निन्दित समय में ही कर लेते हैं। ऐसा कहने वाले सज्जन कोई विद्वान न थे। अपितु एक परम्परा वादी लकीर के फकीर वयोवृद्ध थे। इससे यह प्रतीत होता है कि हमारे समाज में आज भी ऐसे सैकड़ों—लाखों रुढ़िवादी व्यक्ति हैं जो किसी समाचार या कथन को परखे बिना, बिना उस पर विचार किये ही उसे सत्य मानकर अन्ध विश्वास कर लेते हैं।

समाज में ऐसे व्यक्ति भी अवश्य मौजूद हैं जो शास्त्रों की व्यवस्था का उल्लंघन कर कुसमय में भी कार्य करते ही हैं। लेकिन हम किसी को शास्त्रीय व्यवस्था को तिलांजलि देकर आधुनिक सभ्यता की मनमानी करने की आज्ञा

नहीं देते । मेरा केवल इतना अनुरोध है कि किसी के वाक्य को केवल उसके मौखिक कहने पर प्रमाण न माना जाय, यदि कोई ऐसा शास्त्रीय प्रमाण हो तो उसकी पूरी खोजबीन की जाय, प्रस्तुत किया जाय। शास्त्रों का अनुशीलन किया जाय, और सत्य को उद्घाटित किया जाय कि वास्तविकता क्या है, इस प्रकार शास्त्र का जो आदेश हो उसका पालन किया जाय।

कुछ लोग अपनी पुष्टि के लिये छल-छद्म का आश्रय लेते हैं, ऐसे लोगों को जो छल-छद्म से अपने स्वार्थ के लिए जनता को अन्धकार में रखते हैं, बहिष्कार किया जाय। उदाहरण के लिए मेरे सामने एक पंचांग है, जिसमें उसके सम्पादक ने अपने मत की पुष्टि के लिए कोई शास्त्रीय प्रमाण न देकर चार-पाँच ऐसे प्रतिष्ठित लोगों के नाम दे दिये हैं कि (जो सभी स्वर्गीय हो चुके हैं) इनका यही मत था। क्योंकि मेरे पास इस बात का प्रमाण था कि इन लोगों का ऐसा मत नहीं था, अत: स्पष्टीकरण को जब मैंने पंचांग के सम्पादक से सम्पर्क स्थापित किया और पूछा कि इन लोगों (स्वर्गीयों) का ऐसा मत था इसका क्या कोई लिखित प्रमाण है ? तो बड़े संकोच के साथ उन्होंने बतलाया कि "ऐसा मेरे सुनने में आया था" सैकड़ों व्यक्ति ऐसे होंगे जो ऐसी बातों पर विश्वास कर लेंगे। इतना छान बीन कौन करे ? लेकिन मरे हुए व्यक्तियों का अपने स्वार्थ के लिए झूठा प्रयोग करना क्या वांछनीय है ?

कारण क्या है ?

यह कहा जा रहा है कि सिंहराशि में बृहस्पति के आ जाने से विवाहादि वर्जित हैं। इसका कहाँ तक औचित्य है, इस विषय पर मैं कुछ शास्त्रीय प्रमाण प्रस्तुत करूंगा। वस्तुत: अभी तक किसी मान्य ज्योतिष संगठन के द्वारा, अथवा किसी मान्य ज्योतिर्विद द्वारा सिंहस्थ गुरू में शुभ कार्यों का निषेध नहीं बतलाया गया है, इसके विपरीत अनेक ज्योतिर्विद संगठनों, पंचागकारों, विद्वानों के द्वारा सिंहस्थ गुरू में विवाहादि दोष रहित मानकर शुभकर्म करने की सम्मति दी गई है, और यह सही भी है क्योंकि इस विषय में जो तथ्य हैं वह निम्न हैं—

(१) सिंहस्थ गुरु में विवाहादि कार्यों की निषिद्धता कुछ महर्षियों ने मानी है, कुछ ने नहीं अत: सिंहस्थ गुरु में विवाह निषिद्ध हों यह सर्वसम्मत नहीं है। जहाँ कुछ आचार्य इसे शुभ नहीं मानते वहीं कुछ आचार्य सिंह के बृहस्पति में विवाह करने से नव दम्पति को धन, सुख, भाग्य, पशु, पुत्र, राज्य, सौभाग्यशाली श्रेष्ठ होना मानते हैं—

सिंहस्थमध्ये यदि पितृऋक्षे,
भवेद् गुरुस्याच्च तदा विवाहः ।
कृतेतु माप्नोति धनं च सौख्यं,
भाग्यं च पुत्रं पशु राज वृद्धि ।।

× ×

सिंहेपि भगदैवत्ये गुरौ पुत्रवती भवेत् ।
अत्यन्त सुभगा साध्वी धन धान्य समन्विता: ।।
मघांत्यवत्वा यदागच्छे त्फाल्गुनीं च बृहस्पति: ।
पुत्रिणी धनिनी कन्या सौभाग्य सुख मश्नुते ।।

—ज्योतिष मणिमाला

इत्यादि ।

(२) जिन आचार्यों ने सिंहस्थ गुरु में विवहादि (केवल कुछ प्रान्तों में) निषिद्ध माना है, उन्होंने भी केवल सिंहस्थ गुरु में ही नहीं अपितु बृहस्पति के वक्र में, अतिचार में, विश्वघस्त्र पक्ष आदि में भी विवाह निषेध माना है, लेकिन विश्वघस्त्र पक्ष में वक्रत्व में अतिचार में सर्वत्र बराबर विवाहादि होते हैं । तो ऐसी दशा में सिंहस्थ में ही निषेध क्यों ? वक्रत्व, अतिचार में निषेध क्यों नहीं ? इससे स्पष्ट है कि इस मत का महत्व अधिक नहीं है ।

(३) जिन आचार्यों ने सिंहस्थ गुरु में विवाह निषेध माना है उन्होंने भी सार्वदेशिक निषेध नहीं माना है केवल गंगा नदी के दक्षिण और गोदावरी के उत्तर इस मध्यस्थ देशों (मध्यप्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र, गुजरात,) में ही निषेध माना है । शेष देश नेपाल, आसाम, अधिकांश उत्तर प्रदेश, मद्रास, केरल, उत्तरी बिहार, उत्तरी बंगाल आन्ध्रप्रदेश दोष रहित है ।

गोदाया याम्य दिग्भागे भागीरथ्यास्तथोत्तरे ।
विवाहादि शुभं कार्यं सिंहस्थेपि बृहस्पतौ ।।

—ज्योतिर्निबन्धे

+ + +

भागीरथ्युत्तरे तीरे गोदावर्याश्च दक्षिणे ।
अतोद्वाहादि कर्माणि सिंहगेज्ये न दुष्यति ।।

—गर्ग

+ + +

भागीरथ्युत्तरे कूले गोदावर्याश्च दक्षिणे ।
अतोद्वाहादिकं कर्मं सिंहस्थेज्ये न दुष्यति ।।

—वशिष्ठ

इत्यादि सैकड़ों प्रमाण हैं ।

(४) मुहूर्तेतर ग्रंथों म बृहस्पति को सिंहस्थ होना श्रेष्ठ माना गया है; क्योंकि वह सिंह में परममित्र राशि का होगा । अत: सिंह के गुरु में निषेध का कोई कारण स्पष्ट नहीं होता ।

(५) सिंह में बृहस्पति होने पर भी जब मेष में सूर्य हों तब किसी भी प्रान्त में दोष नहीं है, विवाह शुभ है—

सिंहे जीवे रवौ मेषे विवाहस्तत्र कारयेत् ।
पुत्र पौत्रादि सौभाग्यं लभते सुख सम्पदाम् ।।
—ज्योतिष मणिमाला ।

मेषस्थे दिवसकरे
सिंहस्थे वज्रपाणि सचिवेच ।
यस्या: परिणयनमसौ,
साध्वी सुखसम्पदोपेता ।।

\+ \+

सिंहगते सुरमंत्रिणि कन्या मेषगते तपने परिणीता ।
भूषण रत्नयुता व सुशीला सत्यवती गुणकीर्ति समेता ।।
—शौनक:

इत्यादि सैकड़ों ओर भी वचन हैं जिनका आशय है कि ऐसे समय में विवाह होने से कन्या साध्वी, सुखी, सम्पत्तिवान सुशीला, सत्यवक्ता, यशस्वी, पुत्र पौत्रादि सुख से युक्त तथा सौभाग्य शालिनी होती है ।

इससे अधिक आप और क्या चाहते हैं ?

(६) विवाह विषयक इतनी शुद्धि का विचार उस समय में था जब ६।७ वर्ष की छोटी-छोटी आयु में कन्याओं का विवाह होता था, वह भी अन-देखे सुने । आज युग बदल गया है । ऐसा मत भी हमारे ऋषि-मुनियों का ही है, उन्हीं की आज्ञा है । वे दिव्य चक्षुओं से आने वाले समय की गति जानते थे, इसके पीछे उनकी विचारशील बुद्धि थी । अत: बिना अधिक विचार किये केवल शुभ लग्न देखकर विवाह कर देने की महर्षियों ने ही स्वयं सलाह दी है—

वरलाभोति कालाभ्यां दुर्भिक्षाद्देशविप्लवात् ।
विवाह: शुभदो: नित्यं सिंहस्थेपि वृहस्पतौ ।।

(७) भारतीय साहित्य में प्राजापत्य, ब्राह्म, देवआर्ष, इन चार प्रकार के विवाहों में ही विशेष समय शुद्धि कहा है । वर-कन्या परस्पर एक दूसरे

देखकर भले ही वे माँ-बाप की सहमति से हों या स्वेच्छा से, तथा लेन-देन के साथ (दहेज) जो विवाह होते हैं उनमें शुद्धि का विचार नहीं है। विवाह आज इसी भांति हो रहे हैं।

निष्कर्ष

इस प्रकार तथ्यों को देखते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि—

[अ] गंगा से उत्तर और गोदावरी से दक्षिण के देशों में (अधिकांश उत्तर प्रदेश, मद्रास, केरल, उत्तरी बिहार, नेपाल, आसाम, उत्तरी बंगाल, पंजाब, हि० प्र०, काश्मीर, आन्ध्र प्रदेश) सिंहस्थ गुरु का अंशमात्र भी निषेध न होने से विवाहादि शुभ कार्य चालू रहेंगे।

[आ] गंगा-गोदावरी के मध्यवर्ती देशों में भी (मध्य प्रदेश, दक्षिणी बिहार, राजस्थान, महाराष्ट्र, गुजरात, उड़ीसा, बंगाल, प्रदेश) मेष के सूर्य में (१४ अप्रैल से १४ मई तक) विवाह सर्वथा दोष रहित शुभ रहेंगे। और पूर्वोक्त तथ्यों १, २, ६, ७ को देखते हुए आवश्यकता पड़ने पर इन प्रदेशों में भी विवाह किये जा सकते हैं।

अन्दोलन का उत्तर

राजस्थान, महाराष्ट्र, गुजरात आदि प्रान्तों में जहां कि सिंह के गुरु का दोष है, पूर्वोक्त तथ्यों १, २, ६, ७ को देखते हुए वहां के विद्वान् भी विवाहादि कार्यों के पक्ष में हैं। सुप्रसिद्ध विद्वान् महामहोपाध्याय पं० दयाराम गंगाधर शर्मा आदि विद्वानों ने इन तथ्यों का समर्थन करते हुए इन प्रान्तों में विवाहादि चालू रखने को लिखा है और सस्ती लोकख्याति के नाम पर राजस्थान व देहली से प्रसारित किये जाने वाले ऐसे अनर्गल प्रचार की निन्दा की है।

ज्योतिर्विदों का दायित्व

इस शास्त्रीय व्यवस्था पर ज्योतिषियों को अपना दायित्व समझना चाहिए, और देश, काल, शास्त्र, पात्र का सम्यक् विचार कर युक्ति संगत निर्णय देना चाहिए। शास्त्रादेश के विरुद्ध केवल निजी स्वार्थ एवं लोक यश की दृष्टि से किसी आन्दोलन को जन्म देना श्रेयस्कर नहीं है। ध्यान रहे कि माता-पिता के हृदय में भय को जन्मदेकर वर कन्याओं के विवाह में विघ्न, विलम्ब डालकर जैसा कि देवर्षि नारद जी का वचन है ज्योतिर्विद ब्रह्महत्या के भागी न बनें। ●●●

मकरस्थ गुरु और गुर्वादित्य

मकर राशि में बृहस्पति प्रत्येक बारह वर्ष बाद आता है और लगभग एक वर्ष रहता है। कुछ विद्वानों का कथन है कि इस अवधि में विवाहादि मंगलकार्य वर्जित हैं। लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है। वास्तविकता क्या है? सही स्थिति एवं निर्णय से जन साधारण को भी परिचित होना चाहिये।

ज्योतिष शास्त्र के मूल प्रवर्तक [जिन्होंने ज्योतिष शास्त्र के सिद्धान्तों को बनाया, ब्रह्माण्ड का अध्ययन कर ग्रह एवं तारों की गति, दिशा, तत्व, स्थिति, फल आदि का पता लगाकर ज्योतिष शास्त्र के आधारभूत सिद्धान्त तैयार किये] निम्नांकित १८ हैं—

ब्रह्माचार्यो वशिष्ठोऽत्रिर्मनुः पौलस्त्य रोमशो।
मरीचिरंगिरा व्यासो नारदः शौनको भृगु ।।
च्यवनो यवनो गर्ग कश्यपश्च पाराशरः।
अष्टादशेते गम्भीरा ज्योतिः शास्त्र प्रवर्तका ।।

एतदर्थ यह १८ आचार्य जो कुछ कहेंगे, वही मत मान्य होगा। दो चार पुस्तकें देखकर, या ज्योतिष शास्त्र में आचार्यत्व प्राप्त कर या पूर्वोक्त महर्षियों के सिद्धान्तों को लेकर पंचांग की गणना कर अथवाकुछ पुस्तकें लिखकर इन आचार्यों की बराबरी नहीं की जा सकती। उल्लेखनीय है कि बृहज्जातक आदि ग्रंथों के रचयिता आचार्य वराहमिहिर, ग्रहलाघव के रचनाकार गणेश दैवज्ञ, नीलकण्ठ आदि प्रसिद्ध विद्वान भी इन आचार्यों की तुलना में नहीं आते, तब फिर सामान्य ज्योतिर्विदों का मत कैसे मान्य हो सकता है?

इन १८ आचार्यों में ब्रह्मा, भास्कराचार्य, पौलस्य, रोमश इन चार आचार्यों ने केवल सिद्धान्त विषयक (एस्ट्रोनोमी) कार्य किया एतदर्थ मकर के बृहस्पति में शुभ कार्य हो या नहीं? इस विषय पर इनका कोई मत नहीं है।

मनु, मरीचि, अंगिरा, व्यास, नारद, च्यवन, यवन इन सात आचार्यों ने इस विषय पर न तो हाँ कहा है और न नहीं। अत: इन्होंने कोई दोष नहीं माना है।

शेष ६ आचार्यों में केवल गर्ग ने मकर के गुरु में केवल २ मास विवाह आदि अच्छा नहीं कहा है, (शेष १० महीनों में शुभ कार्य की आज्ञा इन्होंने भी दी है।

'षष्टि दिवसा वर्जनीया प्रयत्नत:'

शेष ५ आचार्यों ने महाराष्ट्र, सिन्ध, नर्मदा नदी से पश्चिम गुजरात, गण्डकी से पूर्व बिहार, उड़ीसा, बंगाल में मकर के गुरु का दोष माना है, शेष समस्त देश में शुभ कार्यों की आज्ञा दी है।

उदाहरण—

रेवापूर्वे गण्डकी पश्चिमे च, शोणस्योदक् दक्षिणे नीच इज्य:।
वर्ज्यो नायं कौंकणे मागधे च, गौड़े सिन्धौ वर्जनीय: शुभेषु ।।
(शौनक)

* * *

मृगराशि गते जीवे दिनषष्टि विवर्जयेत्।
गर्गादि मुनि वाक्यत्वात् कर्तव्यं शुभ मन्यत: ।।
(भृगु)

* * *

नीचस्थोपि गुरुर्वक्री वर्ज्यो वै मागधे जने।
अन्यदेशे शुभं प्राहु: वशिष्ठात्रिपराशरा: ।।
(वशिष्ठ, अत्रि, पराशर)
—व्यवहारोच्चये।

इस प्रकार १८ आचार्यों में केवल एक गर्ग मुनि केवल २ मास तक विवाह आदि शुभ नहीं बतलाते, शेष आचार्यों की दृष्टि से कोई दोष नहीं है। एतदर्थ महाराष्ट्र, सिंध, गुजरात, बिहार, उड़ीसा, बंगाल को छोड़कर शेष समस्त भारत में कोई दोष न होने से शुभ कार्य होने चाहिए।

* * *

इन महा आचार्यों के अतिरिक्त अन्य सम्मानित आचार्यों ने भी शुभ कार्यों की अनुमति दी है—

(१)

नर्मदा पूर्वभागे तु शोणस्योदक् च दक्षिणे।
गण्डक्या पश्चिमे भागे मकरस्थो न दोषभाक् ॥

—लल्ल।

(२)

मकरस्थे तु तत्कार्यं न दोष: काल लोपत:।
कार्यं मकरगे जीवे विवाहाद्यखिलं बुधै: ॥

—भीमपराक्रमे

(३)

मागधे गौड़देशे च सिन्धुदेशे च कोंकणे।
व्रत चूड़ाविवाहं च वर्जयेन्मकरे गुरौ: ॥

—दैवज्ञ मनोहरे।

(४)

मकरस्थो महाजीवो वर्जयेत्पंचमाशकं ।
शेषेष्वपि च भागेषु विवाह: शोभनो मत: ॥

—देवीपुराणे।

(५)

अतिचारे सप्तदिनं वक्रे द्वादश मेवच।
मकरस्थेपि च वागीशे मासमेकं विवर्जयेत् ॥

—टोडरानन्दे। इत्यादि।

अस्ते वर्ज्यं सिंह नक्रस्थ जीवे वर्ज्यं केचित् वक्रगे चातिचारे।
गुर्वादित्ये विश्वघस्रे ऽपि पक्षे,························॥

इसका जन-साधारण सही अर्थ नहीं लगाते। इस सूत्र का उचित भाषानुवाद इस प्रकार है—

"मकर के गुरु में सिंह के गुरु में, शुक्र गुरु के वक्री होने पर या इनके अतिचारी होने पर, गुर्वादित्य में विश्वघस्त्र पक्ष में, कुछ आचार्यों के मतानुसार

कुछ देशों म शुभ काय वर्जित होंगे।" इस विषय में मिताक्षरा टीका में स्पष्ट उल्लेख है।

* * *

जो लोग अपनी अज्ञानता वश 'अस्ते वर्ज्यं" के अनुसार मकर के गुरु में शुभकार्यों का निषेध करते हैं, आश्चर्य है कि वे लोग गुरु के वक्र में, अतिचार में, लग्न कैसे देते हैं, उक्त सूत्र का ही उलटा-सीधा अर्थ लेकर वे अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहें तो उन्हें गुरु के वक्र में, और अतिचार में भी शुभ कार्यों के लग्न नहीं देने चाहिए।

* * *

आधुनिक स्थिति को देखकर यहाँ तक कि बिहार, गुजरात आदि प्रान्त के विद्वान भी मकर के गुरु में शुभ कार्यों के पक्षधर हैं।

उपरोक्त प्रमाणों को देखते हुए मकर के गुरु में विवाहादि कार्यों में कोई दोष नहीं है, केवल महाराष्ट्र गुजरात, बंगाल, बिहार, उड़ीसा के निवासी विशेष स्थितियों में ही शुभ कार्य करें, और अन्य भारतवासी यथापूर्व शुभ कार्य करें। यही निर्णय शास्त्र समस्त, तर्क सम्मत, समाज सम्मत है।

गुर्वादित्य निर्णय

गुर्वादित्य के बारे में भी आचार्यों के विभिन्न मत हैं। लल्ल और राजमार्तण्ड सूर्य तथा गुरु के एक राशि में स्थिति का दोष मानते हैं। भृगु और यवनाचार्य, हारीत, एक नक्षत्र में होने तक ही दोष मानते हैं, देवल ऋषि के मतानुसार एक पाद में होने तक ही दोष है और गर्ग, पराशर, शौनक, वाल्मीकि, गौतम जब तक बृहस्पति अस्त रहे केवल उसी समय तक दोष मानते हैं।

गुर्वर्केण युत: करोति मरणं—कालांशके भास्करे।
नक्षत्रैकगते वदन्ति यवना—पादस्थिते देवल: ।।

प्राहुर्गर्ग पराशरादि मुनय: चास्तंगते जीवके।
तस्मादस्तगते सुरेन्द्रसचिवे—कार्यं न कार्यं बुधै: ।।
—जगन्मोहने।

* * *

गुर्वर्क योग युवती विनाशो, यद्येक ऋक्ष यवना वदन्ति ।
अस्तंगते देवगुरौ भृगुश्च, हारीत पूर्वाश्चिचरणैक संस्थे ।।

*　　　　*　　　　*

ज्योतिष के आधुनिक सुप्रसिद्ध आचार्य वराह मिहिर तो केवल १० दिन ही गुर्वादित्य दोष मानते हैं—

' गुर्वादित्ये दशाह्नि स्यादस्ते मासद्वयं तथा ।"

*　　　　*　　　　*

स्वयं बृहस्पति ने सूर्य—गुरु को एक राशिगत होना गुर्वादित्य नहीं माना है, उनके मतानुसार सूर्य गुरु की राशि (९ या १२) में हो, और गुरु सूर्य राशि (५) में हो यह गुर्वादित्य है—

रविक्षेत्र गते जीवे, जीवक्षेत्र गते रवौ ।
गुर्वादित्य- स विज्ञेयो ।।– होरा प्रकाशे

इस प्रकार शुभ कार्यों में गुर्वादित्य त्याज्य तो है, किन्तु गुर्वादित्य की परिभाषा पूर्वोक्त यवनाचार्य, देवल, भृगु, हारीत, गर्ग पराशर, शौनक, गौतम के वचनानुसार बृहस्पति के अस्त रहने तक ही गुर्वादित्य कहा गया है ।

इन्हीं आधारों पर परम्परा से सम्पूर्ण भारत में बृहस्पति के उदय हो जाने पर दोनों के एक राशि में रहते भी विवाहादि शुभकार्य होते आये हैं ।

फलित में परिस्थितियों का प्रभाव

ज्योतिर्विज्ञान में फल कथन के पूर्व सावधानी अत्यन्त आवश्यक है। केवल किसी एक योग को देखकर कोई बात कहना अनुचित और हास्यास्प्रद हो सकती है। क्योंकि जन्म कुण्डली में सैकड़ों योग विद्यमान रहते हैं, एक योग होते भी दूसरा उसके विपरीत योग हो तो उसे निष्प्रभावी भी कर सकता है। अधिकांशत: सभी कुण्डलियों में ऐसे परस्पर विरोधी योग विद्यमान रहते हैं। यथा एक ही कुण्डली में कष्टयोग + दीर्घायु योग, सन्तान सुखयोग + सन्तानबाधा योग, निर्धन योग + सम्पन्न योग सदाचारी योग + दुराचारी योग इत्यादि विद्यमान रहते हैं। अत: सर्वप्रथम कुण्डली में विद्यमान सभी योगों का तुलनात्मक अध्ययन करके यह देखना होगा कि कौन योग कितना प्रभावी है? कोई योग किसी दूसरे विपरीत योग से निष्प्रभावी तो नहीं हो गया है। इसके बाद ही सम्बन्धित योग का फल कथन उचित होगा।

ज्योतिष में प्राय: यह प्रश्न उठता है कि विश्व में एक ही समय पर हजारों बच्चे जन्म लेते हैं, क्या उन सभी का भविष्य एक समान होगा जो एक ही समय जन्म लेते हैं?

यदि हम ज्योतिष की दृष्टि से विचार करें तो स्पष्ट है, कि ऐसे जातकों के जीवन में परस्पर कुछ समानता अवश्य हो सकती है लेकिन उनका जीवन अक्षरश: एक समान नहीं हो सकता। इसमें मुख्य कारण यह हैं कि :—

(अ) एक ही समय पर जन्म लेने वाले जातकों का जन्म विभिन्न देशों प्रान्तों में होने से अक्षांश तथा देशान्तर भेद के कारण न तो सबका एक इष्टकाल होगा और न जन्म लग्न ही एक होगा। अत: फल समान होना संभव नहीं है। अत: ऐसे जातकों में परस्पर कोई एक समानता तक नहीं होगी अपितु परस्पर भिन्नता ही होगी। यदि लग्न भी एक हो तब भी सूक्ष्मगणना (भावस्पष्ट, नवमांश, षोडशवर्ग, दशामान आदि) में अन्तर आना स्वाभाविक है।

(आ) हाँ, यदि जन्म का समय एक होने के साथ-साथ जन्म स्थान भी एक ही हो तो दोनों के जीवन में कुछ साम्यता अवश्य होगी। फिर भी काल, देश, कुल, आयु, आचार संग, कर्म के अनुसार उनके जीवन में पर्याप्त असमानता आ सकती है, महर्षि पाराशर ने इसी तथ्य को ध्यान में रखकर कहा है :—

> कालदेश कुलाचार संगकर्मानुसारत: ।
> दिशन्ति फलमेते हि ग्रहा: सूक्ष्मप्रमाणत: ।।

उदाहरण के रूप में यदि एक ही समय एक ही स्थान पर उच्च राजयोग में किसी राजघराने या उच्च अधिकारी के घर तथा एक पशुचालक के घर पुत्र उत्पन्न होता है, तो राजयोग का फल मिलेगा तो दोनों को। लेकिन जहाँ राजघराने या उच्च घर में उत्पन्न बालक राजा या मंत्री या उच्चाधिकारी होगा; वहीं गोपालक का पुत्र ग्राम का प्रधान, नगर का प्रधान या कोई अधिकारी ही होगा। इस प्रकार कुल, आचार, रहन-सहन, पैतृक आर्थिक स्थिति, प्रगति के अन्य साधनों आदि जन्मकालीन बाह्य परिस्थितियों का प्रभाव जातक पर पड़ना अनिवार्य है।

जन्म कुण्डली एक होते भी फलादेश भिन्न

यहाँ एक उदाहरण प्रस्तुत है—

स्व० कमलापति त्रिपाठी और स्व० इन्दिरा गांधी की कुण्डली में एक

स्व० इन्दिरा जी

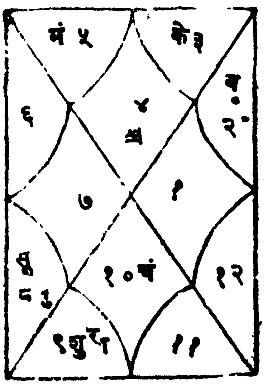

स्व० कमलापति त्रिपाठी

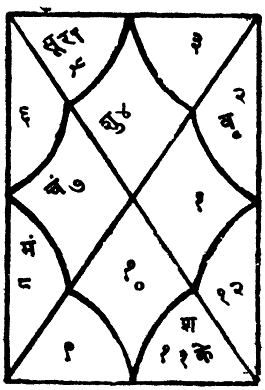

योग समान रूप से विद्यमान है। इस योग के बारे में मानसागरी में कहा गया है कि ' शत्रुओं के हाथों, बाण द्वारा रांगे की गोलियों से मृत्यु का भय हो।"
(शरै: समेतं च स रागकैश्च)

किन्तु स्व० इन्दिरा गांधी के प्रति इसका फल सत्य घटित हुआ जब कि स्व० कमलापति त्रिपाठी जी पर यह योग घटित नहीं हुआ, ऐसा क्यों ?

स्व० त्रिपाठी जी ने दीर्घायु प्राप्त की और कैंसर से मृत्यु को प्राप्त हुए। इस सम्बन्ध में स्व० त्रिपाठी जी की कुण्डली में विद्यमान अन्य योग द्रष्टव्य हैं—

(१) लग्नेश चन्द्र चतुर्थ और चतुर्थेश लग्न में दीर्घायु सूचक योग है—
"लग्नेशे तुर्यगते नृपप्रियं प्रचुर जीवितं कुरुते"

(२) अष्टमेश शनि-स्वगृही का अष्टम में स्थित है, यह भी दीर्घायु और उपद्रवरहित जीवन सूचक है—"व्याधिवर्जितो नीरुक्" अत: श्री त्रिपाठी का दीर्घायु होना और उक्त योग का अप्रभावी होना सिद्ध है। जब कि इसके विपरीत श्रीमती इन्दिरा गांधी का अष्टमेश शनि शत्रुक्षेत्री लग्न में है, जो आयु हानि कारक है।

एक बात यह भी चिन्तनीय है कि किसी भी विज्ञान में कोई भी नियम शतप्रतिशत सत्य सिद्ध नहीं होता। एक ही दवा एक ही रोग में किसी को लाभ करती है और किसी को नहीं—लेकिन इसके आधार पर आप दवा को अयोग्य या मिथ्या नहीं कह सकते। प्राय: जो नियम (फार्मूले) तीन चौथाई (७५ प्रतिशत) से ऊपर घटित हो जाते हैं, उन्हें मान्यता प्राप्त हो जाती है। अत: कोई भी सूत्र (फार्मूला) या नियम शत-प्रतिशत सत्य उतरे यह आवश्यक नहीं है, कुछ अपवाद हो सकते हैं।

ऐसा ही एक अपवाद है भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की कुण्डली। जिसमें दीर्घायु सूचक योग विद्यमान हैं किन्तु उन्हें दीर्घायु प्राप्त नहीं हुई। अत: ज्योतिर्विद को कोई भी शुभाशुभ फल गम्भीरता से सोच-विचार कर ही कहना चाहिए।

देश काल के अनुसार भी स्व० इन्दिरा गांधी और पं० कमलापति जी के समय में बहुत अन्तर है। विरोधी तो कमलापति जी के निरन्तर बने रहे लेकिन उनका राजनैतिक स्तर इतना ऊँचा अन्तर्राष्ट्रीय नहीं था कि उनके निधन से (उनको मारने से) राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में कोई अन्तर पड़ता। अत: देश काल एवं परिस्थितियों को देखते भी दोनों कुण्डलियों के फल में अन्तर सम्भावित है।

जैसे वर्षा का पानी पृथ्वी पर समान रूप से बरसता है लेकिन जिस पात्र में जितनी क्षमता होती है उसी के अनुसार ग्रहण करता है। यदि प्याला या गिलास है तो वही भरेगा और बाल्टी है तो बाल्टी भरेगी। इसी प्रकार आकाशीय ग्रहों की रश्मियां सभी पर समान पड़ती हैं लेकिन जातक अपनी देश, काल, परिस्थितियों के अनुसार ही उसे ग्रहण कर पाता है।

शिक्षक सभी छात्रों को समान रूप से पढ़ाता है लेकिन प्रत्येक छात्र अपनी क्षमता अनुसार ही उसे ग्रहण कर पाता है।

देश, काल कुल, आयु धर्म, जाति, का अन्य बातों पर भी प्रभाव पड़ता है, रंग-रूप आदि पर। चीनी एवं मंगोलियन प्रजाति के लोगों की नाक चिपटी ही रहेगी भले ही किसी भी लग्न में जन्म हो उनका कद भी छोटा ही होगा। कोई भी लग्न हो। इसी प्रकार किसी भी लग्न में जन्म हो योरोपवासी गोरा ही होगा जब कि अफ्रीकी गोर नहीं हो सकता।

धर्म जाति, कुल का भी प्रभाव पड़ता है। इस्लाम मतावलम्बियों में जहाँ बहुविवाह प्रथा है, सामान्य योग होते भी द्वितीय विवाह या पति-पत्नी परित्याग का योग बन जायगा। जब कि अन्य समुदाय में विशेष प्रबल योग होने पर ही योग प्रभावी होगा।

आयु भी विचारणीय होती है, जैसे ४०/५० की आयु के बाद सन्तानोत्पत्ति का योग होने पर भी योग निर्बल होगा।

साम्यता भी होती है।

एक ही समय पर एक ही स्थान में जन्म लेने वाले ऐसे लोगों के बहुत से उदाहरण मिलते हैं और उनके जीवन में एक समानता दृष्टि गोचर होती है, ऐसे ही आयरलैण्ड तथा इटली में एक ही समय पर जन्म लेने वाले दो जोड़ी जातकों का उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है :—

(१) आयरलैण्ड के कुक हैवेन शहर में एक ही मकान में रहने वाले दो परिवारों में कुछ मिनटों के अन्तर से दो पुत्र हुए। एक दम्पति ने अपने बच्चे का नाम एलेनर ग्रेडी रखा दूसरे ने अपने बच्चे का नाम पैट्रिक रखा। दोनों बच्चे धीरे धीरे अपने जीवन के स्वाभाविक विकास क्रम की ओर चल पड़े।

पैट्रिक और एलेनर दोनों अलग-अलग खेलते, अलग-अलग रहते। किन्तु एक दिन दोनों रोते-रोते घर पहुंचे दोनों के दाहिने पैर पर एक ही स्थान पर

चोट लगी थी। माता-पिता ने पट्टी कर दी, कोई ध्यान नहीं दिया। दोनों बच्चे पढ़ रहे थे, तब कई बार ऐसा हुआ कि यदि परीक्षा में पैट्रिक को ३०० अंक मिले तो दूसरे स्कूल में पढ़ रहे ग्रेडी को भी उतने ही अंक मिले। जिस दिन एलेनर के विवाह सम्बन्ध की बात चली ठीक उसी दिन पैट्रिक को भी, और संयोग की बात यह कि दोनों का विवाह एक ही दिन हुआ। दोनों की शादी एक ही दिन तय हुई और पहला बच्चा भी एक ही दिन हुआ।

बचपन में एक ही मकान में रहे एलेनर और पैट्रिक बड़े होने पर आपस में मिले तब उन्होंने इन समानताओं पर ध्यान दिया और अन्तिम समय भी वे समानता की एक और मिसाल छोड़ गये कि दोनों व्यक्तियों की मृत्यु भी एक ही समय पर हुई। उस समय दोनों अपने-अपने खेत में काम कर रहे थे।

(२) ऐसी ही विचित्र समानतायें थीं, इटली के सम्राट उम्बर्टो प्रथम तथा वहीं के एक होटल मालिक में। उस होटल मालिक को तो सम्राट का प्रतिरूप ही कहा जाता था। दोनों की शक्ल और चेहरे मोहरे इस प्रकार मिलते थे कि उम्बर्टो तथा होटल मालिक को एक समान कपड़े पहना कर खड़ा कर दिया जाय तो उनकी पत्नियों के लिए भी पहचानना असम्भव हो कि कौन हमारा पति है। सूरत शक्ल से ही नहीं नाम भी दोनों का एक ही था। पाठक किसी भ्रम में न पड़ जायं इसीलिए यहां एक को उम्बर्टो प्रथम तथा दूसरे उम्बर्टो को होटल मालिक कहा जा रहा था।

सम्राट उम्बर्टो और होटल मालिक उम्बर्टो का जन्म १४ मार्च १८४४ को प्रात: ठीक साढ़े दस बजे हुआ था। सम्राट उम्बर्टो टूरिन के राजमहल में जन्मे, तो होटल मालिक एक झोपड़े में। २ अप्रैल १८६६ को सम्राट उम्बर्टो का विवाह हुआ और उनकी पत्नी का नाम मर्घरिटा था। होटल मालिक का विवाह भी उसी दिन हुआ और उसकी पत्नी का नाम भी मर्घरिटा था। एक ही दिन युवराज सिंहासनारूढ़ हुए और दूसरे उम्बर्टो ने होटल खोला। २८ जुलाई १९०० को होटल मालिक की हत्या किसी ने गोली मारकर कर दी। उसी दिन उसी समय सम्राट उम्बर्टो को भी एक पारितोषिक वितरण के समय गोली मार दी गयी।

इन तथ्यों से ज्योतिष शास्त्र एवं उसकी वैज्ञानिकता सिद्ध होती है।

पौरुषार्थ और भाग्य का द्वन्द्व

जन साधारण की यह सामान्य जिज्ञासा है कि "भाग्य" अर्थात् "दैव" तथा "पौरुषार्थ" में कौन प्रबल है ? कुछ लोगों का कथन है कि पौरुषार्थ से ही सफलता प्राप्त होती है और इसके विपरीत कुछ लोगों का यह विश्वास है कि "भाग्य" में जो सुलभ होता है उसी में सफलता मिलती है अन्यथा नहीं। प्रश्न उठता है कि क्या "भाग्य" के भरोसे बैठकर पौरुषार्थ या उद्योग करना छोड़ दें ? अथवा सफलता मिले या न मिले व्यर्थ का परिश्रम करते रहें ?

जैसा कि अनेक बार स्पष्ट किया जा चुका है, 'ज्योतिष शास्त्र' का विचार यह है कि गाड़ी के पहिये की तरह 'भाग्य' और 'पौरुषार्थ' दोनों परस्पर एक दूसरे के पूरक हैं। यदि 'भाग्य' साथ न दे तो पौरुषार्थ या उद्योग व्यर्थ है और इसी प्रकार 'भाग्य' में कुछ होते भी उसके निमित्त पौरुषार्थ न करने पर भी वह व्यर्थ है।

वस्तुत: ज्योतिषशास्त्र इसी विषय वस्तु का विश्लेषण करता है कि 'भाग्य' में क्या है और क्या नहीं है तथा भाग्य' में जो है उसके निमित्त कब प्रयास किया जाय। यह भी विश्लेषण करता है कि भाग्य' में क्या अभाव है एवं व्यर्थ का प्रयास किस बारे में न किया जाय। उसका मार्ग दर्शन यह है कि 'भाग्य' में क्या है और उसके निमित्त कब प्रयास करना अनुकूल होगा— ताकि भाग्य और पौरुषार्थ इन दोनों की अनुकूलता से सफलता प्राप्त हो सके।

योग वासिष्ठ का विवेचन

इस सम्बन्ध में 'योगवासिष्ठ' की दार्शनिक व्याख्या इस प्रकार है—

"पूर्वजन्म के कर्म (भाग्य या दैव) तथा इस जन्म के कर्म (पौरुषार्थ) दो भेड़ों की तरह निरन्तर परस्पर लड़ते रहते हैं, उनमें जो भी बलवान होता है वही दूसरे को क्षण भर में पछाड़ देता है।"

इसका आशय यह हुआ कि यदि 'भाग्य' प्रबल और अनुकूल न हुआ तो महान से महान पौरुषार्थ करने पर भी वह निष्फल जायगा। यदि 'भाग्य' हुआ तो पौरुषार्थ करने पर 'भाग्य' पर भी विजय प्राप्त की जा सकती

है, अर्थात् 'भाग्य' में कोई वस्तु न होते भी प्रबल पौरुषार्थ से हम उसे प्राप्त या सिद्ध कर सकते हैं। इसी हेतु योग वशिष्ठ में कहा है—

"जो लोग उद्योग त्याग करके केवल दैव (भाग्य) के भरोसे बैठे रहते हैं, वे आलसी मनुष्य स्वयं ही अपने शत्रु हैं। वे अपने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों को नष्ट कर डालते हैं—

ये समुद्योग मुत्सृज्य स्थिता दैव परायणा:।
ते धर्ममर्थं कामं च नाशयन्त्यात्मविद्विष:।।
(मुमुक्षु ७/१)

पौरुषार्थ की विजय ?

यह तो सुनिश्चित है कि 'भाग्य' में कोई वस्तु होते भी बिना पौरुषार्थ के वह प्राप्त नहीं होगी, अत: पौरुषार्थ तो हर स्थिति में करना ही है। लेकिन जैसा कि वशिष्ठ जी का कथन है—यदि कभी द्वन्द्व में 'पौरुषार्थ' की भेड़ से 'भाग्य' की भेड़ पराजित हो जाय वह वस्तु भी प्राप्त हो सकती है जो भाग्य' में नहीं है, अत: पौरुषार्थ निरन्तर होना ही चाहिए। क्योंकि हम यह नहीं जानते कि अपना 'भाग्य भेड़' और 'पौरुषार्थ भेड़' में कौन शक्तिशाली है। यह तो युद्ध के बाद ही ज्ञात होगा।

तराजू के दो पल्ले

धर्मशास्त्रों में इसी 'भाग्य' और 'पौरुषार्थ' की व्याख्या 'पाप' व 'पुण्य' के रूप में प्राप्त होती है। उसके अनुसार किसी वस्तु की प्राप्ति या सफलता में पूर्वजन्म के कर्म (पाप या पुण्य) कारण होते हैं। यदि पुण्य का पलड़ा भारी होगा तो कार्य में सफलता एवं इच्छित वस्तु की प्राप्ति निश्चित है और पाप का पलड़ा भारी हुआ तो सफलता में व्यवधान होगा। इस तथ्य को ध्यान में रखकर यह सुझाव दिया जाता है कि हम इस जन्म में इतने 'पुण्य' के कर्म कर डालें कि पिछले जन्मों के पाप कर्मों से जो पलड़ा भारी पड़ा है—उससे पुण्य का पलड़ा अधिक भारी हो जाय।

पाप और पुण्य

जैसे पूर्व जन्म के किसी प्रतिबन्धक एवं पापमूलक कर्म के कारण कोई व्यक्ति सन्तान सुख से वंचित है, परन्तु यदि उक्त व्यक्ति सन्तान प्राप्ति के लिए शास्त्रीय विधान के साथ पुत्रेष्टि यज्ञ अथवा इसी प्रकार के अन्य उपाय, चिकित्सा, अनुष्ठान आदि करता है और उसे सन्तान की प्राप्ति होती है। यहाँ

यही कहा जायगा कि पूर्वजन्म के पापमूलक एवं प्रतिबन्धक कर्मों से इस जन्म के पुण्य, पौरुषार्थ एवं कर्म अधिक बलवान होने पर पुण्य का पलड़ा भारी हो गया अथवा भाग्य की तुलना में उद्योग शक्तिशाली सिद्ध हुआ। इसी आधार पर विभिन्न प्रकार के पूजा, पाठ, व्रत, जप, दान, रत्न धारण, अनुष्ठान, यज्ञ, तप, चिकित्सा आदि के प्राविधान बनाये गये हैं ताकि 'भाग्य' की तुलना में पौरुषार्थ शक्तिशाली सिद्ध हो, पुण्य का पलड़ा भारी हो।

इसी प्रकार जब समस्त उद्योग करने पर जप-तप-दान-यज्ञ आदि करने पर, चिकित्सा आदि करने पर भी सफलता न मिले जैसे किसी के रोगी होने पर समस्त चिकित्सा पूजा पाठ करने पर भी उसके प्राण न बच सकें तो यही मानना पड़ता है कि पूर्वजन्म के प्रतिबन्धक एवं पापमूलक कर्म बहुत ही भारी थे, अथवा उद्योग की तुलना में भाग्य ही प्रबल रहा अर्थात् दो भेड़ों के युद्ध में उद्योग का भेड़ पराजित हो गया।

दृढ़मूल और शिथिल मूल कर्म

कर्म अनेक प्रकार के होते हैं। कोई कर्म दृढ़मूल होते हैं अर्थात् उनकी जड़ बहुत गहरी होती है, कोई शिथिलमूल होते हैं अर्थात् उनकी जड़ गहरी नहीं होती है। दृढ़मूल कर्मों को स्थिर कहते हैं और शिथिलमूल कर्मों को उत्पात कहते हैं। जिस मनुष्य की जन्मपत्री, शकुन, प्रश्न तथा दशा के फल का पाक विचार करने से सन्तान अथवा विद्या का भाव निर्णय करने पर ग्रहों की शान्ति आदि पूरे प्रयत्न करने पर भी जब सन्तान नहीं होती है अथवा विद्या नहीं आती है तो समझ लेना चाहिए कि इसके कर्म दृढ़मूल हैं इसलिए नहीं उखड़ सकते। परन्तु जब ग्रहों की गति से सन्तानादि योग सम्भव हो, जिस ग्रह के कारण सन्तान आदि होने में विलम्ब हो रहा है उसका पूजन आदि करने से अच्छे ग्रहों की दशा आने पर सन्तान आदि होना सम्भव है यदि शिथिल-मूल कर्म हों। बुद्धिमान पुरुष अपने पौरुष से दैव को भी नीचा दिखा सकता है। सारांश यह है कि शिथिल मूल कर्मों को कम या प्रभाव हीन किया जा सकता है।

जब से सृष्टि हुई तभी से जीव की भी उत्पत्ति हुई। जीव ने भिन्न-भिन्न जन्मों में जो कुछ भले बुरे कर्म किये हैं उनका नाम संचित कर्म है। इनको बैंक का "डिपोजिट" अर्थात् जमा का हिसाब समझना चाहिये। वर्तमान के किये जा रहे कर्म को 'करेण्ट ऐकौण्ट" अर्थात् चलता हिसाब समझना चाहिये। ये वे कर्म हैं जिनको मनुष्य कर रहा है उनमें से कुछ तो प्राचीन कर्मों के फल हैं और कुछ आभ्यन्तरिक गुप्त शक्ति का प्रभाव है जिसके कारण वह इस जन्म में उच्च

अथवा नीच कर्म करेगा। उत्पन्न होने से पहिले बच्चे के संचित कर्म होते हैं जिसके कारण वह एक नियत कुल में, विशेष पर्यन्तवर्ती लोगों के बीच में, सविशेष शरीरावयवों से सहित, परीक्षणयोग्य चित्तवृत्तियों के साथ जन्म लेता है।

जन्मकुण्डली में ग्रह कर्म के फलों को बतलाते हैं और वे अदालत के 'शो काज" नोटिसों के समान हैं अर्थात् "तुमने ऐसा काम किया है इस बात की वजह बयान करो कि तुम पर फलानी दफा के मुताबिक मुकद्दमा क्यों न कायम किया जावे"। मानलो कि एक आदमी दूसरे से कर्ज लेता है और ठीक समय पर उसे अदा नहीं कर सकता है। दावा होने पर अदालत से डिगरी मिलेगी और डिगरी इजराय होने की इत्तला दी जावेगी। डिगरी में इस बात की मनाही नहीं होती कि वह कहीं से रुपया लाकर उसकी अदायगी न करे, या मुद्दई के पास जाकर किसी और तरह से राजी न करे जैसे कि खुद जाकर या किसी रिश्तेदार या दोस्त को भेज कर कुछ रुपया कम करा मांगे या सारी डिगरी को रद्द करा मांगे। इसी प्रकार ग्रह भी पूर्वजन्म के अच्छे या बुरे फल को बतलाते हैं और यह बात मनुष्यों की इच्छा पर छोड़ देते हैं कि वह उनका उपाय करे अथवा उनका फल भुगते। जन्मसमय के अनुसार ग्रहों की दशा और उनके भोगकाल से पूर्वजन्म के कर्मों का फल विदित हो जाता है। वे आकर मनुष्य से यह नहीं कहते कि तुम उपाय करके इन फलों को रोकने का उद्योग मत करो। सूर्य का जब प्रकाश होता है तो वह धूप सेकने के लिये किसी को नहीं बुलाता है और जो आजाता है तो उसे निषेध भी नहीं करता है। जो आ जाते हैं तो उन्हें गर्मी पहुंचा देता है, जो नहीं आते हैं तो उन्हें बुलाने को भी नहीं जाता है। एवं पूर्वोक्त कर्मों के फलों के दोष को कम करने का उपाय यथायोग्य होना चाहिये जिससे कि उनका अशुभ फल दब सके। औषधिसेवन, जप, दान, होम आदि जो उपाय ग्रहों के निमित्त अशुभ दशा आने पर किये जाते हैं उनका यही मूलतत्त्व है।

पूर्वजन्म के उपार्जित सत् असत् कर्मों का परिपाक इस जन्म में शुभ अशुभ फल मिलने से प्रकट हो जाता है। अब प्रश्न यह है कि जब वह स्वत: विदित हो जाता है तो ज्योतिषशास्त्र की क्या आवश्यकता है। इसका उत्तर यह है जब शुभ अथवा अशुभ फल मिलते हैं उसी समय में यह ज्ञात हो सकता है कि पूर्वजन्म के कर्मों का यह फल है। परन्तु पहिले से यह विदित नहीं हो सकता है। ज्योतिषशास्त्र द्वारा यह पहिले ही से विदित हो सकता है कि मनुष्य का

भाग्य कैसा होगा, अरिष्ट कब कब आवेगा, अरिष्ट का भङ्ग होगा अथवा नहीं, इत्यादि। इन बातों को पहिले बतलाने के लिये ज्योतिषशास्त्र ही समर्थ है। इसी लिये ज्योतिषशास्त्र की आवश्यकता है। जन्मकाल का स्पष्ट समय निकाल कर लग्न आदि राशिचक्र से उच्च आदि ग्रहों की अच्छी अथवा बुरी दशा निकालने से पूर्वजन्म के कर्मों का परिपाक कब होगा यह बात पहिले से जानी जा सकती है। ज्योतिषशास्त्र को अङ्गीकार करने के कारण ये है कि एक तो यह वेदाङ्ग है, दूसरा यह आधुनिक नहीं है, तीसरा यह फल बता कर प्रत्यक्ष प्रतीति कराता है।

लेकिन यह द्वन्द युद्ध तो करके देखना ही पड़ेगा, बिना युद्ध के ही हम अपने उद्योग' रूपी भेड़ की पराजय क्यों स्वीकार करें ?

शत्रुबाधा के योग और सम्बन्धित कारण

जीवन की समस्याओं, बाधाओं में एक बडी समस्या या बाधा होती है—शत्रुबाधा। यह बाधा कभी-कभी घातक भी होती है अन्यथा अशान्ति और धनहानि तो अवश्यम्भावी है।

यदि आपकी कुण्डली में निम्न में से कोई योग विद्यमान हो तो आप भी शत्रुबाधा से ग्रसित हो सकते हैं, अत: समय रहते आपको सतर्क हो जाना चाहिये।

शत्रुबाधा योग

यदि जन्म कुण्डली में निम्न योग हों तो जातक के जीवन में शत्रु अत्यधिक रहते है तथा विरोधियो से पीडित रहता है। यहाँ तक कि स्वजनों, सहोदरों, भागीदारों से भी वाद-विवाद तथा शत्रुता का भय बना रहता है। इस योग की पुष्टि लोमश, गर्ग, यवनाचार्य आदि ने की है। लेकिन जातक सम्पन्न होता है।

(१) वृश्चिक में सूर्य षष्ठ हो।

(२) तुला का षष्ठ चन्द्र हो।

(३) मंगल कर्क अथवा कुंभ का षष्ठ हो।

(४) बुध धनु या कन्या का षष्ठ हो।

(५) गुरु मिथुन या मीन का षष्ठ हो।

(६) शुक्र सिंह या मकर का षष्ठ हो।

(७) शनि मेष या वृष का षष्ठ हो।

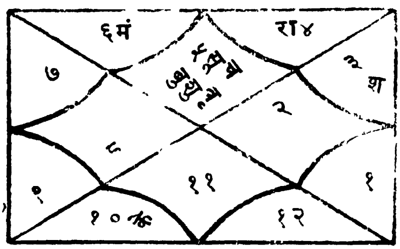

महर्षि यवनाचार्य ने निम्न योगों को भी शत्रुभय सूचक कहा है। निम्न योगों में चौर, राजा तथा शत्रुओं के द्वारा धन हानि के साथ ही चोरों, शत्रुओं से जीवन को भी भय बना रहता है —

(१) मकर का सूर्य एकादश हो।

(२) धनु का क्षीण चन्द्रमा एकादश हो।

(३) कन्या या मेष का मंगल एकादश हो।

(४) पापयुक्त बुध वृश्चिक या कुंभ का एकादश हो।

(५) मिथुन या कर्क का शनि एकादश मे हो।*

(६) मानसागरी के अनुसार वृष राशि का एकादश गुरु भी शत्रुभय कारक है और गोली लगने का मृत्यु सम्भव है। श्रीमती इंदिरा गांधी का यही योग था।

निम्न योगों को महर्षि गर्ग लोमश यवनाचार्य आदि सभी ने एकमत से शत्रुबाधा सूचक कहा है। जातक वाद विवाद एवं शत्रुओं से पीड़ित रहता है। शासन से भी विरोध हो सकता है —

(१) मेष का सूर्य षष्ठ हो।

(२) मीन का चन्द्र षष्ठ हो।

(३) धनु या कर्क का मंगल षष्ठ हो।

(४) वृष या कुंभ का बुध षष्ठ हो।

(५) सिंह या वृश्चिक का गुरु षष्ठ हो।

(६) मकर या मिथुन का शुक्र षष्ठ हो।

(७) कन्या या तुला का शनि षष्ठ हो।

लोमश जी ने निम्न योगों को भी शत्रुबाधा सूचक कहा है।

(१) तुला का सूर्य व्यय में हो।

(२) कन्या का चन्द्र व्यय में हो।

(३) मिथुन या मकर का मंगल व्यय मे हो।

(४) सिंह या वृश्चिक का बुध व्यय में हो।

(५) कुंभ या वृष का गुरु व्यय मे हो।

(६) कर्क या धनु का शुक्र व्यय में हो।

(७) मीन या मेष का शनि व्यय में हो।

यवनाचार्य के मतानुसार निम्नयोग भी शत्रुबाधा सूचक है। जब कि अन्य आचार्य इन योगों को रोगी तथा अल्पायु सूचक मानते हैं—

---

* उपरोक्त कुण्डली में श्री राजीवगांधी का यही योग था।

(१) वृष का सूर्य अष्टम हो।

(२) मेष का चन्द्र अष्टम हो।

(३) मकर या सिंह का मंगल अष्टम हो।

(४) मीन या मिथुन का बुध अष्टम हो।

(५) कन्या या धनु का गुरु अष्टम हो।

(६) कर्क या कुंभ का शुक्र अष्टम हो।

(७) तुला या वृश्चिक का शनि अष्टम हो।

इस विषय में मानसागरीकार का कहना है कि योग कारक सू., मं., श., क्षीणचन्द्र, पापयुक्त बुध हो तो रोगी व अल्पायु होता है और योगकारक पूर्ण चन्द्र, बुध, गुरु शुक्र हों तो भी जीते जी मरे के समान होता है।

शत्रुता का कारण

लोगों से, समाज में आपकी शत्रुता किन कारणों से हो सकती है, और आपके शत्रु कौन व्यक्ति हो सकते हैं, उन कारणों को जानना भी आवश्यक है। प्राचीन आचार्यों ने इस दिशा में भी संकेत दिया है। आपके जन्मलग्न के अनुसार आपसे शत्रुता या विरोध का कारण निम्न हो सकता है (आपके जन्मलग्नानुसार)—जन्मलग्न मेष है तो—आपको अपनी कुसंगति से, आवारा एवं दुश्चरित्र स्त्रियों से भय हो सकता है और इन्हीं कारणों से समाज में भी शत्रुता हो सकती है।

वृष लग्न में—किसी धरोहर, धन सम्पत्ति के लेन-देन के कारण, किसी धार्मिक समस्या के कारण तथा बान्धवों से लेन-देन के कारण।

मिथुन लग्न में—चुगलखोर व्यक्तियों, विलासिनी स्त्रियों, चोरों, साँप, सिंह आदि पशुओं से भय होता है।

कर्कलग्न में—धनुष-बाण (बन्दूक आदि शस्त्रास्त्र) घोड़े, हाथी से भय होता है। दूसरों के वचनों, किसी पुण्यकार्य (धार्मिक विषय) को लेकर भी शत्रुता होती है। इंदिरा जी का यही योग था।

सिंह लग्न में—गृह भूमि धनसम्पत्ति, किसी दूसरे की सहायता करने के कारण तथा मित्रों के कारण शत्रुता होती है। राजीव गांधी का यही योग था।

कन्या लग्न में—शासक से, क्षेत्राधिकार के सम्बन्ध में, बापी तड़ाग नहर, नदी आदि पानी से सम्बन्धित विषयों से, अपने से बड़े व्यक्ति के कारण (प्रतिष्ठा का प्रश्न ?) शत्रुता होती है।

तुला लग्न में—सन्तान सम्बन्धी मामले, वस्त्रादि स्त्री के कारण, अपनी तथा पराई सम्पदा शत्रुता के कारण होते है।

वृश्चिक लग्न में—यह ऐसा लग्न है जिसमे जन्म लेने वाले व्यक्ति के सभी लोग अकारण शत्रु होते है। ऐसे व्यक्ति के मित्र बहुत कम होते हैं। इससे सभी असंतुष्ट रहते है।

धनु लग्न में—अनुचित प्रेम प्रसंगों, स्त्रियों, बन्धुवान्धवों के कारण शत्रुता प्राप्त करता है।

मकर लग्न में—स्त्रियो के कारण असामाजिक तत्वों की संगति के कारण कुसंगति तथा व्यवसायी जनों से शत्रुता का भय रहता है।

कुंभ लग्न में—यह ऐसा लग्न है जिसके शत्रु बहुत कम और मित्र अधिक होते हैं। कदाचित कोई शत्रु बाधा हो भी तो गुरुजनों, ब्राह्मणों, शासकवर्ग, महाजनों, मित्रों की सहायता से शत्रु बाधा से मुक्त हो जाता है।

मीन लग्न में—भाई-बहनों, वान्धवों, पुत्री, स्त्री, तथा वान्धवों द्वारा अर्जित धन-सम्पत्ति के कारण शत्रुता प्राप्त करता है।

सामाजिक शत्रुता

यवनाचार्य के अनुसार निम्न योग होने पर भी समाज में जातक के बहुत शत्रु होते हैं। क्योंकि जातक ऐसे निन्दित काम (सामाजिक मान्यताओं के विपरीत) करता है जिससे उसको अपयश व निन्दा मिले—

(१) वृष का सूर्य षष्ठ हो।
(२) मेष का चन्द्र षष्ठ हो।
(३) सिंह या मकर का मंगल षष्ठ हो।
(४) मिथुन या मीन का बुध षष्ठ हो।
(५) कन्या या धनु का गुरु षष्ठ हो।
(६) कर्क या कुंभ का शुक्र षष्ठ हो।
(७) तुला या वृश्चिक का शनि षष्ठ हो।

शारीरिक विकृति सूचक योग

बहुधा मानव शरीर में विकृतियाँ देखने को मिलती हैं, कुछ में जन्म से ही शारीरिक विकृति होती है और कुछ में किसी दुर्घटना आदि से बाद में विकृति या अंगभंग होता है।

ज्योतिष में ऐसे योगों का वर्णन प्राप्त होता है। तदनुसार विभिन्न प्रकार की शारीरिक विकृतियाँ निम्न योगों में सम्भव है।

व्यंग योग

आचार्य गर्ग ने निम्न योगों को 'व्यंग' सूचक कहा है, अर्थात् शरीर का कोई अंग अविकसित, टेढ़ा अथवा टूटा, दोषपूर्ण हो --

(१) मीन का सूर्य तीसरे हो।

(२) कुंभ का चन्द्र तीसरे हो।

(३) मंगल तीसरे मे मिथुन या वृश्चिक का हो।

(४) बुध मकर या मेष का तीसरे हो।

(५) गुरु कर्क या तुला का तीसरे हो।

(६) वृष या धनु का शुक्र तीसरे हो।

(७) सिंह या कन्या का शनि तीसरे हो।

(८) धनु का सूर्य द्वादश हो।

(९) वृश्चिक का चन्द्र द्वादश हो।

(१०) सिंह या मीन का मंगल व्यय में हो।

(११) व्यय में तुला या मकर का बुध हो।

(१२) व्यय में मेष या कर्क का गुरु हो।

(१३) कन्या या कुंभ का शुक्र द्वादश हो।

(१४) वृष या मिथुन का शनि द्वादश हो।

दुर्घटना से व्यंग

गर्ग जी ने निम्न योगों को भी 'व्यंग' सूचक कहा है, इसकी पुष्टि यवनाचार्य ने भी की है, लेकिन निम्न लोगों में शरीर में व्यंग प्राकृतिक न होकर किसी दुर्घटना अथवा किसी पशु के मारने आदि से विकृति होती है--

(१) द्वितीय में मकर का सूर्य हो।

(२) धनु का चन्द्र द्वितीय हो।
(३) कन्या या मेष का मंगल द्वितीय हो।
(४) वृश्चिक या कुंभ का बुध द्वितीय हो।
(५) वृष या सिंह का गुरु द्वितीय हो।
(६) तुला या मीन का शुक्र द्वितीय हो।
(७) मिथुन या कर्क का शनि द्वितीय हो।

विकृत दर्शन योग

यवनाचार्य के मत से निम्न योग होने पर जातक का व्यक्तित्व भयानक (डरावना चेहरा) होता है—

(१) वृष का सूर्य षष्ठ हो।
(२) मेष का चन्द्र षष्ठ हो।
(३) सिंह या मकर का मंगल षष्ठ हो।
(४) मीन या मिथुन का बुध षष्ठ हो।
(५) कन्या धनु का गुरु षष्ठ हो।
(६) कुंभ या कर्क का शुक्र षष्ठ हो।
(७) तुला या वृश्चिक का शनि षष्ठ हो।

मुख में व्यंग

आचार्य गर्ग के मतानुसार जन्म कुण्डली में निम्न में से कोई योग हो तो जातक के मुख (चेहरे) में कोई विकृति (व्यंग) होती है—

(१) कन्या का सूर्य नवम हो।
(२) सिंह का नवम चन्द्र हो।
(३) मंगल वृष या धनु का नवम हो।
(४) बुध कर्क या तुला का नवम हो।
(५) गुरु मकर या मेष का नवम हो।
(६) शुक्र मिथुन या मीन का नवम हो।
(७) शनि कुंभ या मीन का नवम हो।

पापग्रह योग कारक हो तो अधिक प्रभावी होगा।

बाहु व्यंग योग

महर्षि गर्ग तथा हरजी के मतानुसार निम्न योग होने पर जातक के बाहु में कोई विकार (चोट, दुर्घटना आदि से अथवा स्वाभाविक रूप से जन्मना) होता है—

(१) मिथुन या कर्क का शनि अष्टम हो।
(२) मेष या कन्या का मंगल अष्टम हो।

(३) पापयुक्त बुध वृश्चिक या कुंभ का अष्टम हो ।
(४) क्षीणचन्द्रमा धनु का अष्टम हो ।
(५) मकर का सूर्य अष्टम हो ।

पैर में व्यंग (चरणभंग) योग

आचार्य गर्ग तथा यवनाचार्य ने निम्न योगों में से किसी योग के विद्यमान होने पर चरणदोष अर्थात् लंगड़ा, स्वभावत: अथवा दुर्घटना आदि से पैर टूटने का भय व्यक्त किया है ।

(१) वृश्चिक में सूर्य नवम हो ।
(२) कर्क या कुंभ का मंगल नवें हो ।
(३) मेष या वृष का शनि नवम हो ।
(४) तुला का क्षीण चन्द्रमा नवम हो ।

खंज (लंगड़ा) योग

आचार्य गर्ग के अनुसार जन्म कुण्डली में निम्न योग होने से जातक जन्मना अथवा बाद मे दुर्घटनावश खंज [लंगड़ा] होता है—

(१) कन्या का सूर्य लग्न मे हो ।
(२) सिंह का चन्द्र लग्न में हो ।
(३) वृष या धनु का मंगल लग्न में हो ।
(४) कर्क या तुला का बुध लग्न में हो ।
(५) मकर या मेष का गुरु लग्न में हो ।
(६) मिथुन या वृश्चिक का शुक्र लग्न में हो ।
(७) कुंभ या मीन का शनि लग्न में हो ।

उग्रदर्शन

यवनाचार्य के मत से जन्म कुण्डली में निम्नयोग होने से जातक देखने में उग्र (डरावना) होता है ।

(१) वृष का सूर्य सप्तम हो ।
(२) मेष का चन्द्र सप्तम हो ।
(३) मकर या सिंह का मंगल सप्तम हो ।
(४) मिथुन या मीन का बुध सप्तम हो ।
(५) धनु या कन्या का गुरु सप्तम हो ।
(६) कुंभ या कर्क का शुक्र सप्तम हो ।
(७) तुला या वृश्चिक का शनि सप्तम हो ।

कुव्यक्तित्व के परिचायक कुछ कुयोग

जीवन में व्यक्ति का परिचय उसके वास्तविक गुणों के साथ होना आवश्यक है। वाह्य व्यवहार से किसी भी व्यक्ति के सुगुण या दुर्गुणों का पता नहीं चल पाता है। किसी भी प्रकार के लेन-देन, मैत्री व्यवहार व्यापार आदि प्रत्येक क्षेत्र में सज्जन या दुर्जन का ज्ञान होना आवश्यक है। ज्योतिष शास्त्र से व्यक्तित्व का भी परिचय होता है। यहाँ पर हम कुछ योगों का उल्लेख कर रहे हैं।

कृतघ्नयोग

दुर्जनों में ऐसे लोगों की भी गणना होती है जो कृतघ्न हों अर्थात जो व्यक्ति दूसरे के उपकार को भूल जाते हैं, अर्थात अविश्वसनीय व्यक्ति। ज्योतिषशास्त्र के प्राचीन आचार्यों ने ऐसे व्यक्तियों के परिचयात्मक कुछ योगों का उल्लेख किया है।

महर्षि गर्ग के अनुसार निम्नांकित बारह प्रकार के योग 'कृतघ्न' सूचक हैं, जिनके जन्मपत्र में इनमें से कोई भी योग पड़ा हो। वह कृतघ्न' होता है—

(१) धनु राशि का सूर्य षष्ठ में हो।

(२) वृश्चिक का चन्द्र षष्ठ में हो।

(३) सिंह वा मीन का मंगल षष्ठ में हो।

(४) तुला या मकर का बुध षष्ठ में हो।

(५) मेष या कर्क का गुरु षष्ठ में हो।

(६) कन्या अथवा कुंभ का शुक्र षष्ठ में हो।

(७) वृष या मिथुन का शनि षष्ठ में हो।

योगों की सत्यता हेतु इन पर अनुसंधान आवश्यक है।

धन वंचक योग

ज्योतिषशास्त्र के एक ग्रंथकार यवनाचार्य जी ने निम्न प्रकार के चौबीस योग 'धनवंचक' योग कहे हैं, अर्थात निम्न २४ योगों में से किसी भी एक योग के होने पर धनवंचक और कृपण योग बनेगा। ऐसा व्यक्ति स्वभावतः कृपण

होगा और आर्थिक मामलों में विश्वस्त नहीं होगा। ऐसा व्यक्ति आर्थिक मामलों में धोखा दे सकता है, विश्वासघात कर सकता है और धन का अपहरण (गबन) कर सकता है। अतः ऐसे व्यक्तियों पर आर्थिक मामलों में विश्वास नहीं किया जा सकता। यवनाचार्य ने ऐसे जातक को कृपण होना और आर्थिक वंचना करने वाला होना तो कहा है लेकिन इसके साथ कुछ प्रतिबन्ध भी हैं—अर्थात यदि इस ग्रह के ऊपर बृहस्पति आदि किसी शुभ ग्रह की बलवती दृष्टि हो तो यह बुद्धिमान होकर अच्छे कार्य भी करता है।

महर्षि लोमश ने भी इस योग में उत्पन्न जातक को 'चोर'' कहा है, अर्थात आर्थिक अपराधी होगा, तात्पर्य यह है कि इससे भी 'धनवंचक'' योग की पुष्टि होती है। उनके मत से 'जुआरी' भी होगा।

महर्षि गर्ग ने भी ऐसे योग में ''कृपण'' होना कहा है, काफी धन संग्रह करता है। इनके मत से योग कारक ग्रह पाप हो तो स्वभाव से भी क्रूर होता है, शुभ ग्रह हो तो स्वभाव से सौम्य होता है।

अब प्रत्यक्षतः यह योग कहाँ तक सिद्ध होते हैं? यह अनेकों जन्मपत्रों के अध्ययन, मनन और अनुसंधान से ही सिद्ध होगा लेकिन यवनाचार्य, गर्ग और लोमश—इन तीनों के मतों का सारांश यह होता है कि ऐसा जातक—

(अ) स्वभावतः कृपण व धनसंचयी होगा।

(आ) आर्थिक मामलों में विश्वासपात्र नहीं होगा, धोखा दे सकता है।

(इ) योगकर्ता ग्रह शुभ हो अथवा योगकर्ता ग्रह पर शुभ दृष्टि हो तो इस योग का कुप्रभाव कम होगा, यह शुभ काम भी करेगा और हर किसी को धोखा नहीं देगा। धनवंचना भी करेगा तो उसका सदुपयोग भी करेगा। योग-कारी ग्रह पाप हो, उस पर शुभ दृष्टि न हो तो निश्चय ही व्यक्ति धनवंचक एवं अविश्वसनीय होगा।

अभी पिछले दिनों मेरे पास एक जन्मपत्र अवलोकनार्थ आयी थी जो अब मुझे न तो पूर्ण रूप से याद है और न मेरे संग्रह में है, लेकिन उसमें एक योग विद्यमान था—सिंह राशि का शनि अष्टम है—जो निम्नांकित योग संख्या (७) में से एक योग बनाता है। यह जातक बैंक में सेवारत है, पिछले दिनों इनके 'काउन्टर' से अकस्मात एक बड़ी धनराशि लुप्त हो गयी थी, जातक का कहना है कि कैसे और कहाँ लुप्त हुई, मैं कुछ भी नहीं जानता। लेकिन बैंक अधिकारियों ने इन्हें ही अपराधी माना है। सत्य क्या है, यह कहा नहीं जा सकता—

(१) कर्क का सूर्य व्यय में या मीन का सूर्य अष्टम हो।

(२) मिथुन का चन्द्र व्यय में या कुंभ का चन्द्र अष्टम हो।

(३) मंगल मीन या तुला का व्यय में हो, अथवा वृश्चिक या मिथुन का अष्टम में हो।

(४) बुध वृष या सिंह का व्यय में हो, अथवा मकर या मेष का अष्टम हो।

(५) बृहस्पति वृश्चिक या कुंभ का व्यय में हो, अथवा कर्क या तुला का अष्टम हो।

(७) शुक्र मेष या कन्या का व्यय में हो, अथवा धनु या वृष का अष्टम हो।

(७) शनि धनु या मकर का व्यय में हो, अथवा सिंह या कन्या का अष्टम में हो।

इस प्रकार से कुल २४ योग बनते हैं।

यवनाचार्य ने 'धन वंचक' के जो योग दिये हैं, उसकी पुष्टि में एक और कुण्डली प्राप्त हुई है :—

प्रस्तुत कुण्डली में कर्क का अष्टम बृहस्पति 'धन वंचक' योग सूचक है। जातक शासन में उच्चपद पर कार्यरत रहा है और राजकीय कार्य में विदेशी

२	४	६	९	१०	११	१२
च	वृ	के	ल	श	सू	शु
				म		रा.
				बु		

क्रय-विक्रय करने में दलाली के रूप में गुप्त रूप से करोड़ों रुपये लेने एवं विदेशी मुद्रा अधिनियम के अन्तर्गत इस समय जातक पर शासन ने वाद प्रस्थापित किया है और निलंबित है।

चौर्य योग

यवनाचार्य तथा गर्ग के मत से निम्न किसी योग में जन्म होने से जातक में चोरी की प्रवृत्ति होती है—

(१) वृश्चिक का सूर्य द्वितीय हो।

(२) क्षीणचन्द्रमा तुला का द्वितीय हो।

(३) पापयुक्त बुध कन्या या धनु का द्वितीय हो।

(४) मंगल कर्क या कुंभ का द्वितीय हो ।
(५) शनि मेष या वृष का द्वितीय हो ।

तस्कर योग

यवनाचार्य के अनुसार जन्म कुण्डली में निम्नांकित योग होने पर जातक में चोरी की प्रवृत्ति होती है, भले ही वह सम्पन्न तथा शिक्षित एवं विद्वान ही क्यों न हो । आयु योग भी कम होता है—

(१) द्वितीय स्थान में—कुंभ का सूर्य हो ।
(२) मकर का क्षीणचन्द्र द्वितीय हो ।
(३) सू. मं. श० रा० के० के साथ धनु या मीन का बुध द्वितीय हो ।
(४) तुला या वृष का मंगल द्वितीय हो ।
(५) कर्क या सिंह का शनि द्वितीय हो ।

धूर्तराज

महर्षि यवनाचार्य तथा गर्ग जी के मतानुसार जन्म कुण्डली में निम्न योग विद्यमान होने से जातक धूर्तराज तथा जुआरी होता है—

(१) क्षीणचन्द्रमा मेष का पंचम हो ।
(२) वृष का सूर्य पंचम हो ।
(३) मकर अथवा सिंह का मंगल पंचम हो ।
(४) पापग्रह के साथ (अकेला या शुभयुक्त होने पर नहीं) बुध मीन का मिथुन का पंचम हो ।
(५) शनि तुला या वृश्चिक का पंचम हो ।

निम्न योगों को भी धूर्तता सूचक कहा है—

(१) वृश्चिक का सूर्य व्यय में हो
(२) क्षीणचन्द्रमा तुला का व्यय में हो ।
(३) पापयुक्त बुध धनु या कन्या का व्यय में हो ।
(४) मंगल कर्क या कुंभ का व्यय में हो ।
(५) शनि मेष या वृष का व्यय में हो ।

कृपण और व्यापारी

जन्म कुण्डली में निम्न योग होने से जातक कृपण होता है, धन संचय की अच्छी प्रवृत्ति होती है । प्राय: व्यापार से आजीविका लाभप्रद होती है—

१—कर्क का सूर्य लग्न में हो ।

२—मिथुन का चन्द्रमा लग्न में हो।
३—मीन या तुला का मंगल लग्न में हो।
४—बुध सिंह या वृष का लग्न में हो।
५—कुंभ या वृश्चिक का गुरु लग्न में हो।
६—मेष या कन्या का शुक्र लग्न में हो।
७—शनि धनु या मकर का लग्न में हो।
इस प्रकार कुल १२ योग बनते हैं।

स्वजनभेदी योग

आचार्य गर्ग तथा यवनाचार्य के मत से जन्म कुण्डली में निम्न योग होने पर जातक समाज में, विशेषकर आत्मीयजनों एवं परिवार में फूट डालने वाला, विवादी (झगड़ालू) होता है। लोमश जी के मत से यह स्व पौरुषार्थ से उन्नतिकरता है। यदि लग्न में—

(१) मिथुन का सूर्य,
(२) वृष का चन्द्र,
(३) कुंभ या कन्या का मंगल,
(४) कर्क या मेष का बुध,
(५) तुला या मकर का गुरु,
(६) सिंह या मीन का शुक्र,
(७) अथवा वृश्चिक या धनु का शनि लग्न में हो।

इसमें कुल १२ योग बनते हैं।

आचार्य गर्ग व यवनाचार्य के मत से निम्न योग होने पर भी जातक अपने परिवारिक जनों को कष्ट देने वाला होता है—

[अ] (१) मीन का सूर्य लग्न में हो।
(२) कुंभ का चन्द्र लग्न में हो।
(३) वृश्चिक या मिथुन का मंगल लग्न में हो।
(४) मकर या मेष का बुध लग्न में हो।
(५) कर्क या तुला का गुरु लग्न में हो।
(६) धनु या वृष का शुक्र लग्न में हो।
(७) सिंह या कन्या का शनि लग्न हो।
इस प्रकार भी कुल १२ योग बनते हैं।

[आ] निम्नयोग विद्यमान होने पर जातक अत्यन्त क्रोधी होता है और माता-पिता, सहोदरों को अत्यन्त कष्ट देता है। पैतृक सम्पत्ति का अपव्यय करता है, संरक्षकों की मृत्यु का कारण भी हो सकता है। आखें लाल रहती हैं। सूर्य, मंगल, शनि का योग अधिक कुफल सूचक होगा—

(१) सूर्य वृष का तीसरे हो।
(२) चन्द्र मेष का तीसरे हो।
(३) मंगल मकर या सिंह का तीसरे हो।
(४) बुध मीन या मिथुन का तृतीय हो।
(५) गुरु कन्या या धनु का तृतीय हो।
(६) शुक्र कुंभ या कर्क का तृतीय हो।
(७) शनि तुला या वृश्चिक का तृतीय हो।

इसमें भी कुल १२ योग बनते हैं।

[इ] महर्षि लोमश के अनुसार षष्ठेश षष्ठ में होने पर भी स्वजातीय लोगों, बान्धवों से शत्रुता होती है। इस प्रकार भी १२ योग बनते हैं।

पापी नास्तिक तथा हिंसक

महर्षि लोमश, यवनाचार्य और गर्ग ने निम्न योग होने पर पापी, नास्तिक तथा हिंसक होना कहा है—

(१) कन्या का सूर्य नवम हो।
(२) सिंह का नवम चन्द्र हो।
(३) मंगल वृष या धनु का नवम हो।
(४) बुध कर्क या तुला का नवम हो।
(५) गुरु मकर या मेष का नवम हो।
(६) शुक्र मिथुन या वृश्चिक का नवम हो।
(७) शनि कुंभ या मीन का नवम हो।

पापग्रह योग कारक हो तो अधिक प्रभावी होगा।

विषसेवी योग

नशेड़ियों की पहचान : ज्योतिष की दृष्टि में

आधुनिक युवा समाज मे प्राणघातक नशीले एवं मादक पदार्थों का व्यसन बढ़ता जा रहा है ।

बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू, गांजा, अफीम, हेरोयन, शराब, स्मैक आदि क्या-क्या नशीले पदार्थ समाज में प्रचलित हैं जो एक प्रकार से विष ही हैं। बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू, गांजा आदि के नशे से प्रभावित लोगों की संख्या तो गणना से बाहर है प्राय: पचास प्रतिशत व्यक्ति कुछ न कुछ नशा करते हैं। लेकिन अब स्मैक आदि ऐसी अनेकों विषैली वस्तुयें समाज में फैल रही हैं जो वास्तव में प्राणघातक एव विष हैं। यद्यपि आधुनिक भाषा में उन्हें 'औषधि' [मादक औषधि] ही सम्बोधित किया जाता है, लेकिन इनका सेवन भी 'विष' का सेवन ही है ।

प्राचीन आचार्यों ने इस प्रकार के योगों का भी वर्णन किया है कि कौन का व्यक्ति विष' का सेवनकर्ता हो सकता है ? वैसे तो 'विष भक्षण' और 'विष सेवन' अलग-अलग घटनायें हैं। मानसिक असन्तुलन में आत्मघात की इच्छा से भी विषपान किया जाता है छल से दूसरों को विष दिया जाता है तथा मादकता में सुख की अनुभूति की इच्छा से भी इन विषों का सेवन किया जाता है। यवनाचार्य ने निम्न योगों को विषसेवी' योग कहा है, जिसका तात्पर्य जानबूझकर विष का सेवन [व्यसन] ही है—

[१] कन्या का सूर्य सप्तम हो ।
[२] वृष का मंगल सप्तम हो ।
[३] धनु का मंगल सप्तम हो ।
[४] पापयुक्त बुध कर्क का सप्तम हो ।
[५] पापयुक्त बुध तुला का सप्तम हो ।
[६] क्षीणचन्द्रमा सिंह का सप्तम हो ।
[७] कुंभ या मीन का शनि सप्तम हो ।

इस प्रकार कुल आठ योग बनते हैं ।

यवनाचार्य ने निम्न योगों को भी विषभय और विष से मृत्यु का भय सूचक कहा है—

[१] तुला का सूर्य अष्टम हो।

[२] कन्या का चन्द्र अष्टम हो।

[३] मिथुन या मकर का मंगल अष्टम हो।

[४] सिंह या वृश्चिक का बुध अष्टम हो।

[५] कुंभ या वृष का गुरु अष्टम हो।

[६] कर्क या धनु का शुक्र अष्टम हो।

[७] मीन या मेष का शनि अष्टम हो।

इस प्रकार बारह योग बनते हैं।

आचाय गर्ग ने भी इस योग की पुष्टि की है लेकिन उनके मत से योग संख्या ३ और ४ ही प्रभावी हैं।

यवनाचार्य ने निम्न योगों को भी अभक्ष्यभक्षण से (विषाक्त भोजन आदि से) मृत्यु सूचक कहा है—

[१] धनु का सूर्य व्यय में हो।

[२] वृश्चिक चन्द्र व्ययस्थ हो।

[३] सिंह या मीन का मंगल व्यय में हो।

[४] तुला या मकर का बुध द्वादश हो।

[५] मेष या कर्क का गुरु द्वादश हो।

[६] कन्या या कुंभ का शुक्र द्वादश हो।

[७] वृष या मिथुन का शनि द्वादश हो।

इसमें १२ योग बनते हैं।

इस प्रकार प्राचीन आचार्यों ने कुल ३२ योग कहे हैं।

कुछ उदाहरण

स्मैक, हेरोइन इत्यादि प्राणघातक नशीले व्यसनों से ग्रस्त व्यक्तियों का सामान्य रूप से पता नहीं चलता है क्योंकि इस व्यसन से पीड़ित होते हुए भी अपनी पारिवारिक एवं सामाजिक यश प्रतिष्ठा की दृष्टि से कोई भी इस दुख को व्यक्त नहीं करता है। इसके बावजूद मेरे संग्रह में कुछ ऐसी जन्मपत्रिकायें हैं। यदि इन पर विचार किया जाय तो इनके व्यसन ग्रस्त होने के कारणों का ज्ञान होने के साथ ही इसका समुचित निदान भी हो सकता है।

सैंतीस वर्षीय श्रीमान 'क' सन् १९७७ अर्थात् पिछले १३ वर्षों से नशे की गोलियां सेवन कर रहे हैं, साथ ही भांग और नशे के इंजेक्शन भी लेते हैं। दिसम्बर ८० म विवाह भी हो चुका है और दो बच्चे भी हैं। पिता व्यवसायी हैं। पिता का कहना है कि अनेक पूजा पाठ झाड़-फूंक कर चुका हूँ, कोई लाभ नहीं है। दुकान में बिठाते हैं तो कुछ की जगह कुछ बेच देता है, पैसा भी नहीं देता है। इनकी कुण्डली इस प्रकार है—

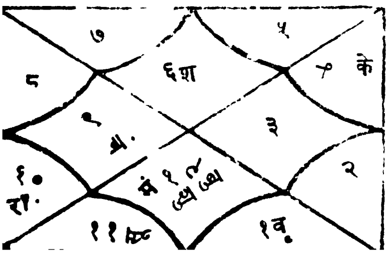

कन्या लग्न में शनि, चतुर्थ चन्द्र, पंचम राहु, षष्ठ सूर्य, सप्तम मंगल, शुक्र और बुध, अष्टम गुरु, एकादश केतु।

२४ वर्षीय श्रीमान् 'ख' पिछले ६/७ वर्षों से नशे की गोलियां ले रहे हैं। पिता जीवित नहीं हैं। अस्सी वर्षीय दादा के ऊपर भार है, उनके अकेले पौत्र हैं। कुछ पेंशन मिलती है, उसी से किसी प्रकार समय काट रहे है। युवा होते भी कुछ करते नहीं—अपितु उलटे पारिवारिक जनों को दुख देते हैं—

'कर्क लग्न में गुरु, द्वितीय में मंगल, चौथे शुक्र सूर्य केतु, पंचम बुध, अष्टम शनि, दशम राहु।'

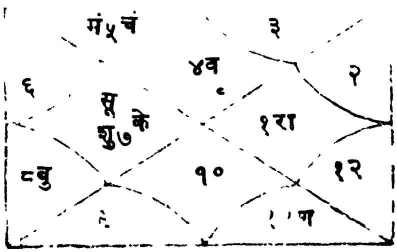

श्रीमान् 'ग' २८ वर्षीय युवक हैं। अनेक वर्षों से कुव्यसनों में लिप्त हैं। इसी कारण शिक्षा भी नहीं हो सकी है, हाई स्कूल भी नहीं कर सके। यद्यपि घर में सभी सुख-सुविधायें हैं। अनेक बार घर से भाग चुके हैं, घर की धन सम्पत्ति नष्ट करते रहते हैं—

३	४	५	६	९	१०	११
मं	सू रा	बु	शु.	ल	श चं के.	वृ

धनु लग्न, द्वितीय में शनि चन्द्र केतु, तीसरे गुरु, सप्तम मंगल, अष्टम सूर्य और राहु, नवम बुध दशम में नीच का शुक्र।

इन तीनों कुण्डलियों को देखने से यह स्पष्ट होता है कि उपरोक्त योग में षष्ठभाव, लग्न, शुक्र और मंगल का व्यापक प्रभाव है। षष्ठभाव रोग का लग्न मस्तिष्क का तथा शुक्र और मगल मादकता एवं कामुकता से सम्बन्धित हैं। श्रीमान् 'क' और 'ख' दोनों में एक योग समान रूप से है अर्थात् षष्ठेश लग्न में होना। श्री मान क' का षष्ठेश शनि लग्न में है और सप्तम में मंगल के साथ शुक्र है। श्रीमान् ख' का भी षष्ठेश गुरु कर्क का लग्न में है। श्रीमान् 'ग' का षष्ठेश लग्न में नहीं है लेकिन षष्ठेश शुक्र नीच का दशम है। इस प्रकार इन तीनों में षष्ठेश प्रमुख कारण कहा जा सकता है। प्राचीन आचार्यों ने उपरोक्त योगों में विषसेवी या मादक द्रव्य सेवी होना तो नहीं कहा। लेकिन 'माता पिता का शत्रु, माता पिता एवं स्वजनों को कष्ट देने वाला' कहा है। जो एक प्रकार से सत्य है।

प्राचीन आचार्यों ने उपरोक्त ३२ योगों को इसमें अधिक प्रभावी माना है, लेकिन मेरे संग्रह में इन योगों से प्रभावित कोई कुण्डली नहीं है।

वाल्यारिष्ट एवं अल्पायु

जातक के जन्म होते ही सर्वप्रथम वालारिष्ट का विचार आवश्यक होता है जातक के दीर्घायुयोग हैं या नहीं वाल्यावस्था में कोई अरिष्ट योग तो नहीं है सर्व प्रथम इसी बात का विचार मुख्य है उनके भाग्य आदि की बातें उस समय कोई महत्व नहीं रखते। यदि बालक दीर्घायु है तभी उसके भाग्यवान है या नहीं यह बात जानने की आवश्यकता होती है और यदि आयु योग कमजोर है, वाल्यारिष्ट है तो उसके भाग्यवान होने से भी क्या लाभ ?

वाल्यारिष्ट का विचार इसलिए भी आवश्यक है कि बाल्यकाल में रोगों का प्रकोप अधिक होता है, यद्यपि अब देश में मृत्युदर काफी घट चुकी है और बाल्यकाल में होने वाले संक्रामक रोगों पर काफी नियंत्रण हो चुका है, एतदर्थ अब वाल्यारिष्ट की संभावनायें भी कम हो चुकी हैं, जब कि पहले देश में वाल्यारिष्ट का भय विशेष था। ज्योतिषशास्त्रों में वाल्यारिष्ट के सैकड़ों योग उपलब्ध हैं और उनके आधार पर ज्योतिर्विद वाल्यारिष्टों की गणना भी करते हैं। लेकिन कभी-कभी ऐसा भी देखने में आता है कि जातक की कुण्डली में वाल्यारिष्ट का कोई योग न होते एवं आयु योग अच्छा होते हुए भी शिशु का मरण हो जाता है मेरे जीवन में ऐसी कुण्डलियां देखने में आयी हैं, जिनमें आयुयोग अच्छा होने के बावजूद शिशु का मरण हो गया।

अब प्रश्न उठता है कि क्या शास्त्र में कोई त्रुटि है ? गणित में कहीं अशुद्धि है ? या ज्योतिर्विद में ज्ञान की कमी ? शास्त्र में तो त्रुटि होने का प्रश्न ही नहीं उठता लेकिन गणित के सही होने तथा ज्योतिषी के विद्वान होते भी ऐसी घटनाएं हो जाती हैं, इससे ज्योतिषी तथा ज्योतिष शास्त्र को भी आघात लगता है।

तीन प्रकार के वाल्यारिष्ट

इस सम्बन्ध में ज्योतिर्विदों को ऋषियों के आदेशों एवं वचनों के प्रति ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है :—

(अ) सामान्य घर में यदि 'उच्चराजयोग' लेकर कोई शिशु जन्म ले तो वह वाल्यारिष्ट का सूचक भी होता है—"खलु जातकस्यरिष्टमिति"

(आ) शिशु की जन्म कुण्डली से १२ वर्ष की अवस्था तक उसके आयु का सही ज्ञान नहीं हो सकता। क्योंकि बाल्यारिष्ट तीन प्रकार का होता है। शिशु के आयु तथा स्वास्थ्य के लिए ग्रह-योग अच्छे होते भी यदि माता-पिता की कुण्डली में सन्तान हानि सूचक योग विद्यमान हों तो शिशु को माता या पिता के योगों से भी बाल्यारिष्ट होता है, अत: १२ वर्ष की आयु तक सेवा, औषधि, जप, दान आदि के द्वारा शिशु की रक्षा करनी चाहिए और यदि माता या पिता के ग्रहयोग सन्तान हेतु कष्टकारी हों तो उनकी भी शान्ति करनी चाहिए—

"आद्वादशाब्द जन्तूनामायुर्ज्ञातुं न शक्यते।
जपहोम चिकित्साद्यै र्बालरक्षांतु कारयेत् ।।
पित्रोर्दोषैर्मृता: केचित्केचित्मातृ ग्रहैरपि।
अपरेरिष्टयोगाश्च त्रिविधा बालमृत्यव: ।।"

यदि माता-पिता में शुक्र या रजो दोष हो तो उसके कारण भी शिशु को बाल्यारिष्ट होता है।

लोमश संहिता में बाल्यारिष्ट योग

कुछ जातकों का स्वास्थ्य बाल्यकाल में अच्छा नहीं रहता रोगी शरीर रहता है लेकिन आयु बढ़ने के साथ स्वास्थ्य में सुधार होता है। वैसे तो ज्योतिष में बाल्यारिष्ट सूचक बहुधा योगों का वर्णन है इन योगों से भिन्न लोमश संहिता में कुछ विशेष योगों को वर्णन प्राप्त होता है—

१—सूर्य मीन का नवम या वृष का एकादश हो।
२—चन्द्र कुंभ का नवम या मेष का एकादश हो।
३—मंगल वृश्चिक या मिथुन का नवें अथवा मकर या सिंह का एकादश हो।
४—बुध मकर या मेष का नवम अथवा मीन या मिथुन का एकादश हो।
५—गुरु कर्क या तुला का नवम अथवा कन्या धनु का एकादश हो।
६—शुक्र धनु या वृष का नवम अथवा कुंभ या कर्क का एकादश हो।
७—शनि सिंह या कन्या का नवम अथवा तुला या वृश्चिक का एकादश हो।
८—बुध तुला या मकर का सप्तम हो।
९—बुध वृश्चिकया कुंभ का अष्टम हो।

१०—बृहस्पति मेष या कर्क का सप्तम हो।
११—बृहस्पति वृष या सिंह का अष्टम हो।
१२—शुक्र कन्या या कुंभ का सप्तम हो।
१३—शुक्र तुला या मीन का अष्टम हो।
१४—शनि वृष या मिथुन का सप्तम हो।
१५—शनि मिथुन या कर्क का अष्टम हो।
१६—सूर्य धनु का सप्तम हो।
१७—सूर्य मकर का अष्टम हो।
१८—चन्द्र वृश्चिक का सप्तम हो।
१९—चन्द्र धनु का अष्टम हो।
२०—मंगल मीन या सिंह का सप्तम हो।
२१—मंगल मेष या कन्या का अष्टम हो।
इस प्रकार कुल मिलाकर ४८ योग बनते हैं।

आयु हानिकर योग

महर्षि गर्ग, यवन, लोमश आदि सभी आचार्यों ने निम्न योगों को आयु हानिकर, दीर्घायु में बाधक कहा है। इस सम्बन्ध में आयु कारक अन्य योगों को भी देखकर तभी कोई निष्कर्ष निकालना चाहिए। फिर भी जातक को स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान देना चाहिए और आकस्मिक दुर्घटनाओं के प्रति सचेष्ट रहना चाहिए। यदि योग कारक ग्रह वक्री हो तो विशेष प्रभावकारी, दुर्घटना कारक होगा—

(१) वृश्चिक का सूर्य एकादश हो।
(२) तुला का क्षीण चन्द्रमा एकादश हो।
(३) पापयुक्त बुध कन्या या धनु का एकादश हो।
(४) मंगल कर्क या कुंभ का लाभ में हो।
(५) शनि मेष या वृष का एकादश हो।

यवनाचार्य ने निम्न योगों को भी आयु हानिकर कहा है, महर्षि गर्ग तथा मानसागरीकार ने भी इसकी पुष्टि की है और लोमश ने भी इन योगों को रोगभय व कष्टकारक कहा है—

(१) मिथुन का सूर्य अष्टम हो।
(२) वृष का चन्द्र अष्टम हो।
(३) कुंभ या कन्या का मंगल अष्टम हो।
(४) मेष या कर्क का बुध अष्टम हो।
(५) तुला या मकर का गुरु अष्टम हो।
(६) सिंह या मीन का शुक्र अष्टम में हो।
(७) शनि वृश्चिक या धनु का अष्टम हो।

मानसागरीकार ज्योतिर्विद हरजी ने निम्न योगों को भी अल्पायु सूचक कहा है, जब कि अन्य आचार्यों का मत ऐसा नहीं मिलता।

(१) कुंभ का सूर्य पंचम हो।
(२) मकर का चन्द्र पंचम हो।

(३) तुला या वृष का मंगल पंचम हो।
(४) धनु या मीन का बुध पंचम हो।
(५) मिथुन या कन्या का गुरु पंचम हो।
(६) मेष या वृश्चिक का शुक्र पंचम हो।
(७) कर्क या सिंह का शनि पंचम हो।

आकस्मिक दुर्घटना एवं रोगी योग

आचार्य गर्ग, लोमश यवनाचार्य तथा मानसागरीकार आदि ने एक मत मत से निम्न योगों को कष्टकारक एवं रोग तथा आकस्मिक दुर्घटनादि सूचक अशुभ माना है। जल भय, साँप आदि जन्तुओं, पशुओं से भी भय हो सकता है। ऐसा जातक का स्वास्थ्य यों भी स्वभावत: मध्यम रहता है।

(१) मिथुन का सूर्य षष्ठ में हो (राजदण्ड अथवा राज कार्य के कारण शारीरिक कष्ट भी सम्भव है।
(२) वृष का चन्द्र षष्ठ हो (जल भय विशेष)।
(३) कन्या या कुंभ का मंगल षष्ठ हो।
(४) कर्क या मेष का बुध षष्ठ हो (इसमें सर्प आदि जन्तुओं के काटने का विशेष भय रहता है)।
(५) तुला या मकर का गुरु षष्ठ हो।
(६) मीन या सिंह का शुक्र षष्ठ हो (इसमें किसी घटना से आँखें नष्ट हो सकती हैं)।
(७) वृश्चिक या धनु का शनि षष्ठ में हो।
(८) धनु का सूर्य व्यय में हो।
(९) वृश्चिक का चन्द्र व्यय में हो।
(१०) सिंह या मीन का मंगल व्यय में हो।
(११) तुला या मकर का बुध व्यय में हो।
(१२) मेष या कर्क का गुरु व्यय में हो।
(१३) कन्या या कुंभ का शुक्र व्यय में हो।
(१४) वृष या मिथुन का शनि व्यय में हो।

पापग्रह वक्री होकर स्थित हो तो योग अधिक प्रबल होगा।

मानसागरीकार निम्न योगों को भी रोगी तथा अल्पायु सूचक मानते हैं–

(१) वृष का सूर्य अष्टम हो।

(२) मेष का चन्द्र अष्टम हो।

(३) मकर या सिंह का मंगल अष्टम हो।

(४) मीन या मिथुन का बुध अष्टम हो।

(५) कन्या या धनु का गुरु अष्टम हो।

(६) कर्क या कुंभ का शुक्र अष्टम हो।

(७) तुला या वृश्चिक का शनि अष्टम हो।

इस विषय में मानसागरीकार का कहना है कि योग कारक सू., मं., श., क्षीणचन्द्र, पापयुक्त बुध हो तो रोगी व अल्पायु होता है और योग कारक पूर्णचन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र हों तो भी जीते जी मरे के समान होता है।

संहिताग्रंथों में भ्रातृ सुख का विचार

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में जो प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठते हैं अथवा जिन समस्याओं से जातक लाभान्वित या कुप्रभावित होता है, ऐसे विचारणीय विषयों में ज्योतिर्विदों से यह प्रश्न प्रायः पूछा जाता है कि जातक को सहोदरों (भाई व बहनों) का सुख है या नहीं ? और सहोदरों से प्रेम सम्बन्ध रहेंगे या नहीं ? इस प्रश्न के समाधान हेतु ज्योतिष शास्त्र में कुण्डली का तृतीय भाव मुख्य आधार है, इसी भाव की स्थिति के आधार पर उक्त प्रश्न को उत्तर दिया जाता है।

ज्योतिष के सामान्य सिद्धान्तों के अनुसार—

(१) तृतीय भाव का स्वामी ६, ८, १२वें भाव में हो।

(२) ६, ८, या १२वें भाव का स्वामी तीसरे में हो।

(३) तृतीय भाव का स्वामी पापपीड़ित नीच, अस्त या शत्रुक्षेत्री हो।

(४) तीसरे भाव में पापग्रह स्थित हो—तो जातक को सहोदरों का सुख यथेच्छ नहीं मिलता। या तो भाई बहन होते नहीं अथवा उनसे सम्बन्ध अच्छे नहीं रहते। इस दृष्टिकोण से देखा जाय तो—

(अ) तृतीय भाव का स्वामी अष्टम हो, अष्टम का स्वामी तृतीय हो, तृतीयेश पापपीड़ित हो तीसरे भाव में पापग्रह हों तो ऐसी स्थिति में भाई-बहन नहीं होते, कम होते हैं, अथवा अल्पायु होते हैं अर्थात् उत्पन्न होकर भी न रहें। तृतीयभाव पर शनि आदि की पूर्ण पापदृष्टि भी अशुभ फल सूचक होगी।

(आ) इसके विपरीत अन्य योगों में सहोदरों के होते भी उनसे सम्बन्ध अच्छे नहीं रहते।

इसके साथ ही यह भी प्रश्न उठता है कि यदि दोनों प्रकार के मिश्रित योग हों, तो छोटे भाइयों और बड़े भाइयों या बहनों से—किससे कैसा संबंध रहेगा। इस सम्बन्ध में प्राचीन ग्रंथों में विस्तार से वर्णन नहीं मिलता है। एक-दो साधारण मत प्राप्त होते हैं उनसे पूर्णतः विचार नहीं होता। छोटे भाई बहनों और बड़े भाई बहनों में भिन्नता का विचार कैसे हो ?

तृतीय भाव में स्थित पापग्रहों के आधार पर—

> अग्रेजाता रविर्हन्ति पश्चाद्भौम शनैश्चर : ।
> राहुणामुभयो हन्ता केतु सर्वं विचारयेत् ।।

तीसरे सूर्य हो तो बड़े भाई बहनों का, मंगल या शनि हो तो छोटे भाई बहनों का, राहु या केतु हो तो छोटे अथवा बड़े सभी भाई बहनों को सुखहानि योग बनता है। बहुधा यह योग किसी अंग तक घटित भी होता है। एक जातक के तीसरे में धनुराशि का शनि है, तृतीयेश गुरु उच्च का दशम है। इस जातक के छोटे व बड़े दोनों भाई है (तृतीयेश की अच्छी स्थिति के कारण) लेकिन तीसरे शनि होने से छोटे भाई से सम्बन्ध ठीक नहीं हैं।

ज्ञातव्य है कि क्षीण चन्द्रमा और पापयुक्त बुध भी पापग्रहों की श्रेणी में आते हैं। इनके तीसरे होने पर क्या फल होगा ?

ज्योतिष के मान्य सिद्धान्तों के अनुसार शुक्लपक्ष के चन्द्रमा से बड़ी बहनों और कृष्णपक्ष के चन्द्रमा से छोटी बहनों की सुखहानि होगी। बुधपापयुक्त तृतीय हो तो—सूर्ययुक्त होने से बड़ी बहनों का, शनियुक्त होने से छोटी बहनों का, तथा राहु या केतु युक्त होने से छोटी-बड़ी दोनों प्रकार की बहनों के सुख में बाधा होगी।

कुछ आचार्यों के मत से लग्न, षष्ठ, नवम, एकादश में स्थित पापग्रह भी भ्रातृ सुख में बाधक होते हैं (लग्न, नवम या षष्ठ में शनि होने पर भ्रातृ-भाव पर पूर्ण पादृष्टि होगी, लेकिन अन्य पापग्रहों का प्रभाव नगण्य होगा।)

ज्येष्ठभ्रातृ हानि योग

उपरोक्तमतों से भिन्न ग्रंथकार महर्षि लोमश ने ज्येष्ठ भ्रातृ सुखहानि का विशेष योग 'लोमश संहिता' में दिया है, उससे प्रतीत होता है कि उनके मतानुसार बड़े भाई के सुख का विचार द्वितीय भाव से होना चाहिए। उनके मतानुसार निम्न १२ योगों में से किसी योग के होने से बड़े भाई का सुख प्राप्त नहीं होता—

१–सूर्य कुंभ का अष्टम हो।

२–चन्द्रमा मकर का अष्टम हो।

३–मंगल तुला या वृष का अष्टम हो।

४–बुध धनु या मीन का अष्टम हो।

५—बृहस्पति मिथुन या कन्या का अष्टम हो।

६—शुक्र मेष या वृश्चिक का अष्टम हो।

७—शनि कर्क या सिंह का अष्टम हो।

ज्योतिष के सामान्य सिद्धान्तों के अनुसार सहोदरों के सुख का विचार तृतीयभाव से होता है, लेकिन उपरोक्त योगों में तृतीयभाव से कोई सम्बन्ध नहीं हैं उपरोक्त योग अष्टम व द्वितीयभाव से सम्बन्धित हैं। फिर भी महर्षि लोमश जी ने इन योगों को किसी आधार पर ही प्रतिपादित किया होगा। इनकी सत्यता परीक्षण से ही सिद्ध हो सकती है। इस प्रकार कुल बारह योग बन रहे हैं।

ज्येष्ठ भ्रातृ सुखहीनता

निम्नयोगों को भी महर्षि लोमश ने ज्येष्ठ भ्रातृ के सुख से वंचित कारक कहा है—

(१) वृष का सूर्य षष्ठ हो।

(२) मेष का चन्द्र षष्ठ हो।

(३) मकर या सिंह का मंगल षष्ठ हो

(४) मीन या मिथुन का बुध षष्ठ हो।

(५) धनु या कन्या का गुरु षष्ठ हो।

(६) तुला या वृश्चिक का शनि षष्ठ हो।

(७) कर्क या कुंभ का शुक्र षष्ठ हो।

(८) वृश्चिक का सूर्य व्यय में हो।

(९) तुला का चन्द्र व्यय में हो।

(१०) कर्क या कुंभ का मंगल व्यय में हो।

(११) कन्या या धनु का बुध व्यय में हो।

(१२) मिथुन या मीन का गुरु व्यय में हो।

(१३) मकर या सिंह का शुक्र व्यय में हो।

(१४) मेष या वृष का शनि व्यय में हो

भ्रातृ सुख प्रतिबन्धक योग

महर्षि गर्ग तथा यवनाचार्य ने निम्न योगों को भ्रातृ सुख प्रतिबन्धक माना है जो ज्योतिष के सामान्य सिद्धान्तों के ही अनुरूप है। ऐसे योग में

भ्राताओं का सुख कम प्राप्त होता है अथवा नहीं प्राप्त होता है, अथवा पर-स्पर शत्रुत्वभाव रहता है।

ऐसे जातक को अधीनस्थ कर्मचारियों, मित्रों, साझीदारों का सुख-सहयोग भी कम मिलता है—

(१) वृश्चिक या कुंभ का बुध अष्टम हो।
(२) वृष या सिंह का गुरु अष्टम हो।
(३) तुला या मीन का शुक्र अष्टम हो।
(४) शनि मिथुन या कर्क का अष्टम हो।
(५) सूर्य मकर का अष्टम हो।
(६) चन्द्र धनु का अष्टम हो।
(७) मंगल मेष या कन्या का अष्टम हो।

पापग्रह होने पर (योग सं० ४, ५, ७) योग अधिक प्रभावी होता है।

ज्योतिष की दृष्टि में

राजदण्ड एवं दस्युभय

प्राय: नित्य प्रति ऐसे समाचार पढ़ने में आते रहते हैं कि अमुक व्यक्ति के घर में चोर-डाकुओं ने आक्रमण कर परिवार के सदस्यों को मार डाला, बैंक में डाका पड़ा दो मरे चार घायल, राह चलते चोरों ने आक्रमण कर धन छीन लिया यात्री की मृत्यु, इत्यादि-इत्यादि।

ऐसे कौन से योग होते हैं जिनमें ऐसी दुर्घटनायें होती हैं अथवा जन्मपत्र में कौन सी ऐसी ग्रहस्थिति होती है जिसमें जातक की मृत्यु चोरों डाकुओं के हाथों होती है। यह एक सहज जिज्ञासा है। इस प्रकार जिनकी मृत्यु होती है, उनकी जन्मपत्रियों का संकलन किया जाय तो इस विषय पर व्यापक अनुसंधान भी हो सकता है।

ज्योतिष के प्राचीन ग्रंथों में इस प्रकार के योगों का वर्णन प्राय: उपलब्ध होता है, यहाँ पर हम कुछ ऐसे योगों का उल्लेख करेंगे।

शत्रु/राजा/चोरों द्वारा धनहानि योग व मृत्युयोग

(१) मकर का सूर्य लाभ में हो।

(२) क्षीण चन्द्रमा धनु का लाभ में हो।

(३) कन्या या मेष का मंगल एकादश में हो।

(४) पापयुक्त बुध कुंभ या वृश्चिक का एकादश हो।

(५) शनि मिथुन या कर्क का एकादश हो।

इस प्रकार कुल ८ योग महर्षि लोमश ने कहे हैं। मानसागरीकार श्री हरजी, महर्षि गर्ग तथा यवनाचार्य ने भी इसकी पुष्टि की है। केवल धन हानि होगी या मृत्युभय होगा। यह योग की गम्भीरता पर निर्भर करेगा।

चोरों-डकैतों के हाथ मृत्युभय

महर्षि गर्ग ने जन्म पत्र में निम्न योग होने पर चोर-डकैतों के हाथों मृत्यु का भय बतलाया है।

(१) सूर्य मीन का षष्ठ हो।

(२) क्षीण चन्द्रमा कुंभ का षष्ठ में हो।
(३) षष्ठ में वृश्चिक या मिथुन का मंगल हो।
(४) बुध षष्ठ में मेष या मकर का हो।
(५) बृहस्पति कर्क या तुला का षष्ठ हो।
(६) शुक्र धनु या वृष का षष्ठ हो।
(७) शनि सिंह या कन्या का षष्ठ में हो।

इस योग का समर्थन यवनाचार्य ने भी किया है।

इस प्रकार कुल बारह योग बनते हैं। इनमें पापग्रहों से (क्षीण चन्द्र, पाप युक्त बुध सू० मं० श०) बनने वाले अधिक प्रबल हैं। शुभग्रह योग कारक हो तो कम प्रभावी माना गया है। जहाँ पापग्रह योग कारक है—वहाँ यह भी सम्भव है कि राह चलते घर से बाहर, या विदेश में घटना घटे।

कुछ महिनों पूर्व लखनऊ में एक डकैती पड़ी थी। अमीनाबाद के थोक दवा व्यापारी दो भाई जब रुपयों से भरी अटैची लेकर रात में दुकान बन्द करके घर जा रहे थे तब रास्ते में डकैतों ने दोनों भाइयों को गोली मारकर लाखों रुपये लूट लिये थे। उसी समय इसी रास्ते पर जा रहे एक पुलिस निरीक्षक ने जब डकैतों को ललकारा तो उन्हें भी घायल कर दिया था। इस लूट में अभी तक कोई पकड़ा नहीं गया है।

एक भाई के तीन गोलियाँ लगी हैं जो अभी भी जीवन व मृत्यु के बीच संघर्ष कर रहे हैं। दूसरे भाई के एक गोली लगी थी, उसके प्राण बच गये हैं।

यह कुण्डली मुझे देखने को मिली। एक भाई का मकर लग्न है और मिथुन का मंगल षष्ठ है। दूसरे भाई का वृश्चिक लग्न है मेष का बुध व मंगल षष्ठ में हैं। यहाँ दोनों योग सत्य घटित होते हैं।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि उपरोक्त योगों में यवनाचार्य, लोमश व गर्ग तीनों ने षष्ठ एकादश भाव का परस्पर सम्बन्ध ही मुख्य रूप से कारण माना है। क्योंकि षष्ठ स्थान चोर का और एकादश स्थान धन का है। अतः यह सम्बन्ध इस प्रकार का फल सूचक हो सकता है। इस तरह के योग मात्र इतने ही नहीं हैं। ज्योतिष के विभिन्न ग्रंथों में आचार्यों ने कुछ और योग भी बतलाये हैं। पाठकों को अन्यान्य योग भी देखने चाहिए।*

---

* इनके अलावा 'शत्रुबाधा योग' भी देखें।

राजदण्ड एवं चोरों से धनहानि

यवनाचार्य ने जन्म कुण्डली में निम्न योग होने पर चोरों के द्वारा धन हानि अथवा राजदण्ड के रूप में धन के क्षय का योग कहा है। आचार्य गर्ग ने भी इस योग की पुष्टि की है किन्तु लोमश का मत इससे भिन्न है।

(१) मकर का मंगल द्वितीय हो।

(२) मिथुन का मंगल द्वितीय हो।

मुझे यवनाचार्य का यह मत सटीक प्रतीत होता है। मेरे संग्रह में एक कुण्डली है, जिसमें मकर का मंगल द्वितीय है। जातक शासन में उच्च पद पर नियुक्त था, इन दिनों पदच्युत है और शासन द्वारा विदेशी मुद्रा अधिनियम एवं पद के दुरुपयोग (विदेशों से दलाली लेने) का महाभियोग प्रस्थापित किया जा चुका है और राजदण्ड द्वारा धनहानि की पूर्ण सम्भावना है।

क्षय रोग के योग

क्षय रोग कारक योगों को जानने से पहले इस रोग का कारण तथा मुख्य सिद्धान्तों का परिचय देना सामयिक होगा।

[अ] क्षय रोग मुख्यत: वक्षस्थल का रोग है, यद्यपि गले में, हड्डी में भी क्षय रोग होता है लेकिन फेफड़ों का क्षय मुख्य है। क्योंकि जन्म कुण्डली में चतुर्थ तथा पंचम भाव वक्षस्थल का स्थान है अत: क्षयरोग के विचार में चतुर्थ व पंचम भावों का अनुशीलन आवश्यक है। इन भावों में पाप-ग्रह, क्षीणग्रह, परस्पर विरोधी गुण धर्मी ग्रह या, दुर्बल ग्रह स्थित होना या इन भावों के स्वामियों का दु:स्थान [६, ८, १२] होना, मारकेश से सम्बन्धित होना शुभ नहीं है।

[आ] यदि लग्न में द्वितीय द्रेष्काण का उदय हो तो वक्षस्थल अधिक प्रभावित होता है।

[इ] क्षय रोग का कारण यद्यपि जीवाणु है, लेकिन क्षयरोग में धातु क्षय, रक्त सम्बन्धी विकार वायु [श्वास प्रक्रिया] से भी सम्बन्ध है अत:—शुक्र आदि धातुओं का कारक ग्रह शुक्र, रक्त का कारक चन्द्रमा, गले छाती फेफड़ों का कारक चन्द्रमा, कफ धातु के कारक शुक्र व चन्द्रमा, शनि-राहुवात एवं श्वास कारक, होने से चं० मं० शुक्र शनि, और राहु की स्थिति को भी ध्यान में रखना आवश्यक है।

[ई] चतुर्थ या पंचम भाव में परस्पर विरोधी तत्व के ग्रह साथ हों जैसे अग्नि तत्व सूर्य जलतत्व चद्रमा, या परस्पर शत्रु ग्रह एक साथ हों या चतुर्थ पंचम में चं० मं० शु० श० राहु में से कोई ग्रह पापक्षेत्री हो तो वह भी रोग कारक हो सकते हैं।

इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर क्षय रोग की सम्भावना, उसका समय व अवधि तथा प्रभाव का विचार करना चाहिए। विभिन्न ग्रंथों में क्षयरोग के जो योग मिलते हैं, उनमें से कुछ निम्न हैं :—

जातक तत्वे

१. शुक्र और लग्नेश का योग ६/८/१२ व भाव में हो तो क्षय रोग होवे।

२. कारकांश लग्न से चतुर्थ भाव में मंगल और १२ वें भाव में राहु गया हो तो क्षयरोगी होवे।

३. मंगल और शनि लग्न को देखते हों तो श्वास क्षयादि रोग होवे।

४. चन्द्र और रवि परस्पर अन्योन्य राशि और नवांश में गये हों अर्थात चन्द्र की (कर्क) राशि में कर्क राशी के नवांश का रवि हो और रवि की (सिंह) राशि मे सिंह के नवांश का चन्द्रमा हो तो क्षय रोगी होता है।

५. सिंह राशि में अथवा कर्क राशि में रवि चन्द्रमा का योग हो तो क्षय रोगी होता है।

६. लग्न से युत चन्द्रमा को भौम देखता हो तो संग्रहणी जनित क्षय रोग होता है।

जातकालंकारे

१. कर्क राशि में बुध गया हो क्षयी रोगी होवे।

२. शुक्र से युत लग्नेश त्रिक स्थान में गया हो तो मनुष्य को क्षय नामक रोग होता है।

जातक पारिजाते

१. लग्न में सूर्य को शनि देखता हो तो क्षय होता है।

२-. गुलिक के साथ शनि ६ वें हो और सूर्य भौमराहु से दृष्ट हो शुभ ग्रह से युत दृष्ट न हो तो क्षय रोग होता है।

ज्योतिष रत्नाकरे

१. यदि सूर्य और चन्द्र परस्पर एक दूसरे के घर में (अर्थात सूर्य कर्क में चन्द्र सिंह में) हों तो क्षय रोग होता है।

२. यदि सूर्य और चन्द्रमा परस्पर एक दूसरे के नवांश में हों तो क्षय रोग होता है।

३. सूर्य और चन्द्रमा दोनों साथ होकर कर्क या सिंह में हों तो जातक कृश शरीर वाला और क्षय रोगी होता है।

४. यदि चन्द्रमा कर्क का और सूर्य सिंह का हो तो जातक रक्त पित्त रोग से पीड़ित होता है।

५. यदि गुरू और चन्द्र जल राशि का होकर ८ वें हों और उस पर पाप ग्रह की दृष्टि भी पड़ती हो तो जातक क्षय रोग से पीड़ित होता है। वृ. के

अष्टम में गत होने से वैद्य और डाक्टर को रोग निदान म अत्यन्त कठिनाई होती है।

६. यदि चन्द्र, शनि-मंगल के मध्य में हो, सूर्य मकर राशि गत हो तो कास श्वास, क्षय, प्लीहा, गुल्म, फोड़ों से पीड़ित होता है। किसी का मत है कि इसमें चं० का साथ रहना आवश्यक है।

७. यदि चन्द्र चतुर्थ स्थान में, शनि-मंगल से घिरा हो तथा सूर्य मकर राशिगत हो तो जातक क्षय रोग से पीड़ित होता है।

८. षष्ठस्थ चन्द्रमा शनि-मंगल से घिरा हो तथा सूर्य मकर राशि गत हो तो फेफड़े की सूजन (ब्रोंकाइटीज) से मनुष्य पीड़ित होता है।

९. चन्द्रमा आठवें स्थान में शनि मंगल से घिरा हो तथा सूर्य मकर राशि गत हो तो जातक को गण्ड माला रोग अथवा एक विशेष प्रकार का क्षय रोग होता है। इसमें क्षय रोग के कीड़े गले के किसी ग्रन्थि में आ बैठते हैं और व्रण का रूप धारण कर लेता है। अंग्रेजी में इसके 'स्क्रोफुला' कहते हैं।

१०. शनि मंगल से घिरा हुआ सूर्य चन्द्र का योग मकर राशि में हो तो जातक दमा, से पीड़ित होता है।

११. चन्द्रमा दो पाप ग्रहों से घिरा हुआ हो और शनि सप्तम स्थान में हो तो जातक, दमा, क्षय, गुल्म या प्लीहा से पीड़ित होता है।

१२. राहु अथवा केतु अष्टम स्थान में, गुत्तिक केन्द्र में और लग्नेश आठवें घर में हो तो क्षय रोग हो।

१३. यदि मंगल शनि ६वें हो उन पर सूर्य एवं राहु की दृष्टि हो तो क्षय या दमा रोग होता है।

१४. यदि शनि और गुरू ७ या ८ में हों तथा उसके साथ सूर्य भी हो तो क्षय रोग होता है।

१५. बुध और मंगल ६वें हों उन पर शुक्र तथा चन्द्र की दृष्टि हो तो क्षय रोग होता है। इस योग में शुक्र की पूर्ण दृष्टि असम्भव है केवल पाद दृष्टि ही सम्भव है।

१६. यदि शनि छठे स्थान में गुलिक के साथ हो; सूर्य, मंगल और राहु की दृष्टि हो, परन्तु शुभ ग्रह से दृष्ट अथवा युक्त न हो तो जातक कास-श्वास क्षय अथवा कफादि रोग से पीड़ित होता है।

१७. यदि मंगल और राहु दोनों चतुर्थ या पंचम स्थान में तो क्षय रोग होता है।

१८. मंगल और बुध ६वें हों सूर्य चन्द्र से दृष्ट हों तथा मंगल और बुध शुभ नवांश में न हो तो क्षय रोग होता है।

१६ केतु षष्ठेश के साथ हो अथवा केतु षष्ठेश को देखता हो अथवा केतु सप्तमेश के साथ हो या सप्तमेश को देखता हो तो क्षय रोग होता है।

२०. पाप ग्रह के साथ क्षीण चन्द्रमा जल राशि का होकर ६ठे या आठवें स्थान में हो तो क्षय रोग होता है।

२१. यदि लग्न गत सूर्य पर मंगल की दृष्टि पड़ी हो तो जातक, दमा, क्षय, प्लीहा, गुल्म अथवा गुदा स्थान के किसी भी रोग से ग्रसित होता है।

२२. छठे स्थान का चन्द्रमा लग्नेश से युक्त हो तो मनुष्य क्षय वा शोथ से दुख पाता है।

२३· यदि लग्नेश ६, ८, १२ भाव में शुक्र के साथ हो तो जातक क्षयी होता है।

शम्भु होरा प्रकाशे

१ – चन्द्रमा पाप ग्रह के मध्य हो, सूर्य मकर में हो व शनि सप्तम में हो तो क्षय रोग व श्वास रोग, होता है।

२ – चन्द्रमा मंगल के साथ लग्नेश से दृष्ट हो तो मनुष्य उल्टी बुद्धि वाला एवं क्षय रोगी होता है।

३—सूर्य कर्क में चन्द्र सिंह में हो व परस्पर नवांश में पड़े हों तो शोथ तथा क्षय रोग होता है।

४—सूर्य ११वें हो, शनि पञ्चम में हो, क्रूर ग्रह ८ में हो तो जातक को क्षय रोग होता है।

जैमिनी सूत्रे

१—कारकांश से चतुर्थ पंचम में मंगल राहु दोनों हों तो क्षय रोग होता है।

२—कारकांश से चतुर्थ पंचम में मंगल-राहु हों उस पर चन्द्रमा की दृष्टि हो तो निश्चय क्षय रोग वाला मनुष्य होता है।

वृहज्जातके

१—चन्द्र परिवेश का समय हो, चन्द्रमा, शनि से युक्त होकर मंगल से देखा जाता हो तो जातक क्षय रोग वाला होता है।

जातकालंकारे

१—लग्नेश शुक्र से युक्त होकर त्रिक (८, ६, १२) में हो तो मनुष्य को क्षय रोग होता है।

ज्योतिष शास्त्र के द्वारा रोगों का निदान कैसे करें ?

ज्योतिष शास्त्र के द्वारा रोग निदान करने की पद्धति यह है कि लग्न आदि द्वादश भाव क्रमश: जातक के—सिर, मुख, हाथ, हृदय [छाती], कोख, कमर, बस्ति [निचला पेट] गुप्तांग जाँघ, घुटना, पिण्डलियाँ और पैरों की परिचायक हैं। यथा लग्न शिर का परिचायक, द्वितीय भाव मुख का, चतुर्थभाव हृदय का इत्यादि।

इसमें भी सूक्ष्म विचार यह है कि लग्न का कौन द्रेष्काण है ? प्रत्येक द्रेष्काण के अनुसार शरीर के भिन्न-भिन्न अंग प्रदर्शित होते हैं। यदि लग्न में प्रथम द्रेष्काण अर्थात् १० अंश कम का लग्न हो तो गले से ऊपर का उर्ध्वांग। दूसरे द्रेष्काण, १० से ऊपर २० अंश तक लग्न होने पर मध्यांग गले से नाभि तक। तीसरे द्रेष्काण अर्थात् लग्न के २० से ऊपर ३० अंश तक होने पर अधो अंग अर्थात् पेडू से पैरों तक अधिक प्रभावित होते हैं। जो इस प्रकार स्पष्ट है—

भाव	अंग	प्रथमदे.	द्वितीयदे.	तृतीयदे.
		[शरीर के अंग जो प्रदर्शित होते हैं]		
१	शिर	शिर	कंठ	पेडू
२	मुख	दा० आँख	दा० कंधा	दा० चूतड़
३	बाहु	दा० कान	दा० हाथ	दा० अंडकोष
४	हृदय	दा० नाक	दा० कोख	दा० ऊरू
५	कोख	दा गाल०	दा० छाती	दा० जाँघ
६	कमर	दा० ठोडी	दा० पेट	दा० पैर
७	बस्ति	मुख	नाभि	लिंग या योनि
८	गुप्तांग	बा० ठोडी	बा० पेट	बा० पैर

९	जांघ	बा० गाल	बा० छाती	बा० जांघ
१०	घुटना	बा० नाक	बा० कोख	बा० ऊरू
११	पिंडलियां	बा० कान	बा० हाथ	बा० अण्डकोष
१२	पैर	बा० आंख	बा० कंधा	बा० चूतड़

इस प्रकार जो भाव कमजोर या पीड़ित होगा, जातक के उसी अंग से सम्बन्धित रोग उसे होंगे। इस प्रकार लग्न के द्वादश भावों तथा द्रेष्काण से यह स्पष्ट हो जाता है कि जातक के कौन से अंग का रोगग्रस्त होना सम्भव है—

ग्रहों की स्थिति से रोग निर्धारण

शरीर के अंग का निर्धारण हो जाने पर यह निश्चय कहना होता है कि कौन सा रोग हो सकता है। जो भाव पाप पीड़ित या दूषित हो, उसमें जो अशुभ ग्रह हो उसके आधार पर रोग का निर्णय किया जाता है—

ग्रहों की स्थिति इस बात की द्योतक है कि मनुष्य में उस ग्रह सम्बन्धी तत्व उचित रूप में विद्यमान हैं या नहीं ?

[अ] सूर्य, हड्डी, चन्द्रमा, रक्त, मंगल मज्जा, बुध त्वचा, बृहस्पति वसा शुक्र वीर्य और शनि नसों [नाड़ियों] पर प्रभाव करता है।

[आ] शरीर में अंगानुसार सूर्य शिर में [शिर पीड़ा आदि] चन्द्रमा गले में, या छाती में [टान्सिल, गण्डमाला, फेफड़ों का विकार आदि], मंगल पेट या पीठ में, बुध हाथ पैरों में, बृहस्पति कमर तथा टाँग, शुक्र गुप्त अगों में और शनि घुटना तथा जाँघों में प्रभाव करता है।

इस प्रकार ग्रहों से स्वास्थ्य सम्बन्धी दौर्बल्य की कल्पना की जाती है, जैसे सूर्य पीड़ित हो तो हड्डियाँ कमजोर होंगी, हड्डियों से सम्बन्धी रोग तथा शिर–पीड़ा आदि से भी क्लेश रहेगा, इसी प्रकार अन्य ग्रहों से भी जानना चाहिए।

[इ] सूर्य तथा मंगल पित्त धातु, शुक्र तथा चन्द्रमा कफ धातु, बुध तथा बृहस्पति सम धातु और शनि वायु [वात] धातु का परिचायक है। अत: सूर्य या मंगल अशुभ होने से पैत्तिक विकार, चन्द्रमा शुक्र ठीक न होने से कफज, तथा बुध, गुरु से सन्निपातज और शनि से वात—वायु विकार रहेगा।

[ई] पंचतत्वों में—सूर्य आत्मा का, चन्द्रमा मन का, मंगल अग्नि का, बुध पृथ्वी का, बृहस्पति आकाश का, शुक्र जल का तथा शनि वायुतत्व का अंग

है, अतः जो ग्रह अशुभ होगा, उस तत्व सम्बन्धी दौर्बल्य, अनुत्साह या रोग होगा। उदाहरण के हेतु सूर्य के कारण आत्म दौर्बल्य अनुत्साह आदि, चन्द्रमा से मानसिक संतुलन में विकार हो सकेगा। अन्य ग्रहों के तत्वों का प्रभाव भी उस ग्रह सम्बन्धी तत्व पर पड़ेगा। पिण्डोंयं पाञ्च भौतिक' हमारे देह की रचना इन्हीं पाँच तत्वों से तो हुई है—

बुध [पृथ्वीतत्व]—त्वचा हड्डी, माँस, रोम, नाड़ियों पर।

मंगल [अग्नितत्व]—पाचन क्रिया, निद्रा शारीरिक कान्ति पर।

शुक्र [जलतत्व]—लार, मूत्र, वीर्य, मज्जा तथा रक्त पर।

शनि [वायुतत्व]—संकुचन, फैलाव आदि पर, इसमें विकृति होने पर लकवा आदि जैसे शारीरिक संकुचन, फैलाव आदि की असमर्थता, हृदय रोग आदि।

गुरु [आकाशतत्व]—शब्द, चिंता, शून्यता [वाणी, कर्णेन्द्रिय आदि] पर होता है। उपर्युक्त आधार को लेकर स्वास्थ्य सम्बन्धी विकृति का निर्णय किया जा सकता है।

[उ] सूर्य से हृदय दौर्बल्य, गुदारोग आदि।

चन्द्र से शीतला, कफ विकार, नेत्र पीड़ा, जल भय, मेदा तथा मस्तिष्क सम्बन्धी व्याधियाँ।

मंगल से अग्निभय, चोट, घाव, शस्त्र भय, विषभय, वेदना, दाह, रुधिर विकार, मांस पेशियों में विकार।

बुध से—कहीं दब जाना, ज्वर, त्वचारोग, नसों में विकार आदि।

बृहस्पति से—ऊँचे स्थान से गिरना, ज्वर, सन्निपातादि, रुधिर एवं हृदय सम्बन्धी लीवर संबंधी रोग।

शुक्र से—जलभय, क्षय, प्रमेह, गुप्तेन्द्रिय सम्बन्धी।

शनि से—नसें, हड्डी, संबंधी, वात, वायु, विकार, दीर्घज्वर, तिल्ली, लकवा आदि।

इन रोगों के अलावा प्रत्येक ग्रह संबंधी जो रोग पहले कहे हैं, उनका होना भी संभव है। इतने रोगों में कौन रोग होगा? यह अन्य बातों से भी विचार कर निश्चय करना चाहिए, क्यों कि एक ही ग्रह के अनेक रोग होते हैं।

सम्बन्धित राशि द्वारा रोग निर्धारण

इसके अलावा जो भाव पाप पीड़ित हो, उस भाव में जो राशि हो या अशुभ ग्रह जिस राशि में हो—वह राशि क्या रोग सूचित करती है—इसको

भी ध्यान में रखना आवश्यक है। प्रत्येक राशि से सम्बन्धित रोग इस प्रकार हैं—

मेष— शिरोरोग, मेदोरोग, नींद आँख मुख सम्बन्धी रोग।

वृष—श्वास, गले [डिप्थीरियादि] सम्बन्धी रोग।

मिथुन—खांसी दमा आदि फेफड़े के रोग, मज्जा रोग, रक्त रोग।

कर्क— वायु गैस, मेद वृद्धि, पाचन सम्बन्धी उदर रोग।

सिंह—रक्तविकार, हृदय विकार।

कन्या—आमाशय, अपच आदि उदर रोग।

तुला—मूत्र स्थान, गुप्तांग, मूत्र सम्बन्धी मधुमेहादि रोग।

वृश्चिक—गुदा, गुप्तांग, मूत्र सम्बन्धी रोग।

धनु—मासिक धर्म, हड्डी, मज्जा, क्षय, रक्तदोष आदि।

मकर—उन्माद, वात, त्वचा रोग, शीतविकार, रक्तचाप।

कुंभ—रक्तचाप, मानसिक विकार, ऐंठन, फोड़ा कुष्ठ।

मीन—खाज, गांठ, आंव, क्षय रक्त-विकार आदि।

कुछ निर्देशक सिद्धान्त

[अ] तुला—वायु व पित्त प्रधान।

[आ] मेष, सिंह, धनु—पित्त प्रधान रोग।

[इ] वृष, मिथुन, मकर, कुंभ—वायु प्रधान रोग।

[ई] कर्क, वृश्चिक, मीन—कफ प्रधान रोग।

[उ] कन्या - वायु, कफ तथा जलप्रधान [जलोदर आदि] रोगों को सूचित करती हैं।

उपरोक्त भाव, ग्रह और राशि सम्बन्धी तीनों तत्वों से विवेकबुद्धि के द्वारा रोगों का निदान सुलभ है।

कुछ उदाहरण : हृदय रोग के दो रोगी

अब मैं यहाँ पर कुछ उदाहरण देकर स्पष्ट करूँगा। नीचे दो हृदय रोगियों के जन्मपत्र हैं और दोनों रोगी सम्बन्ध में पिता तथा पुत्र हैं और दोनों को एक वर्ष के अन्तर से हृदय रोग का गम्भीर आघात हुआ है।

(१) जन्मपत्र संख्या—पुत्र की है। जिन्हें १९७९ में शनि की अन्तर्दशा में हृदय रोग का गम्भीर आघात हुआ है।

शनि चतुर्थ भाव में है जो 'हृदय' का सूचक है तथा शनि व्ययेश होने से एवं लग्न पर दृष्टि होने से कष्टदायक है ही। हाँ, लग्नेश भी होने से पूर्णमारक नहीं है अत: जीवन बच गया। उपरोक्त लेख में यह बतलाया जा चुका है कि शनि का हृदय रोग से सम्बन्ध है।

---

(१)

जन्म २७ नवम्बर १९४२

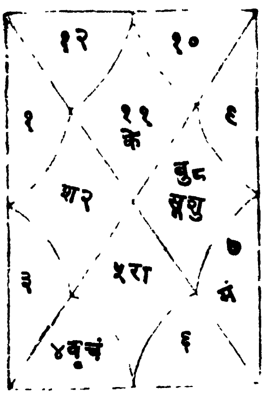

बुध महादशा मध्ये शन्यन्तर
२१/३/७९ से ३०/११/१९८१

(२)

जन्म २८ जनवरी १९०९

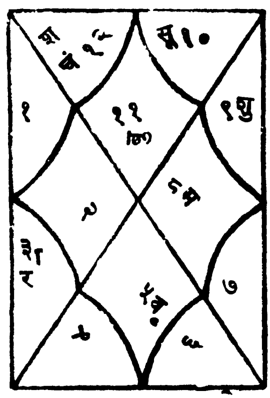

२१ मार्च ८० तक राहु में बुध
अंतर्दशा। राहु चलित में चतुर्थ है।

---

(२) जन्मपत्र सं — २ पिता की है, जिन्हें राहु की दशा मध्ये बुध अंतर्दशा में पिछले दिनों हृदयरोग का आघात हुआ है। राहु पंचम है चलित में चतुर्थ होता है। बुध क्षेत्री होने से राहु बुध का भी फल देता है। बुध आर्थिक दृष्टि से कारक होते भी अष्टमेश लग्न में कष्टकारक है राहुस्वयं हृदय रोग कारक है। चतुर्थ–पंचम भाव हृदय रोग के हैं : बुध नाड़ी (रक्त-वहानाड़ियों) में रोग कारक होने से हृदय रोग से सम्बन्ध रखता है अत: हृदय रोग स्वाभाविक है। इस जातक के अति संयमित जीवन के परिपालक तथा नित्य ५ मील प्रात: भ्रमण के नियम में रत होते भी हृदय रोग का आघात होना ग्रहों के फलों की सत्यता का परिचायक है।

पैरों के रोगी

निम्न कुण्डली एक ऐसे रोगी की है जो १६७७ से पैरों के रोग से ग्रस्त है और चल फिर नहीं सकता है। पिछले १६७६ से यह लगभग घर के अन्दर ही जीवन बिता रहे है और लाठी के सहारे घर के अन्दर ही १०-१० कदम चल सकते हैं। जातक स्वयं होमियोपैथी के अच्छे चिकित्सक हैं।

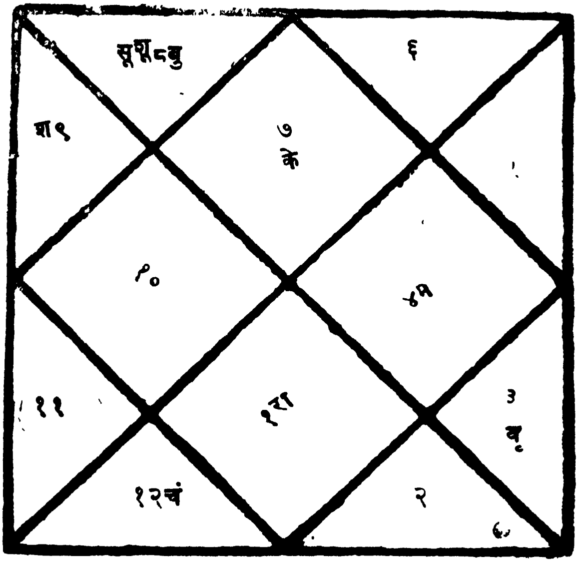

कुण्डली में पैर का सूचक दशम भाव है। इसमें नीच का मंगल मारकेश होकर बैठा है तथा इस भाव का स्वामी चन्द्रमा षष्ठ है। सन् १९६७ में चन्द्रमा दशा आने से ही रोग शुरू हुआ और १६७७ में मंगल की दशा आते ही रोग बढ़ गया। क्योंकि रोग कारक ग्रह चन्द्र व मंगल हैं अत: पैरों का यह रोग लकवा या पोलियो न होकर कोई रक्त सम्बन्धी विकार से होना चाहिये।

श्रीसम्वत् १६८८ कार्तिक कृष्ण २ बुधेष्टम् १६/४० कृतिका २ चरणे जन्म:

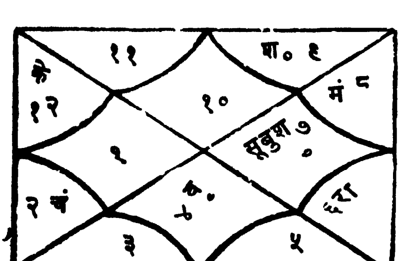

इस महिला के गर्भाशय में विकार था, अत: शल्यक्रिया से गर्भाशय निकाल दिया गया है। अष्टम स्थान गर्भाशय व गुप्तांग सूचित करता है, उसका स्वामी सूर्य नीच का होने से यह फल हुआ।

मानव शरीर में रोग कब उत्पन्न होता है ?

लग्नं जीवो मनश्चन्द्र: शरीर भानुरेवच ।
जीवादि सकलं नेष्टं रोगकाल: स उच्यते ।।

लग्न शरीर है मन चन्द्र और शरीर सूर्य है जीव मन- शरीर पर प्रभाव रखने वाले लग्न चन्द्र और सूर्य जब निर्बल होते हैं उस समय यह प्राणी रोग पीड़ित होता है ।

स्पष्टीकरण :—

(१) यदि किसी कुण्डली में जन्म लग्न निर्बल अर्थात लग्नेश नीच, अस्तगत शत्रुराशि में होकर परिभ्रमण गति से जाकर वह पापयुक्त पाप दृष्ट हो ।

(२) जन्म लग्न में पाप ग्रह होकर पाप ग्रहों की कर्तरी में आ जाय या जन्म लग्नस्थ पाप ग्रह की राशि पर पाप ग्रह गोचर में परिभ्रमण करे ।

(३) सूर्य और चन्द्र शनि मंगल अथवा राहु इनमें एक या दो से पीड़ित हो ।

(४) सूर्य चन्द्र या लग्न से शनि की ७।। वर्ष की साढ़े साती हो अथवा जन्म काल में ६।८।१२ वें स्थान पर शनि मंगल राहू हो, किवा इनमें से एक ग्रह १।४।७।१०।६ वें स्थान पर बैठे हुए पाप ग्रह की स्थिति पर से गोचर से परिभ्रमण करें तब यह काल प्राणी मात्र के लिए शरीर कष्ट पीड़ा कारक जाता ही है यदि उस समय २।३।७ अथवा ६।८।१२ वें घर बैठे हुए किवा इन स्थानों के स्वामी की विंशोत्तरी महादशा किम्बा अंतर्दशा काल भी हो तो पीड़ा कारक ही नहीं प्राणांत भी हो जाता है ।

मृत्यु का पूर्वाभास और ज्योतिष

हममें से प्रत्येक के जीवन में ऐसे व्यक्तियों से कभी न कभी सम्पर्क अवश्य हुआ होगा, जिसने यह बतलाया हो कि अमुक व्यक्ति ने अपनी मृत्यु का संकेत पहले से दे दिया था। इतिहास में भी ऐसे अनेक प्रसंग भरे पड़े हैं। प्रश्न यह है कि क्या प्रत्येक व्यक्ति को अपनी मृत्यु का पूर्वाभास सम्भव है? इस सम्बन्ध में आमधारणा यह है कि ऐसा सौभाग्य चरित्रवान, निष्कपट एवं सत्यवादी व्यक्ति को ही प्राप्त होता है।

ज्योतिष में तो आयुज्ञान के सिद्धान्त हैं ही और उसके माध्यम से भी आयु का ज्ञान हो सकता है लेकिन ज्योतिष शास्त्र से परे कभी व्यक्ति को स्वतः अन्तर्प्रेरणा प्राप्त होती है कि उसकी मृत्यु सन्निकट है। प्रभु ईसा, महात्मागांधी, स्वामीरामतीर्थ आदि इसके उदाहरण हैं।

इसके अलावा एक तीसरा पक्ष भी है। भारतीय साहित्य में ऐसे अनेक संकेतों की चर्चा है, जिससे मृत्यु का पूर्वाभास सम्भव है। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं:—

(१) जिस व्यक्ति को अरुन्धतीतारा ध्रुव चन्द्रमा का कलंक और आकाश गंगा न दिखलाई दे, उसकी मृत्यु सन्निकट होती है। प्रतिबन्ध यह है कि आँखें ठीक हों।

(२) जिसे अपनी नाक का नोक (अग्रभाग) या जीभ न दिखाई दे, उसकी मृत्यु सन्निकट होती है।

(३) पानी या कीचड़ में सने जिसके पांव पूरी छाप में न उतरें (खंडित हो) उसकी आयु आठ मास के अन्दर समझें।

(४) स्नान करते समय यदि शरीर पर पानी न रहे, कमल के पत्ते पर पानी पड़ने के समान पानी उतर जाय तो आसन्न मृत्यु समझे।

(५) शीशा, पानी आदि में जिसे अपना चेहरा विकृत या खंडित दिखलाई दे, उसे गतायु समझें।

(६) प्रकाश में प्रभामण्डल मालूम न दे या आँखें बन्द करने पर जिसे प्रकाश का आभास न मालूम पड़े।

(७) जिसकी दृष्टि ऊपर को या तिरछी हो जाय।

(८) जिसके मुख में तीन अंगुलियां न आ सकें।

(९) दूसरे की आंखों में जिसे अपना प्रतिबिम्ब न दिखलाई दे।

(१०) सूर्य, चन्द्रमा आदि न दिखें या दो-दो दिखलाई दें।

(११) पेड़ों में सोने का आभास हो।

(१२) दोनों कान बन्द करने पर घोष न सुनाई दें।

(१३) अपने पैर न दिखलाई दें।

(१४) अपनी छाया खंडित मालूम दे।

(१५) दीपक बुझने की गन्ध का आभास न हो।

इसी प्रकार और भी अनेक लक्षण हैं। सुप्रसिद्ध लेखक श्री कन्हैयालाल मिश्र जी ने इस विषय पर कुछ रोचक संस्मरण प्रस्तुत किये हैं :—

क्या ज्योतिष शास्त्र मृत्यु की भविष्यवाणी कर सकता है ?

मेरे एक मित्र किसी जटिल रोग से पीड़ित थे। डाक्टर लोग उनके बच जाने की आशा दिला रहे थे, पर हालत उनकी दिन-दिन गिरती ही जा रही थी। परिवार वालों की समस्या यह थी कि उनसे सम्पत्ति के सम्बन्ध में वसीयत करने की बात कहें और वे बाद में स्वस्थ हो जायें, तो कहेंगे कि तुम लोग मरना मना रहे थे कि मेरे माल पर गुलछर्रे उड़ाओ, पर न कहें और वे मर जायें तो उत्तराधिकारियों में सर्वनाशी मुकदमेबाजी छिड़ जायेगी। बहुत सिर खपाने के बाद भी जब उन्हें राह न सूझी, तो वे मेरे पास आये।

समस्या जटिल थी—किसी की मृत्यु के बारे में कौन कुछ कह सकता है ? गहरे ऊहापोह में मुझे श्री सूर्यनारायण व्यास का नाम याद आया। व्यास जी चमत्कारपूर्ण ज्योतिष-विज्ञान के प्रामाणिक आचार्य थे और मित्रों पर कृपा उनका सहज स्वभाव था। मैंने उन मित्र की जन्मकुण्डली व्यास जी को भेज दी। उत्तर में व्यास जी ने आठ महीने बाद की एक तारीख लाल पेन्सिल से लिखकर उसके नीचे एकदम स्पष्ट लिखा—इस तारीख से पहले ही मृत्यु हो जानी चाहिए पर इसके बाद तो जीवन की कोई सम्भावना ही नहीं है और सचमुच उसी तारीख को उनकी मृत्यु हो गयी।

इसका अर्थ हुआ कि ज्योतिष-विज्ञान में मृत्यु का समय जानने की कोई प्रक्रिया अवश्य है वह महत्वपूर्ण है—सुनिश्चित है। विश्वविजयी सिकन्दर से किसी ज्योतिषी ने कहा : ' तुम्हारे जीवन का बुरा दिन आ रहा है।'' शकित

समय में चूर सिकन्दर ने क्रोध भर आंखों से देखा। एक दिन ज्योतिषी ने उससे कहा—"वह बुरा दिन आज है।" सिकन्दर का शक्तिदर्प फुंकारा—हिश्त !" अनुभव ने ज्योतिषी का समर्थन किया और उसी दिन राज्य सभा में सदस्यों ने सिकन्दर की हत्या कर दी।

ज्योतिष एक विज्ञान है और विज्ञान में नित नये शोध की गुंजायश है, पर एक बात स्पष्ट है कि ईसा ने ज्योतिष के द्वारा अपनी मृत्यु की बात नहीं जानी थी। तो यह प्रश्न ज्यों का त्यों रहा कि क्या मनुष्य के लिए यह सम्भव है कि वह निश्चित रूप से यह जान पाये कि मेरी मृत्यु कब आयेगी ?

यह मेरे जीवन का अन्तिम भोजन है

मैं उस दिन बाइबिल का स्वाध्याय कर रहा था। इस महान ग्रंथ का बहुत सा भाग संस्मरणात्मक है। ईसा के बलिदान के बाद कुछ लोगों ने ईसा के सम्बन्ध में अपने संस्मरण लिखे और उनका भी संकलन बाइबिल में कर दिया। मेरे सामने लूका के संस्करण थे और मैं ईसा का बलिदान-प्रकरण पढ़ रहा था।

उस दिन फसह का त्योहार था और ईसा अपने शिष्यों के साथ भोजन करने बैठे थे। परिस्थितियां यह थीं कि जनता ईसा के साथ थी और राजा एवं धार्मिक मठाधीश उसके विरुद्ध थे। यहां तक कि वे उसे मार डालना चाहते थे, पर जनता के विद्रोह से डर कर चुप थे। ईसा भी इससे परिचित थे, चौकन्ने थे और रात में पहाड़ी पर जाकर सोते थे—किसी अज्ञात स्थान में अपने शिष्यों के साथ !

भोजन से पहले ईसा ने रोटी तोड़कर सबको दी और प्याले में दाख-रस। कहा—यह रोटी मेरी देह है, यह दाख-रस मेरा खून। तुम मुझे इसी रूप में याद किया करना। सुनकर शिष्य चौंके, तो ईसा ने साफ कह दिया कि यह फसह मेरे जीवन में अन्तिम है और यह भी। साथ ही कहा—मुझे पकड़वाने वाला हाथ भी इस मेज पर है। मेरा अन्त ईश्वर की इच्छा के अनुसार ठीक है, पर उस पकड़वाने वाले पर लानत है।

अपने प्रमुख शिष्य पतरस से उन्होंने कहा—आज रात मुर्गे की बांग से पहले तू मुझे जानने से तीन बार इंकार करेगा।

उसी रात में ये दोनों बातें सच सिद्ध हुईं। उसके शिष्य यहूदा इस्करियोती ने ईसा को पकड़वा दिया और पिटाई के डर से पतरस ने तीन

बार ईसा को जानने से इंकार किया। अपनी मृत्यु के सम्बन्ध में ईसा ने और भी जो बातें कहीं थीं, वे सच निकली।

तो स्पष्ट है कि महामानव ईसा को अपनी मृत्यु का धुंधला अनुमान नहीं, सम्पूर्ण ज्ञान था। इस ज्ञान की कोख से एक प्रश्न का जन्म होता है—क्या मनुष्य के लिए यह सम्भव है कि वह निश्चित रूप से यह जान पाये कि मेरी मृत्यु कब आयेगी ?

क्या गांधी जी को अपनी मृत्यु का ज्ञान था ?

लो, वे खड़े हैं महामानव ईसा और उनके पास ही आकर खड़े हो गये महापुरुष गांधी। दोनों के बलिदान की तारीख तो नहीं मिली, पर दिन एक ही था—शुक्रवार। गांधी जी का बलिदान हुआ ३० जनवरी १९४८ को और इतिहास का चमत्कार ही है यह कि इससे ठीक एक साल पहले ३० जनवरी १९४७ को गांधी जी ने मनु बहन से कहा था—"सच्चा ब्रह्मचारी मैं हूँ...... फिर भी मैं तो कहता हूँ मेरी मृत्यु ही यह साबित करेगी कि मेरा यह दावा सच्चा है या झूठा ?

"यदि मैं रोग से मरूँ, तो यह मान लेना कि मैं इस पृथ्वी पर दम्भी और रावण जैसा राक्षस था, परन्तु यदि राम नाम रटते रटते जाऊँ तो ही मुझे सच्चा ब्रह्मचारी, सच्चा महात्मा मानना।"

इसके बाद भी उन्होंने कई बार अपनी मृत्यु का संकेत दिया, पर ७ अप्रैल १९४७ को तो उन्होंने अधिकारपूर्वक प्रार्थना सभा में खुले आम कहा: "मेरे ये बचन नोट करके रखिए। मैं आप से कहता हूँ कि यदि मैं अपने मारने वाले को अन्तिम समय में गाली दूं या उस पर क्रोध करूँ, तो मुझे फटकारना और कहना कि यह तो दम्भी महात्मा था।"

२२ मई १९४७ को पटना में गांधी जी ने एकदम साफ और पूरे बल से फिर कहा—"मुझें किसी समय १२५ वर्ष जीने की लगन थी। आज वह नहीं है परन्तु रामरटन करते-करते मृत्यु मित्र से बहादुरी के साथ मिल सकने का मेरा प्रयत्न जारी है। मैं यदि कष्ट सहन करके मरूँ, तो पुकार-पुकार कर कहना चाहिए कि यह दम्भी महात्मा था, परन्तु राम नाम लेते हुए मृत्यु आये, तो समझ लेना कि नहीं इस बापू में कुछ था।"

२० जनवरी १९४८ को गांधी जी पर बम फेका गया और दूसरे दिन उन्होंने कहा—"हँसते हुए आपसे बिदा लेने के सौभाग्य की प्रतीक्षा कर रहा

हूँ।" २७ जनवरी को कहा—"मेरी पूरी तैयारी है कि जब हुक्म आयेगा, तभी तैयार मिलूंगा।" २८ जनवरी को राजकुमारी अमृतकौर से कहा : "इफ आई एम टु डाई वाई दि बुलेट आफ ए मैड मैन आई मस्ट डु सो स्माइलिंग। गॉड मस्ट बी इन माई हार्ट एण्ड ऑन माई लिप्स।" अर्थात्—अगर मैं एक पागल आदमी की गोली से मरने वाला हूँ, तो यह मुझे मुस्कराते हुए मरना चाहिए। ईश्वर उस समय मेरे हृदय में होना चाहिए और होठों पर भी।

२९ जनवरी को मिस मार्गरेट ने १२५ वर्ष जीने की बात कही, तो गांधी जी ने तेजी के साथ जवाब दिया—' आई हैव लास्ट दैड होप.. आई डोण्ट वांट टु लिव इन डार्कनैस।" अर्थात्—वह आशा मैंने खो दी, मैं अंधेरे में नहीं जीना चाहता। इससे भी बढ़कर उस दिन बात हुई। गांधी जी को खांसी उठी, तो मनु बहन ने उनसे पेंसलीन की गोली लेने को कहा। दुखी होकर गांधी जी बोले—' यदि मैं किसी रोग से या छोटी फुन्सी से मरूँ, तो तू जोर शोर से दुनिया से कहना कि यह दम्भी महात्मा रहा,.. ...भले ही मेरे लिए लोग गालियां दें, फिर भी यदि मैं रोग से मरूँ, तो मुझे दम्भी-पाखण्डी महात्मा ही ही ठहराना और यदि गत सप्ताह की तरह धड़ाका हो, कोई मुझे गोली मार दे और मैं उसे खुली छाती झेलता हुआ भी मुंह से सी तक न करता हुआ राम का नाम रटता रहूँ, तभी कहना कि यह सच्चा महात्मा था !"

इसी दिन गांधी जी ने कांग्रेस के लिए अपनी वसीयत लिखी और आग्रह करके प्यारेलाल भाई से उसे ठीक कराया। ३० जनवरी १९४८ को अपने बलिदान से कुछ देर पहले गांधी जी सरदार पटेल से बातें कर रहे थे कि रसिक भाई और ढेबर भाई ने मिलने का समय पूछा, तो गांधी जी ने कहलाया—"उनसे कहो कि यदि जिन्दा रहा, तो प्रार्थना के बाद टहलते समय बातें कर लेंगे।" और सवा पांच बजे के कुछ मिनट बाद गांधी जी प्रार्थना की वेदी पर हाथ जोड़े हुए दुष्टात्मा गोडसे के पिस्तौल की तीन गोलियां छाती, पेट पर खा 'हे राम हे रा...' कहते हुए बलि हो गये।

इन उल्लेखों के रहते हुए कौन कह सकता है कि गांधी जी को अपनी मृत्यु का ज्ञान नहीं था ? यह भी कि वह आ रही है और यह भी कि वह गोली के रूप में आ रही है। यही नहीं, गांधी जी को अपनी मृत्यु के फल का भी आभास था। ७ अप्रैल १९४७ को उन्होंने कहा था—' मनुष्य के मरने के बाद उसकी कीमत आंकी जा सकती है। इसलिए मेरी मृत्यु के बाद ही यह समझ में

आयेगा कि मैं जिन्ना साहब का गुलाम हूँ, महमूद गांधी हूँ, हिन्दू धर्म का रक्षक या भक्षक हूँ अथवा मुझे बुरा करना है या भला करना है।" सचमुच उनके मरते ही देश का दृष्टिकोण बदल गया और साम्प्रदायिकता की गन्दगी राष्ट्रीयता की गंगा में डूब गयी। सारा देश गांधी जी के लिए रोता दिखायी दिया।

*　　　　*　　　　*

शराबियों जैसी मस्त आँखें, रोम-रोम में झूमती-सी जिन्दगी। कि जैसे मस्ती ही जीती जागती इन्सानियत बन बैठी हो एक अजब रूप! यह कौन कौन खड़ा हो गया महामानव ईसा और महापुरुष गांधी के पास? ये हैं सन्त शिरोमणि स्वामी रामतीर्थ। ऋषिकेश में सुबह अपनी कुटिया में बैठे कुछ लिख रहे थे कि पता नहीं कहाँ चले गये कुछ गुनगुनाते हुए। किसी का ध्यान उस कापी पर गया, जाने से पहले जिस पर कुछ लिख रहे थे। लिखा था—

"ऐ मौत, अगर चाहो तो इस जिस्म को ले जाओ, मुझे जरा भी परवाह नहीं।"

ज्यौतिष में नेत्र दोष सूचक योग

जीवन में आँखों का महत्व सर्वोपरि है क्योंकि ज्ञानेन्द्रियों में यह मुख्य है, चक्षुहीन व्यक्ति प्रकाशहीन भवन के ही समान है अत: ज्योतिषशास्त्र में नेत्र बिकार के योगों का वर्णन किया गया है । ज्योतिष के सामान्य सिद्धान्तों के अनुसार— जन्म कुण्डली में द्वितीय और द्वादशभाव आँखों के सूचक हैं, अत:—

(अ) जन्मलग्न से दूसरे या बारहवें भाव में सूर्य, मंगल, शनि, राहु या केतु—किसी भी पापग्रह के होने से,

(आ) अथवा दूसरे या बारहवें में शुक्र के होने से,

(इ) अथवा दूसरे या बारहवें में चन्द्रमा (विशेषकर क्षीण चन्द्रमा) होने से—नेत्र विकार का योग बनता है ।

(ई) शुक्र, सूर्य या चन्द्रमा के दुर्बल अथवा पापयुक्त होने से ।

यदि जन्म १ से १० अंश तक हो (प्रथम देष्काण) तो यह योग प्रबल होता है १० अंश के ऊपर होने से योग दुर्बल एवं कम कुप्रभावकारी हो सकता है ।

इन्हीं मौलिक सिद्धान्तों के आधार पर ज्योतिष ग्रंथों में नेत्रदोष के हजारों योग बिभिन्न आचार्यों, ग्रंथकारों ने कहे हैं । इन योगों को ज्योतिष ग्रंथों में देखना चाहिये ।

लेकिन हम यहाँ पर उपरोक्त योगों से भिन्न नेत्रदोष सूचक कुछ विशेष योगों का वर्णन कर रहे हैं । क्योंकि उपरोक्त योगों के अलावा भी नेत्र बिकार सूचक अन्य योग भी हो सकते हैं । ग्रंथकार गर्ग तथा यवनाचार्य ने निम्नांकित योगों को भी नेत्र विकार सूचक माना है । नेत्रविकार सूचक योग जन्म कुण्डली में विद्यमान होने पर जातक को आँखों पर विशेष ध्यान देना चाहिये और समय समय पर परीक्षण कराते रहना चाहिये ।

अ [१] अष्टम में कुंभ का बृहस्पति हो ।
[२] अष्टम में वृष का बृहस्पति हो ।
[३] अष्टम में कर्क का शुक्र हो ।
[४] अष्टम में धनु का शुक्र हो ।

आ[१] सिंह का शुक्र षष्ठ में हो।
[२] मीन का शुक्र षष्ठ हो।

इ [१] कुंभ का सूर्य, मकर का क्षीण चन्द्रमा, तुला या वृष राशि का मंगल, पापयुक्त बुध धनु या मीन का, सिंह या कर्क का शनि षष्ठ में हो— इस प्रकार कुल आठ योग बनते हैं।

ई [१] सूर्य वृश्चिक का षष्ठ हो।
[२] चन्द्रमा तुला का छठे हो।
[३] मंगल कर्क का अथवा कुंभ का छठे हो।
[४] बुध धनु या कन्या का छठे हो।
[५] वृहस्पति मिथुन या मीन का छठे हो।
[६] शुक्र सिंह या मकर का छठे हो।
[७] अथवा शनि मेष या वृष का छठे हो।

इस प्रकार कुल बारह योग बनते हैं।

इन योगों में ग्रंथकार गर्ग तथा यवनाचार्य ने षष्ठ, अष्टम भाव से भी नेत्रदोष का सम्बन्ध माना है। दोनों के मत से कुल मिलाकर ४+२+८+१२ कुल २६ विशेष योग बनते हैं। प्राय: षष्ठ और अष्टमभाव से नेत्रविकार का विचार ज्योतिर्विद करते हो नहीं हैं लेकिन उपरोक्त ग्रंथकारों के मत से षष्ठ व अष्टम भाव का सम्बन्ध नेत्रों से है। इसके अलावा शुक्र से नेत्रों का विचार सामान्यत: होता ही है, किन्तु कभी-कभी विशेष स्थिति में वृहस्पति भी नेत्रदोष से सम्बन्ध रखता है। ऐसा उपरोक्त सिद्धान्तों से सिद्ध होता है।

नेत्र विकार सूचक योगों के बारे में आचार्यों ने विस्तार से अध्ययन किया है। ग्रंथकार लल्ल, यवनाचार्य, गर्ग आदि के मतों के अलावा भी प्राचीन सभी ग्रंथों में स्वल्पाधिक रूप में नेत्र-दोष सूचक योग बतलाये हैं। इनमें से सारावली जातक परिजात जातकालंकार, रणवीर ज्योतिर्निबन्ध. कर्मप्रकाश, पाराशर होराशास्त्र संग्रह आदि मौलिक ग्रंथों में वर्णित प्रमुख योगों को हम दे रहे हैं।

'सारावली' में वर्णित नेत्र विकार योग

(१) जिसके जन्म काल में मंगल या शनि द्वादश में हों तो नेत्र को नाश करता है, यथा मंगल १२वें हो तो बायें नेत्र और शनि १२वें हो तो दाहिने नेत्र को नष्ट करता है।

(२) चन्द्र और सूर्य दोनों मिलकर १२वें स्थान में हों तो जातक जन्म से अन्धा होता है।

(३) अथवा सूर्य १२वें स्थान में हो तो दक्षिण नेत्र और चन्द्र १२वें हो तो वाम नेत्र को नष्ट करता है।

(४) यदि सातवें घर में सूर्य की होरा हो, उसमें राहु पड़ा हो तो जातक निःसन्देह अन्धा होता है।

(५) जन्म समय सूर्य और चन्द्र (२।१२) में हो, यदि पाप ग्रह ६, ८ में हों तो जातक अन्धा होता है।

(६) चन्द्रमा षष्ठस्थ हो, सूर्य ८वां तथा मंगल दूसरे भाव में हो तो जातक अन्धा होता है।

(७) मंगल शनि, चन्द्र ये तीनों ८ वें ६वें हो तो पित्त श्लेश्म विकार से जातक का नेत्र नष्ट होता।

(८) अशुभ ग्रह से युक्त चन्द्रमा अष्टम में हो तो दाहिना नेत्र और अशुभ से युक्त चन्द्रमा षष्टस्थ हो, शुभ ग्रह से न देखा गया हो तो पीछे जाकर नेत्र को नष्ट करता है जल्द से नहीं।

(९) शनि से युक्त चन्द्रमा ८।१२ में हो· पाप ग्रह से देखा गया हो तो वायु और कफ के विकार से नेत्र को नष्ट करता है। यदि वह चन्द्रमा अष्ठमस्थ हो तो दक्षिण और व्ययस्थ हो तो वाम नेत्र को नष्ट करता है। परन्तु चन्द्रमा को शुभ ग्रह देखता हो तो आंख की खराबी नहीं होती अथवा बहुत समय बीतने पर आंख की खराबी होती है।

(१०) शनि मंगल और सूर्य के साथ चन्द्रमा अष्टम में हो तो नाना रोगों के विकार से दाहिनी आंख में विकार पैदा होता है। उपरोक्त चन्द्रमा १२वें हो तो अधिक रोगों के द्वारा जातक के वाम नेत्र में विकार उत्पन्न करता है। अर्थात् आंखों में हर तरह की बीमारियां पैदा होती हैं।

'जातक पारिजात' के अनुसार नेत्रदोष योग

(१) सिंह लग्न में रवि और चन्द्र हों, उन्हें मंगल और शनि देखते हों तो वह बालक नेत्र (आंख) से रहित हो। यदि शुभ ग्रह पाप ग्रह दोनों देखते हों तो बुदबुद नेत्र हों। १२ में चन्द्र हो तो वाम नेत्र की और सूर्य १२ में हो तो दक्षिण नेत्र की हानि होती है। अशुभ ग्रह के देखने से ये योग होते हैं। शुभ ग्रह के देखने से उसमें न्यून फल होता है।

(२) यदि सूर्य मेष लग्न का हो तो नेत्र में रोग होता है, सिंह लग्न का सूर्य हो तो रात्र्यन्ध (रतौंधी) होता है। कर्क लग्न में सूर्य हो तो बहुत छोटी आँखें होती हैं।

(३) यदि सूर्य और चन्द्रमा १२ वे भाव में हों तो जातक दोनों आँखों से अन्धा होता है। केवल सूर्य १२ वे हों तो दाहिनी आँख और केवल चन्द्र हों तो बायीं आंख अन्धी होती है। अथवा पाप ग्रह (मं० श० रा० के० सू०) ६। ८। १२ में हो तो आँखें अन्धी होती हैं। यहाँ भी ६ ठे में पाप ग्रह बायीं और आठवें में दाहिनी आँख को नष्ट करते हैं।

(४) यदि सूर्य लग्न या सप्तम में हो उसे शनि देखता हो या शनि सूर्य के साथ हो तो जातक का दक्षिण नेत्र नष्ट हो जाता है। यदि लग्नस्थ या ७ मस्थ सूर्य राहु और मंगल से युक्त हो तो बायीं आँख नष्ट करता है।

(५) यदि सूर्य या चन्द्र १२ वे हों, षष्ठ अष्टम और द्वादश भाव में पाप हों तो षष्ठस्थ ग्रह वाम नेत्र का और अष्ठमस्थ ग्रह दक्षिण नेत्र नाश करता है।

(६) यदि मंगल द्वितीयेश होकर सूर्य और चन्द्रमा से ८ वें भाव में हो तो जातक अन्धा हो। यदि चन्द्र ८।१२।६ भाव में हो और शनि मंगल के साथ हो तो जातक का नष्ट नेत्र हो।

(७) चन्द्रमा ६ ठे हो, सूर्य आठवें हो, लग्न से १२ वे शनि हो और दूसरे मंगल हो तो इस योग में अवश्य ही जातक अन्धा होता है।

(८) यदि द्वितीय भावेश लग्नेश से युक्त होकर ६।८।१२ में हो तो जातक अन्धा होता है। यदि द्वितीयेश शुक्र और चन्द्रमा के साथ होकर लग्न में हो तो जातक रात्र्यन्ध (रात्रि को अन्धा) होता है। यदि द्वितीयेश उच्चगत ग्रह और शुभ ग्रह दृष्ट हो तो जातक सुन्दर नेत्र वाला होता है।

(९) यदि पांचवे और चौथे भाव में पाप ग्रह हों और चन्द्रमा यदि ८ वें में हो तो निश्चय अन्धा होता है।

इन योगों में शुभ ग्रह की दृष्टि न होने से अन्धा होता ही है। किन्तु यदि यहाँ शुभ ग्रहों का दृष्टि और योग हो तो दोष नहीं होता अर्थात् अन्धा नहीं होता।

जातकालंकारे

(१) षष्ठेश वा चन्द्रमा पाप युक्त होकर उदृश्य चक्रार्ध में पड़े हों तो नेत्र में अंक होता है।

(२) यदि क्षीण चन्द्रमा को शुक्र न देखता हो तथा चन्द्र अपनी राशि में हो तथा सप्तम दशम स्थित पाप ग्रह से देखा जाता हो तो मनुष्य निश्चय ही छोटे नेत्र वाला होता है।

(३) यदि लग्न स्थित मंगल अथवा चन्द्र को बृहस्पति या शुक्र देखता हो तो जातक काणा होता है।

(४) यदि सूर्य से अग्रिम भाव में मंगल हो तो उस जातक की दृष्टि कांति हीन होती है। सूर्य से अग्रिम भाव में बुध हो तो जातक की आंख में चिन्ह होता है। यदि शुक्र लग्न में अथवा अष्टम भाव में पाप ग्रह से देखा जाता हो तो जातक की आंख में अश्रुपात से पीड़ा होती है।

(५) यदि चन्द्रमा और मंगल एक भाव (अथवा एक नवांश) में हो तो दोनों नेत्रों में कुछ चिन्ह होता है। इत्यादिक ज्योतिषी ग्रह के बल को देखकर कहे।

(६) यदि सूर्य द्वादश, नवम वा पंचम भाव में स्थित होकर पाप ग्रहों से युक्त अथवा दृष्ट हो तो वह जातक मनस्वी और विकल नेत्र होता है। इस प्रकार (द्वादश, नवम, पञ्चम भाव में पापग्रह से युक्त दृष्ट) शनैश्वर हो तो जातक रोगी होता है।

रणवीर ज्योतिषे—

(१) जिसके जन्म समय में लग्न में स्थित चन्द्रमा कर्क और मेष के नवांश में होवे और वृष के नवांश में और धन के पूर्ण नवांश में हो तब दृष्टि से हीन होता है और वृष के उन्नीसवें अंश में और मीन के बीसवें अंश में लग्न गत चन्द्रमा होवे तब दृष्टि हीन होता है। और जिसके जन्म काल में कर्क राशि के सूर्य चन्द्रमा लग्न में स्थित होवे और सिंह के दश अंश से लेकर १७ अंश पर्यन्त हो तब दृष्टि हीन होता है। अथवा सूर्य चंद्रमा कन्या लग्न में स्थित चतुर्थ और एकोनविंशति एक विंशति अंशों में स्थित होवे तब दृष्टिहीन होता है।

(२) धन राशि में सूर्य चंद्रमा लग्न गत होवे और नवम, एकविंशति और द्वाविंशति अंश में स्थित होवे तब दृष्टि हीन होता है। और कुम्भ राशि में लग्न गत सूर्य चंद्रमा विंशति एक विंशति और द्वाविंशति और पांचवे अंश में स्थित होवे तब दृष्टिहीन होता है और जिसके जन्म समय में क्षीण चंद्रमा को बृहस्पति न देखता हो और शनि देखता हो तब थोड़ी दृष्टि वाला होता है।

(३) जिसके जन्म काल में लग्न पति क्रूर राशि में अष्टम स्थान होवे अथवा चंद्रमा सूर्य क्रूर ग्रहों के मध्य में हों, अथवा सूर्य चंद्रमा से सातवें स्थान मंगल होवे तब अन्ध होता है।

कर्म प्रकाशे

(१) वृष राशि में ६ठे अंश से लेकर दश पर्यन्त अंध भाग होते हैं। और मिथुन में नव अंशों से लेकर १५ अंश पर्यन्त अंध भाग होते हैं। कर्क और सिंह राशि में अष्टादश (१८), सप्तविशति (२७), अष्टविशति। यह अंध भाग होते हैं और वृश्चिक में सप्त, सप्तविशति (२७), अष्टविशति (२८), प्रथम दशम अंध भाग होते हैं।

और मकर में २६वें से लेकर २९ पर्यन्त अंध भाग होते हैं और कुम्भ राशि में अष्टम, दशम अष्टादश (१८) एकोनविशति (१९) यह अंध भाग होते हैं।

क्षीण चंद्रमा के विषय में—वृष में २१, २२, २९ अंध भाग होते हैं और कर्क राशि में १९, २० अंध भाग होते हैं और सिंह राशि १० से लेकर १६ पर्यन्त अन्ध भाग कहे हैं और कन्या में १९ से लेकर २१ पर्यन्त अंध भाग होते हैं।

और धन राशि में बीस से लेकर त्रयी (२३) पर्यन्त होते हैं। और कुम्भ में प्रथम-द्वितीय-चतुर्थ पञ्चम अंध भाग होते हैं। चंद्रमा सूर्य की राशि में स्थित अंध भागों को भली प्रकार देख के और ग्रहों की दृष्टि से फल को कहे।

इन पूर्व कहे अंधभागों में स्थित चंद्रमा और सूर्य लग्न गत हों अथवा दूसरे बारहवें स्थान में स्थित हों तब नेत्रों का नाश करते हैं।

जब चंद्रमा सूर्य-गुरू और शुक्र से दृष्ट हो तो थोड़ा दोष कहते है। और बुध द्वारा दृष्ट हो तो रात्रि में अंधता करते हैं। और पापी ग्रहों करके दृष्ट हो तब नेत्र नाश करते हैं।

(२) चतुर्थ भाग के भुक्तांश से लेकर दशम भोग्यांश पर्यन्त क्षीण चंद्रमा व दग्ध नष्ट चंद्रमा स्थित हो तब दायें नेत्र का नाश करता है और चतुर्थ भाव के भोग्यांश से लेकर दशम भाव के भुक्तांश पर्यन्त चद्रमा स्थित हो तब बाम नेत्र में दोष प्रकट करता है और इसी प्रकार सूर्य स्थित होवे तब दक्षिण नेत्र में चिह्न करता है और इसी प्रकार सूर्य चंद्रमा से दक्षिण बाम नेत्र में पाप ग्रहों की दृष्टि से प्रकट और गौण चिन्ह कहे।

(३) और चंद्रमा दृश्यार्ध में स्थित और पापी ग्रह से पीड़ित हो तो रात्रि के जन्म में दक्षिण नेत्र रोग करता है और इसी प्रकार सूर्य हो वाम नेत्र में रोग करता है और ६ठें स्थान में चंद्रमा शुभ दृग्योग हीन नेत्र रोग करता है और षष्ठेश सूर्य लग्न में स्थित हो और शुभ ग्रह बक्री हो करके त्रिक स्थान में होवे तब नेत्र रोगी होता है।

(४) षष्ठेश चंद्रमा बक्री ग्रह की राशि में हो तब नेत्र रोगी होता है षष्ठेश चंद्रमा शनि द्वारा दृष्ट हो तब श्लेष्म विकार से और मंगल से दृष्ट हो तो ताप से और गुरू, शुक्र, बुध से दृष्ट हो तो क्रम से शोथादि विकार से अंध होता है।

(५) लग्न चंद्रमा, सूर्य, क्रूर ग्रहों से युक्त हों तो अंध योग होता है। और लग्न शुभ स्थान में होवे और लग्नेश और सूर्य क्रूर युक्त षठे स्थान में होवे तब अंध योग होता है। और क्रूर षष्ठेश से वा मंगल से युक्त होवे तब अंधयोग होता है। और लग्नेश बक्र होकर के चंद्रमा से बारहवें स्थान में स्थित हो तब अन्ध योग होता है।

(६) चन्द्रमा सूर्य तीसरे व केन्द्र स्थान में स्थित होवे तब अन्ध योग होता है। अथवा मंगल केन्द्र में स्थित पाप ग्रहों मे दृष्ट हों तब अन्ध योग होता है और शुभ ग्रह ६ठें, आठवें बारहवें स्थान में होवें और चन्द्रमा व सूर्य तीसरे व केन्द्र में स्थित क्रूर दृष्ट हो तब अंध योग होता है और मकर, कुम्भ राशि में सातवें स्थान में सूर्य स्थिति हो तब अंधयोग होता है।

(७) सूर्य व चन्द्रमा अंधकारमय में स्थित हों तब अंध योग होता है। और दिन के जन्म में भूम्युपरि चतुर्थ से दशम पर्यन्त सूर्य स्थित होवे क्रूर से दृष्ट हो तो दक्षिण नेत्र से काणा होता है और षष्ठेश चन्द्रमा हो क्रूरों से दृष्ट और शुभ दृष्टि से हीन हो तब दक्षिण नेत्र से काणा होता है और षष्ठेश भौम लग्न मे हो, शुभ दृष्टि रहित और पाप दृष्टि युक्त हो तब पुष्प युक्त काणा दक्षिण नेत्र से होता है और चन्द्रमा मंगल से युक्त अष्टम में होवे और दिन में जन्म हो तो काणा होता है और रात्रि जन्म में नवम् स्थान में सूर्य शनि हो और शुभ ग्रह न देखे तब बाम नेत्र में काणा होता है।

(८) और चतुर्थ से लेकर दशम पर्यन्त सूर्य दिवा जन्म में होवे तब दक्षिण नेत्र से काणा होता है और षष्ठेश चन्द्रमा व मंगल लग्न में होवे और सूर्य से बारहवें मंगल बुध होवें तब नेत्रों में चिह्न होता है व मंगल चन्द्रमा एक अंश में होवें तब चिह्न होता है।

(६) दिन के जन्म में सूर्य नष्ट संज्ञा में स्थित होवे और मंगल की राशि में या मंगल से युक्त हो तब अंध योग होता है और कर्क राशि में अंधांशों के मध्य चन्द्रमा होवे तब अंध योग होता है और रात्रि के जन्म में धन राशि में और अंधांशों में स्थित चन्द्रमा होवे तब अंध योग होता है और सूर्य दिवा जन्म में धन के प्रथमांश में स्थित शनि द्वारा दृष्ट हो तब अंध योग होता है।

(१०) क्षीण चन्द्रमा शनि से दृष्ट धनराशि में स्थित हो और गुरू शुक्र से अदृष्ट होवे तब अंध होता है। सूर्य से दूसरे स्थान में चन्द्रमा क्रूर युक्त हो तब अंधा होता है और दशम स्थान में चन्द्रमा पाप दृष्ट और शुभ दृष्टिहीन होवे तब अंधा होता है।

(११) नीच राशि में चन्द्रमा ६ठे बारहवें होवे और क्रूर दृष्ट होवे तब अंध होता है और अष्टमेश मंगल लग्न में स्थित होवे तब अंधा होता है और जल राशियों में अष्टम नवांश गत चन्द्रमा सूर्य केन्द्र स्थान में होवे तब अंध होता है और अस्त होकर के शनि नीच में स्थित होवे और सूर्य ग्रहण के समय में जन्मे वह अंधा होता है।

पाराशरीये

(१) धन भाव का स्वामी शुक्र से युक्त हो अथवा शुक्र क्षेत्र मूल त्रिकोण उच्च राशियों में स्थित होवे और लग्नेश करके संबंध को प्राप्त होवे तब नेत्रहीन करता है।

(२) और उस स्थान में चन्द्रमा सूर्य स्थित होवे तब रात्र्यंध होता है और धनेश, लग्नेश और सूर्य एक स्थान में स्थित हों तो अंध होता है और पिता, माता, भ्रातादि भावों के स्वामी धनेश और सूर्य से मिल करके एक स्थान में स्थितहोवे तो पित्रादियों की अंधता कहे।

शंभु होरा प्रकाशे

(१) सिंह लग्न में सूर्य और चन्द्रमा हो उन पर शनि एवं मंगल की दृष्टि पड़ती हो तो जातक अंध होता है। यदि शुभ-पाप दोनों की दृष्टि पड़ती हो तो कातर (बुदबुदाकर) नेत्र वाला होता है। बारहवां चन्द्रमा वाम नेत्र, बारहवां सूर्य दक्षिण नेत्र को नष्ट करता है।

(२) धन स्थान में पाप युक्त शुक्र हों तो काना अथवा मंद दृष्टि वाला मनुष्य होता है।

(३) द्वितीय और द्वादश भाव में चन्द्रयुक्त मंगल या शुक्र हो तो नेत्र-विकार होता है।

(४) सूर्य, मंगल, शनि, चन्द्रमा २।६।८।१२ भावों में हो तो अपने बल के अनुसार अपने धातु दोष से जातक को अंधा करते हैं।

(५) बुध के साथ सूर्य जन्म में त्रिक (८।६।१२) में हो तो जातक रात्र्यंध होता है। शुक्र युक्त सूर्य या लग्नेश युक्त सूर्य त्रिक (८।६।१२) में हो तो जातक जन्मान्ध होता।

जातक चन्द्रिकायाम्

(१) जिनके जन्म समय में द्वितीय मंगल, षष्ठ चन्द्रमा, द्वादश शनि, अष्टम सूर्य हो तो निश्चय वह मनुष्य अंध होता है।

(२) राहु ग्रस्त सूर्य लग्न में हो, लग्न से पञ्चम, नवम, शनि मंगल हो तो मनुष्य अंध होता है।

जैमिनी सूत्रे

(१) लग्न से गौण (५) के पद में राहु यदि सूर्य से देखा जाता हो तो नेत्र घातक होता है।

बृहज्जातके

(१) यदि सूर्य १२वें हो, चन्द्र ६वें हो, अथवा सूर्य ६ में, चन्द्र १२ में हो तो जातक और जातक की स्त्री दोनों ही काने होते हैं।

(२) सूर्य चन्द्र, मंगल, शनि यथा सम्भव (८।६।२।१२) में हों तो जातक को बली ग्रह दोष कारण से नेत्र का नाश होता है।

(३) राहु ग्रस्त सूर्य लग्न में हो तथा शनि और मंगल (९।५) में हो तो जातक अंध होता है।

जातक संग्रहे

(१) यदि द्वितीय, द्वादश के स्वामी त्रिक (६।८।१२) में लग्नेश तथा शुक्र से युत हो तो नयनहीन करता है। यदि चन्द्र, शुक्र और पाप ग्रह द्वितीय स्थान में हो तो नेत्रहीन होता है। शुक्र से युत चन्द्र (६-८-१२) में हो तो मनुष्य निशांध होता है।

(२) लग्न से १२वां मीन का सूय हो तो दक्षिण नेत्र में पीड़ा होती है, इसी तरह चन्द्रमा हो तो वाम नेत्र में पीड़ा करते हैं। मंगल व शुक्र पंचम में अस्त हो तो मनुष्य काण होता है।

(३) सिंह लग्न में शुक्र या शनि हो या शनि शुक्र १२वें हों तो मनुष्य नेत्र पीड़ा से पीड़ित होता है। मंगल, शनि, चन्द्र, सूर्य क्रम से (२।१२।६।८) में हों तो अपने त्रिदोष (कफ, वायु पित्त) के द्वारा जातक को नेत्र में रोग उत्पन्न करते हैं।

(४) यदि सूर्य, चन्द्र १२।६ में हों तो दम्पत्ति स्त्री-पुरुष दोनों काने होते है।

उपरोक्त प्राचीन मौलिक ग्रंथों में नेत्रदोष योग में 'अंधा' या 'काणा' शब्द कहा गया है। इसके यह अर्थ नहीं कि वह अंधा या काणा हों—इसका तात्पर्य यही है कि उपरोक्त में से किसी योग के होने पर नेत्र कमजोर होते हैं।

ग्रहों की शक्ति व स्थिति के अनुसार दोष में कमी या अधिकता विचारनी चाहिये। विशेष दोषयुक्त होने पर अंधा होगा।

प्राणपद का महत्व तथा शोधन

जन्म कुण्डली साधन में इष्टकाल को प्राणपद द्वारा शोधन अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि जन्म का समय सत्य अंकित होने पर भी उसमें अशुद्धि होने की प्रवल सम्भावना है। जिस घड़ी से समय अंकित किया जाय, उसके समय में कुछ अशुद्धि भी हो सकती है और यदि शुद्ध भी हो तो जन्म का समय कौन ग्रहण किया जाय ? क्योंकि जन्म समय के बारे में भी मत-मतान्तर हैं। यथा योनिद्वार से शिर बाहर आने का समय जातक के भूमिष्ठ होने का समय, नाल काटने का समय या बालक के प्रथम शब्द करने का समय—इनमें से किस समय को ग्राह्य माना जाय। फिर जहाँ शल्य क्रिया द्वारा शिशु का जन्म हो वहाँ तो जन्म समय के निर्धारण करने में और भी कठिनाई होती है।

आजकल जन्मपत्रियाँ कम्प्यूटर द्वारा बनने लगी हैं, लेकिन कम्प्यूटर द्वारा इष्टशोधन न हो पाने से जन्मपत्रियों की शुद्धता संदिग्ध हो जाती है।

वैसे तो जन्म समय अर्थात् इष्टकाल को शोधित करने की अनेक प्रणालियाँ हैं, प्राणप्रद, गुलिक, मांदि, पंचतत्वात्मक गणना आदि, लेकिन इन सबमें प्राण-पद की मान्यता सर्वोपरि है। प्राणपद साधन के जो सूत्र वर्णित हैं, वह इस प्रकार हैं—

घटी चतुर्गुणा कार्या तिथ्याप्तैश्चपलैर्युता: ।
शेषं पलाद्यंद्विगुणं स्पष्ट भास्कर संयुतम् ।।

* * * *

सूर्ये चरादि राशिस्थे शून्य नागाब्धि संयुतम् ।
स्पष्टं प्राणपदं ज्ञेय मोजभावेऽङ्ग शुद्धता ।।

* * * *

घटी चतुर्गुणा कार्या तिथ्याप्तैश्च पलैर्युता ।
दिवाकरेणापहृतं शेषं प्राणपदं स्मृतम् ।।
शेषपलां तद्विगुणीविधाय,
राश्यंशसूर्यर्क्षे नियोजिताय ।

तत्रापितद्द्राशिचरात्क्रमेण,

लग्नांशप्राणांशपदैक्यतास्यात् ।।

*   *   *   *

स्वेष्टकालं पलीकृत्य तिथ्याप्तंभादिकं च यत् ।
चरागद्विभगेभानो योऽयंस्वे नवमे सुते ।।

*   *   *   *

प्राणत्रिकोणे प्रवदन्ति लग्नं तदेवमाधान्वित राशिकोणे ।
शशांकसंयुक्तभकोणराशौ तदंशकातन्मदकोणभेवा ।।

*   *   *   *

केन्द्र त्रिकोणावृत याति प्राण: ।

तात्पर्य यह है कि इष्टकाल की घटी को चार से गुणा करे, पलों में पन्द्रह का भाग देकर लब्धि उपरोक्त में जोड़ दे, शेष पलों को दो गुणा करें (अथवा घटी के पल बनाकर पल जोड़ दे, इनमें पन्द्रह का भाग देकर शेष को दो गुणा कर ले) यह राशि तथा अंशात्मक मान होगा, इसे स्पष्ट सूर्य में जोड़ दें। यदि सूर्य चरराशि का है तो यही प्राणपद होगा।

सूर्य स्थिर राशि में हो तो इस राशि संख्या में आठ (८) और जोड़ दें। यदि सूर्य द्विस्वभाव राशि का हो तो चार (४) राशि जोड़ने से प्राणपद होगा। यहाँ राशि की संख्या बारह से अधिक होने पर बारह से भाग ले लिया जायेगा।

इष्ट-शोधन

इस प्रकार प्राणपद सिद्ध हो जाने पर यह देखा जाता है कि इष्टकाल शुद्ध है या नहीं इस सम्बंध में प्राप्त मत इस प्रकार हैं—

(१) लग्न और प्राणपद के अंश समान होने चाहिए।

(२) प्राणपद लग्न से लग्न या त्रिकोण में होना चाहिए, अथवा चंद्र से त्रिकोण में या चंद्रमा के साथ होना चाहिए।

(३) प्राणपद लग्न या चंद्र से केंद्र या त्रिकोण में होना चाहिए।

(४) प्राणपद लग्न से विषमभाव में होना चाहिए। ऐसा होने पर इष्टकाल को शुद्ध समझना चाहिए। यदि ऐसा न हो तो इष्टकाल को शोधित करने की आवश्यकता होती है।

निष्कर्ष

उपरोक्त मत-मतांतर हैं। क्योंकि फलित ग्रंथों में प्राणपद के द्वादशभावों के फल हैं, अत: लग्न से प्राणपद किसी भी भाव में हो सकता है।

मुख्य बात यह है कि लग्न और प्राणप्रद के अंशों में समानता होनी चाहिए और लग्न तथा प्राणपद का नवमांश खण्ड एक ही होता है।

यदि लग्न तथा प्राणपद के अंशों में समानता न हो तो इष्टकाल में इस प्रकार संशोधन किया जाता है। इस क्रिया की अनेक जटिल पद्धतियां हैं, मैं विद्यार्थियों के हेतु सरल एवं गोपनीय विधि ही दे रहा हूँ।

यथा—

लग्न तथा प्राणपद के अंश, कला, विकला में परस्पर अन्तर करलें और इस अंश, कला तथा विकला को क्रमश: पल, विपल, प्रतिपल मान लें। इसका आधा करलें। प्राप्त पलादि को—

(अ) लग्न स्पष्ट के अंश से प्राणपद के अंश अधिक हों तो इष्टकाल में ऋण कर लें।

(आ) लग्न स्पष्ट के अँश से प्राणपद के अँश कम हों तो इष्टकाल में जोड़ दें। इस शुद्ध इष्टकाल से लग्नांश और प्राणपद के अँश समान हो जायेंगे।

जन्मपत्र निर्माण करने से पहले इष्टशोधन कर लेना आवश्यक है तभी सत्य जन्मपत्री बनेगी और फलादेश सत्य होगा। लेकिन उचित पारिश्रमिक न मिलने के कारण आजकल इष्टशोधन का काम कदाचित ही होता है।

उदाहरण

(१) सूर्यस्पष्ट २।९।१५।५ इष्ट २६।४०
लग्न स्पष्ट ६।२७।३९।५६ है।
इष्टघटी २६ × ४ = १०४, ४० मे १५ का भाग देने पर
लब्धि २ + १०४ = १०६, शेष पल १० × २ = २०।
= १०६/२०
+ सूर्य स्पष्ट २।९।१५।५

१०८।२९।१५।५

सूर्य मिथुन (द्विस्वभाव) में होने से इसमें ४ और जोड़ने से ११२। २९।१५।५ हुआ। राश्यादि १२ से अधिक होने से १२ का भाग देने पर शेष ४।२९।१५।५ स्पष्ट प्राणपद हुआ। यहाँ पर लग्नांश और प्राणपद के अँशों में समानता नहीं है अत: दोनों का अन्तर किया।

प्राणपद अंशादि—२९।१५।५
लग्न अंशादि—२७।३९।५६

———————

१।३५।६

पल । विपल । प्रतिपल

इसका आधा (९५ विपल का आधा) ४७ विपल ।

प्राणपद अधिक होने से इसे इष्टकाल में ऋण करने से २६।३९।१३ यह शुद्ध इष्ट हुआ ।

(२) सूर्य २।९।१६।५५ इष्ट २८।४ लग्न ७।४।४१।२०

इष्टघटी २८ × ४ = ११२, पला ४ × २ = — = ११२।८

सूर्य स्पष्ट २।९।१६।५५

+ ११२।८।

+ ४।० (सूर्य द्विस्वभाव में)

———————————

११८।१७।१६।५५ (१२ का भाग देने पर) = १०।१७।१६।५५

लग्न व प्राणपद के अँशों में समानता नहीं है । अत:—

१७।१६।५५
४।४१।२०

————

अतंर १२।३५। = इसका आधा पलादि ६।१७।४७ प्राणपद अधिक होने से इष्टकाल २८।४ में ऋण करने से २७।५८ शुद्ध इष्ट हुआ ।

[३] सूर्य ६।१२।२५।० इष्ट १६।४५ लग्न ६।२।५३।४५

१६ × ४ = ६४ (४५ भाग १५ = ३) + ३ = ६७।०

सू० ६।१२।२५।०
६७।०।०।० (सूर्य चर राशि का)

—————

७३।१२।२५।० (१२ का भाग देने पर = १।१२।२५।०) प्राणपद ।

लग्नांश प्राणांश में समानता नहीं है अत:

१२।२५।०
[—]२।५३।४५

—————

९।३१।१५ = [आधा] ४ पल ४५ विपल ।

प्राणपद अधिक होने से इष्ट १६।४५—४।४५ = १६।४०।१५ शुद्धा ।

[४] सूर्य ९।२।०।१० इष्ट ३२।७ लग्न ४।२।२३।३७

३२ × ४ = १२८, ७ × २ = १४, १२८।१४

सूर्य ९।२।०।१०

+ १२८।१४।०।० [सूर्यचर का]

———————

१३७।१६।०।१० [१२ का भाग लेकर शेष = ५।१६।०।१०] प्राणपद।

१६।०।१०

[—]२।२३।३७

———————

१३।३६।३३ = आधा ६ पल ४८ विपल ऋण।

इष्ट ३२।७।[—]०।६।४८ = ३२।०।१२ शुद्ध।

[५] सूर्य ४।२४।११।५६ इष्ट १८।४० लग्न ८।११४६।.४

१८ × ४ = ७२, ४० भाग १५ = २, शेष १० × २ = २०

= ७२ + २ = ७४।२०

सूर्य ५।२४।११।५६

७४।२०।०।०

८।०।०।० [सूर्य स्थिर राशि का]

———————

८८।१४।११।५६ [१२ का भाग देने पर शुद्धप्राणपद] ४।१४।११।५६

प्राणपद १४।११।५६

[—] लग्न ११४६।२४

———————

१२।२५।३२ का आधा ६ पल १२ विपल।

= इष्ट १८।४० [—] ६।१२ = १८।३३।४८ शुद्ध इष्टकाल।

✪

ज्यौतिष से कर्कट रोग का परिज्ञान

आधुनिक युग में जहाँ पुराने प्रचलित रोगों पर (चेचक, मलेरिया, प्लेग, हैजा आदि) अधिकांशत: नियंत्रण पा लिया गया है वहीं कुछ नये रोग असाधारण रूप से बढ़ रहे हैं। ऐसे नये रोगों में कर्कट (कैंसर) रोग भी एक ऐसा है जो रक्तबीज की तरह दिनों-दिन व्यापक होता जा रहा है, एवं अभी तक असाध्य बना हुआ है। कर्कट रोग के अनेक रूप हैं—रक्त कैंसर, पेट का कैंसर, मस्तिष्क का, फेफड़े का, लीवर का, गर्भाशय का इत्यादि। कर्कट के जितने भी रूप हैं, उन सभी में मंगल का कुप्रभाव रहता है, अन्य ककट रोग अधिकांशत: मध्यायु के बाद ही होते हैं लेकिन रक्त कर्कट एक ऐसा रोग है जो युवा पीढ़ी में विशेष रूप से अपना प्रभाव दिखा रहा है।

पिछले वर्षों में मुझे ४००-५०० कैंसर रोगियों के जन्मपत्र देखने को मिले हैं। दुर्भाग्यवश उन सभी का संकलन मेरे पास नहीं है लेकिन उन सबको देखने के बाद मेरा अनुभव यह है कि कैंसर रोग में मुख्य रूप से कर्कट राशि और मंगल का मुख्य प्रभाव है।

ज्योतिष में कर्कट राशि (कर्क राशि) कैंसर का प्रतीक है और क्योंकि मंगल रक्त एव मांस से सम्बन्ध रखता है अत: कैंसर के मुख्य कारण इनका दूषित होना ही है। यदि किसी के कर्क राशि का मंगल जन्म कुण्डली में हो और मंगल का सम्बन्ध मारक स्थानों से हो, इसके अलावा शनि, शुक्र या बुध के घर का (१०, ११, २ ७, ३, ६ राशि का) मंगल मारक भावों से सम्बन्धित हो तो कैंसर की सम्भावना होती है। आजकल मेरे पास जो भी कैंसर के रोगी आ रहे हैं—उनमें मैंने मुख्य रूप से इसी योग को पाया है। ज्योतिष के प्राचीन मौलिक ग्रंथों में कर्कट रोग के बारे में विशेष चर्चा नहीं मिलती है—क्योंकि उस युग में इस रोग का प्रादुर्भाव ही नहीं हुआ था। तथापि पुराने ग्रंथों में मंगल के उपरोक्त प्रकार से दूषित होने पर "क्षयरोग" का योग बतलाया गया है।

बुध या शनि क्षेत्री मंगल मुख्यत: मांसगत, चन्द्रक्षेत्री रक्तगत व मांसगत, या फेफड़ा श्वासनली का इनमें कोई, तथा शुक्रक्षेत्री रक्तगत व गर्भाशय की कैंसर की सम्भावना व्यक्त करता है।

अनेक रोगियों के बारे में, मंगल की दूषित स्थिति को देखकर ही मैंने मेडिकल रिपोर्ट आने से पहले ही कैंसर की संभावना व्यक्त कर दी थी, जिसकी पुष्टि बाद में मेडिकल रिपोर्ट से भी हो गयी।

जन्म कुण्डली में मंगल कौन से भाव में है—तदनुसार "शीर्षाननौ तथा बाहू०" सिद्धांत के अनुसार शिर से लेकर पर तक किस अंग में रोग की सम्भावना है—यह बतला सकते हैं। अधिक सूक्ष्मता के निमित्त लग्न देष्काण के अनुसार उत्तमांग मध्यांग या अधोभाग में रोग की सही कल्पना कर सकते हैं। दूषित मंगल के साथ और कौन ग्रह युति या दृष्टि सम्बन्ध कर रहा है—इसके आधार पर तथा मंगल स्थित राशि के धातु के आधार पर रोग का निश्चित स्वरूप भी बतलाया जा सकता है।

इस कुण्डली में मंगल नीच का षष्ठ शुक्र के साथ कर्क का है, लग्न का द्वितीय देष्काण है, अत: गुह्य भाग व रज से सम्बन्धित है।

इसे गर्भाशय का कैंसर था, जो जन्मपत्र के अनुसार सही है।

११	१२	२	४	६	८	९
चं ल	के	सू बु	शु मं	रा	व	श

इस कुण्डली में भी मंगल नीच का, अष्टमेश होकर चौथे (मारक) है। लग्नेश भी है, लग्न का प्रथम देष्काण है।

इस जातक को मस्तिष्क का कैंसर था, जो ज्योतिषीय सिद्धांतों के अनुसार सही है।

१	२	४	५	१०	११	१२
ल सू	बु	मं	रा	व श	के	चं शु

कुछ और कैंसर रोगियों की कुण्डलियों का संकलन जो मेरे पास है, मैं यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ।—

[१] रक्त कैंसर से मृतक।

१	२	३	४	६	७	८	१०
रा	शु	सू बु	श	मं ल	के	वृ	चं

इस जन्म पत्र में मंगल अष्टमेश होकर लग्न में बुध की राशि का है। इस जातक की २८ वर्ष की अल्पायु में रक्त कैंसर से मृत्यु हुई। यह जन्म पत्र मेरे पास विवाह से पहले प्राप्त हुई थी—कन्या पक्ष की ओर से मिलान हेतु। उस समय जातक स्वस्थ था। मैंने कन्यापक्ष को कैंसर की सम्भावना स्पष्ट रूप से व्यक्त कर दी थी, लेकिन अन्य पण्डितों की राय पर (जो मुझसे सहमत न थे) विवाह सम्पन्न हो गया और विवाह के २ वर्ष के अन्दर ही जातक की मृत्यु हो गयी।

[२] पेट के कैंसर की एक रोगिणी।

२	३	४	६	७	१०	११
सू	बु	चं शु के	मं	वृ ल	रा	श

इस रोगिणी की आयु इस समय ५१ वर्ष है यह पेट के कैंसर से गत एक वर्ष से पीड़ित है, उपचार चल रहा है। इस जन्मपत्र में भी मंगल धनेश व सप्तमेश (मारकेश) होकर व्यय भाव में बुध की राशि का है।

[३] गले के कैंसर की रोगिणी।

२	४	५	६	७	८	११
के	वृ	सू मं बु शु	चं	श	रा	ल

यह महिला एक राज परिवार से सम्बन्धित है और गले के कैंसर से ग्रस्त है। इस कुण्डली में मंगल और बुध की युति है तथा मंगल तृतीयेश और बुध अष्टमेश (दोनों मारकेश) हैं।

[४] गले के कैंसर से मृत्यु

१	३	४	५	७	८	११	१२
चं	शु	सू बु	रा	श	वृ	मं के	ल

श्री सम्वत् १९८१ श्रावण कृष्ण ७ बुधेष्टम् ४२।५ (ल०प्र०भा०)। इस जातक की मृत्यु कैंसर से १९७७ में हुई। यहाँ मंगल द्वितीयेश (मारक) होकर शनि की राशि का व्यय में है और शनि व्ययेश एकादशेश होकर अष्टम (अल्पायु सूचक) है।

[५] रक्त कैंसर से मृत्यु।

२	६	७	८	१२
मं	रा ल सू शु	चं बु वृ	श	के

[जन्म १५/१०/१९५८]

इस कुण्डली में मंगल अष्टमेश तथा तृतीयेश (मारक) होकर नवम में है। शनि षष्ठश (रोगेश) होकर मंगल के घर का तृतीय है शनि महादशा मध्ये मंगल की अन्तर्दशा में मृत्यु।

यह कुण्डली एक आई० ए० एस० अधिकारी के पुत्र की है।

[६] लीवर कैंसर से मृत्यु।

[जन्म १–७–५५]

२	३	४	७	८	९	११
बु शु	सू के	मं वृ	श	चं	रा	ल

मंगल नीच का षष्ठ स्थान में कर्क राशि तथा नवमांश में परमनीच का है तृतीयेश (मारक) होकर रोग स्थान में है। नीचभंग नहीं है। चन्द्रमा भी मंगल के घर का नीच का है। इस जातक की मृत्यु २३/४/८० को २५ वर्ष की अल्पायु में हुई—उस समय मंगल की ही अन्तर्दशा थी। क्योंकि मंगल गुरु के साथ है, गुरु भी द्वितीयेश (मारक) है अत: यकृत कैंसर का कारण है।

[७] रक्त कैंसर से मृत्यु।

१	२	६	७	८	९	११	१२
के	मं	वृ	रा चं	श	ल	शु	सू बु

यह जन्म पत्र एक युवा इन्जीनियर एवं एक आई० ए० एस० अधिकारी के दामाद की है। इस जन्मपत्र में मंगल शुक्र के घर का (शत्रुक्षेत्री) रोगस्थान में है। अष्टमेश चन्द्रमा भी पापयुक्त एकादश है। शुक्र षष्टेश (रोगेश) तृतीय में है। मंगल व्ययेश होकर षष्ठ (मारक) है। शुक्र की अन्तर्दशा में मृत्यु।

चेतावनी

ज्योतिष की दृष्टि से ऐसे व्यक्तियों को जिनके जन्म पत्र में मंगल मारक स्थानों में स्थित हो, मारकेश हो, दूषित हो, उन्हें अपने भोजन, आचरण आदि में सावधानी रखनी चाहिए, ताकि वे इस महारोग से बच सकें। यद्यपि मंगल की उपरोक्त स्थिति में कैंसर होगा ही—यह कहना सही नहीं है लेकिन ऐसी स्थिति में कैंसर की सम्भावना अत्यधिक रहती है।

क्योंकि कर्कट रोग में मंगल की भूमिका मुख्य है अतः ऐसे जातक जिनके कुण्डली में मंगल नीच या शत्रुक्षेत्री होकर मारक स्थान से सम्बन्ध रखता हो उन्हें समय से 'मूंगा' धारण करना रक्षाकारक सिद्ध होगा।

पति-पत्नी का स्वरूप : ज्यौतिषीय परिकल्पना

प्राय: ज्योतिर्विदों से यह प्रश्न निरन्तर पूछा जाता है कि कन्या को पति कैसा मिलेगा या पुत्र को पत्नी कैसी मिलेगी। इस विषय पर ' ज्योतिष मकरन्द भाग-३'' में सामान्य सिद्धान्तों के अनुसार यह प्रतिपादित किया जा चुका है कि पति या पत्नी को कौन से व्यवसाय या सेवा से सम्बद्ध होना चाहिए और उसका स्वभाव रूप रंग आदि किस प्रकार का होना चाहिए। इसके अलावा महर्षि लोमश, गर्ग, यवनाचार्य आदि ने कुछ और मत भी प्रतिपादित किये हैं। जिनके आधार पर पत्नी या पति के विशेष गुणों, दोषों पर प्रकाश पड़ता है। ऐसे कुछ विशिष्ट योगों का प्रतिपादन यहाँ कर रहे हैं।

सुन्दर, सदाचारी, कलाकार

१—तुला या वृष का मंगल सप्तम हो।
२—वृश्चिक या मेष का शुक्र सप्तम हो।
३—धनु या मीन का बुध सप्तम हो।
४—मकर का चन्द्रमा सप्तम हो।
५—कुम्भ का सूर्य सप्तम हो।
६—मिथुन या कन्या का वृहस्पति सप्तम हो।
७—कर्क या सिंह का शनि सप्तम में हो।

विद्वान

१—मंगल धनु या कर्क का दशम में हो।
२—बुध कुंभ या वृष का दशम में हो।
३—वृहस्पति सिंह या वृश्चिक का दशम हो।
४—शुक्र मकर या मिथुन का दशम हो।
५—शनि कन्या या तुला का दशम हो।

६—सूर्य मेष का दशम हो।
७—चन्द्रमा मीन का दशम हो।

नपुंसक या बंध्या

१—मकर का सूर्य सप्तम हो।
२—कन्या या मेष का मंगल सप्तम हो।
३—मिथुन या कर्क का शनि सप्तम में हो।
४—क्षीण चन्द्रमा धनु का सप्तम हो।
५—पापयुक्त बुध वृश्चिक या कुम्भ का सप्तम में हो।
६—पूर्ण चन्द्रमा सिंह का सप्तम हो।
७—बुध कर्क या तुला का सप्तम हो।
८—मेष या मकर का वृहस्पति सप्तम हो।
९—मिथुन या वृश्चिक का शुक्र सप्तम हो।

क्रूर स्वभाव

१—सूर्य कन्या का चतुर्थ तुला का पंचम या मीन का दशम हो।
२—चन्द्र सिंह का चतुर्थ, कन्या का पंचम या कुम्भ का दशम हो।
३—बुध कर्क या तुला का चतुर्थ में, सिंह या वृश्चिक का पंचम अथवा मकर या मेष का दशम हो।
४—वृहस्पति मकर या मेष का चतुर्थ में, कुम्भ या वृष का पंचम अथवा कर्क या तुला का दशम हो।
५—शुक्र मिथुन या वृश्चिक का चतुर्थ, कर्क या धनु का पंचम, अथवा धनु या वृष का दशम हो।
६—मंगल वृष या धनु का चतुर्थ में, मिथुन या मकर का पंचम अथवा वृश्चिक या मिथुन का दशम हो।
७—शनि कुम्भ या मीन का चतुर्थ में, मीन या मेष का पंचम में अथवा सिंह या कन्या का दशम में स्थित हो।
८—क्षीण चन्द्रमा पापयुक्त सिंह का सप्तम हो।
९—मंगल वृष या धनु का सप्तम हो।
१०—सूर्य कन्या का सप्तम हो।
११—शनि कुम्भ या मीन का सप्तम हो।

निम्न योगों में भी पति (या पत्नी) क्रूर स्वभाव, घमण्डी, आज्ञा का उलंघनकारी प्राप्त हो।

१—सूर्य मीन का द्वितीय हो।

२—कुम्भ का चन्द्रमा द्वितीय हो।

३—मंगल वृहस्पति या मिथुन का द्वितीय हो।

४—बुध मकर या मेष का द्वितीय हो।

५—वृहस्पति कर्क या तुला का द्वितीय हो।

६—शुक्र धनु या वृष का द्वितीय हो।

७—शनि सिंह या कन्या का द्वितीय हो।

८—कन्या का सूर्य अष्टम हो।

९—सिंह का चन्द्र अष्टम हो।

१०—मंगल वृष या धनु का अष्टम हो।

११—बुध कर्क या तुला का अष्टम हो।

१२—शुक्र मिथुन या वृश्चिक का अष्टम हो।

१३—शनि कुम्भ या मीन का अष्टम हो।

सुनेत्र ,सुन्दर

१—कर्क का सूर्य लग्न म हो।

२—मिथुन का चन्द्रमा लग्न में हो।

३—मीन या तुला का मंगल लग्न मे हो।

४—बुध सिंह या वृष का लग्न में हो।

५—वृहस्पति कुम्भ या वृश्चिक का लग्न मे हो।

६—शुक्र मेष या कन्या का लग्न में हो।

७—शनि मकर या धनु का लग्न मे हो।

सम्बन्ध विच्छेद योग

यदि किसी जातक के निम्नांकित योग तो वह पत्नी तथा सन्तान (स्त्री के योग हो तो पति एवं सन्तान का) का त्याग कर सकते हैं और दूसरा सम्बन्ध बना सकते हैं।

१—कुम्भ का सूर्य दशम हो।

२—मंगल तुला या वृष का दशम हो।

३—शनि सिंह या कर्क का दशम हो।

४—पापग्रह के साथ बुध धनु या मीन का दसम हो ।

५—क्षीण चन्द्रमा मकर का दशम हो ।

देवर या साली से सम्बन्ध एवं कामुक योग

जन्म कुण्डली में निम्न योग होने पर जातक पुरुष हो तो साली से और स्त्री हो तो देवर से अनुचित सम्बन्ध होने की सम्भावना गर्ग जी ने व्यक्त की है—

१—धनु का सूर्य सप्तम में हो ।

२—सिंह या मीन का मंगल सप्तम हो ।

३—वृष या मिथुन का शनि सप्तम हो ।

४—पापग्रह युक्त बुध तुला या मकर का सप्तम हो ।

५—क्षीण चन्द्रमा वृश्चिक का सप्तम में हो ।

६—सूर्य मेष का तृतीय हो ।

७—चन्द्रमा मीन का तृतीय हो ।

८—धनु या कर्क का मंगल तृतीय हो ।

९—वृष या कुम्भ का बुध तृतीय हो ।

१०—सिंह या वृश्चिक का बृहस्पति तीसरे हो ।

११—मिथुन या मकर का शुक्र तीसरे हो ।

१२—शनि कन्या या तुला का तृतीय हो ।

मिष्ट भाषी सदाचारी

निम्न योगों में पति या पत्नी सदाचारी, सेवा भावी, मिष्ट भाषी प्राप्त हो । आचार्य मंत्रेश्वर के अनुसार लेकिन दाम्पत्य सुख दीर्घ कालीन नहीं होता । इस विषय में अन्यान्य योग भी देखने चाहिए—

१—नीच का सूर्य सप्तम हो ।

२—कन्या का चन्द्र सप्तम हो ।

३—सिंह या वृश्चिक का बुध सप्तम हो ।

४—मिथुन या मकर का मंगल सप्तम हो ।

५—कुम्भ या वृष का गुरू सप्तम हो ।

६—कर्क या धनु का शुक्र सप्तम हो ।

७—शनि मीन या मेष का सप्तम हो ।

अतिकामुक

१—कन्या का सूर्य सप्तम हो।
२—पापयुक्त क्षीण चन्द्रमा सिंह का सप्तम हो :
३—वृष या धनु का मंगल सप्तम हो।
४—पापयुक्त बुध कर्क या तुला का सप्तम हो।
५—पापयुक्त बृहस्पति मकर या मेष का सप्तम हो।
६—पापयुक्त शुक्र मिथुन या वृश्चिक का सप्तम हो।
७—मीन या कुंभ का शनि सप्तम हो।

आज्ञाकारी, पतिव्रता/पत्नीव्रती

१—सूर्य वृष का चतुर्थ या वृश्चिक का दशम हो।
२—चन्द्र मेष का चतुर्थ या तुला का दशम हो।
३—मंगल मकर या सिंह का चतुर्थ अथवा कर्क या कुंभ का दशम,
४—बुध मीन या मिथुन का चतुर्थ अथवा कन्या या धनु का दशम।
५—गुरू धनु या कन्या का चतुर्थ अथवा मिथुन या मीन का दशम।
६—शुक्र कर्क या कुंभ का चतुर्थ अथवा मकर या सिंह का दशम में हो।
७—शनि तुला या वृश्चिक का दशम अथवा मेष या वृष का दशम में हो।

रोगी और क्रोधी

जातक की कुण्डली में निम्न योग होने पर पत्नी या पति रोगी और क्रोधी मिले—

१—शनि धनु या मकर का षष्ठ हो।
२—सूर्य कर्क का षष्ठ हो।
३—चन्द्रमा मिथुन का षष्ठ हो।
४—बुध वृष या सिंह का षष्ठ हो।
५—मंगल मीन या तुला का षष्ठ हो।
६—बृहस्पति वृश्चिक या कुंभ का षष्ठ हो।
७—शुक्र मेष या कन्या का षष्ठ में हो।

यवनाचार्य के मत से जातक स्वयं भी क्षय रोगी हो सकता है।

दुश्चरित्र

महर्षि लोमश जी ने निम्न योग होने पर पति (या पत्नी) का दुश्चरित्र होना कहा है—

सिंह का सूर्य, कर्क का चन्द्रमा, मेष या वृश्चिक का मंगल, मिथुन या कन्या का बुध, धनु या मीन का गुरू, वृष या तुला का शुक्र अथवा मकर या कुम्भ का शनि अष्टम में हो। इस प्रकार १४ योग बनते है।

सुरूप, अतिसुन्दर

१—सूर्य मेष का सप्तम या वृष का अष्टम हो।

२—चन्द्रमा मीन का सप्तम या मेष का अष्टम हो।

३—मंगल धनु या कर्क का सप्तम में अथवा मकर या सिंह का अष्टम हो।

४—बुध कुंभ या वृष का सप्तम में अथवा मीन या मिथुन का अष्टम हो।

५—वृहस्पति सिंह या वृश्चिक का सप्तम में अथवा कन्या या धनु का अष्टम हो।

६—शुक्र मकर या मिथुन का सप्तम में अथवा कुम्भ या कर्क का अष्टम में हो।

७—शनि कन्या या तुला का सप्तम अथवा तुला या वृश्चिक का अष्टम में हो।

महर्षि गर्ग तथा यवनाचार्य ने निम्न योगों में भी सुन्दर, रूपवान पति/पत्नी प्राप्त होने को कहा है।

१—वृष का सूर्य सप्तम हो।

२—मेष का चन्द्र सप्तम हो।

३—मकर या सिंह का मंगल सप्तम हो।

४—मिथुन या मीन का बुध सप्तम हो।

५—धनु या कन्या का गुरू सप्तम हो।

६—कुम्भ या कर्क का शुक्र सप्तम हो।

७—तुला या वृश्चिक का शनि सप्तम हो।

मंगली योग और परिहार

जन्मलग्न से (या चन्द्रमा से १, ४, ७, ८, १२वें भाव में मंगल होने पर दाम्पत्य जीवन पर कुप्रभाव करता है और इसे मंगली योग भी कहा जाता है— यह बात तो विशुद्ध वैज्ञानिक है क्योंकि सप्तम (पति या पत्नी का भाव) अष्टम (दाम्पत्य सुख का भाव) लग्न, चतुर्थ द्वादश (इनमें से सप्तम भाव पर मंगल की पूर्णदृष्टि पड़ती है) में मंगल स्थित होने से दाम्पत्य सुख एवं दाम्पत्यजीवन में कुप्रभाव अवश्यम्भावी है। लेकिन क्या शनि, सूर्य, राहु केतु आदि (विशेषकर शनि) के उक्त भावों में स्थित होने से भी दाम्पत्य जीवन पर कुप्रभाव होगा ?

ज्योतिष के सार्वभौम सिद्धांतानुसार सप्तम अष्टम या लग्न में पापग्रह होने से अवश्य ही दाम्पत्य जीवन पर कुप्रभाव पड़ेगा और इसी आधार पर—

"शनिर्भौमो ऽथवा कश्चित् पापो वा तादृशोभवेत् ।
उद्वाहशुभद. प्रोक्तश्चिरायुर्पुत्र वर्धन: ।।"

ऐसा कहा गया है अर्थात मंगल का दोष दूसरे के जन्म पत्र में (पति या पत्नी के) तत्समान पापग्रह होने से शान्त हो जाता है, परिहार हो जाता है। जो उचित है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि ऋषि ने "पापो वा तादृशो" कहा है अर्थात तत्समान पापग्रह। लेकिन बाद में कुछ पण्डितों ने उक्त पद की पहली पंक्ति को ज्यों की त्यो ग्रहण कर बाद की पक्ति में ऐसा परिवर्तन कर डाला है जो बहुधा आधुनिक छपी कुछ पुस्तकों में मिलता है।

"शनिर्भौमो ऽथवा कश्चित् पापो व तादृशोभवेत् ।
ते तेषु भवनेष्वेव भौमदोष विनाश कृत् ।।"

यह श्लोक मौलिक नहीं लगता क्योंकि विज्ञानसम्मत नहीं है।

उदाहरण के रूप में लग्न (सप्तम पर पूर्णदृष्टि) सप्तम और अष्टम स्थित शनि का दाम्पत्य जीवन को कुप्रभावित करना विज्ञान सम्मत है लेकिन चतुर्थ और द्वादश शनि क्यों और कैसे कुप्रभावित करेगा ? (मंगल के समान शनि

की ४ व ८ में पूर्णदृष्टि तो होती नहीं है) जबकि शनि की ३ व १० में पूर्णदृष्टि है। अत: पंचम और दशमस्थित शनि (सप्तम में दृष्टिवश) दाम्पत्य जीवन में कुप्रभावकारी होगा न कि ४ या १२वें शनि। शास्त्रकार के 'पापो वा तादृशो०" का वास्तविक तात्पर्य भी यही है।

पाराशर मतानुसार :—

मंगल—१, ४, ७, ८, १२

शनि—१, ५, ७, ८, १०

सूर्य—१, ७, ८

राहु—१, ७, ८, ११

केतु—७, ८

भावों में दाम्पत्य जीवन पर कुप्रभाव डालते हैं। सभी पापग्रह मंगल के समान १, ४, ७, ८, १२ में कुप्रभावी नहीं हैं।

क्योंकि पाश्चात्य ज्योतिष में सभी ग्रहों की दृष्टि समान है भारतीय मत से प्रत्येक की भिन्न–भिन्न है अत: उनके सिद्धांतानुसार सभी पापग्रह १, ४, ७, ८, १२वें दाम्पत्य जीवन पर कुप्रभावी हो सकते हैं।

उदाहरण

इस दृष्टि से प्रत्यक्ष यदि देखा जाय तो पराशरमत युक्ति संगत प्रतीत होता है और पंचम तथा दशम भाव स्थित शनि का दाम्पत्य जीवन पर स्पष्ट कुप्रभाव अनुभव में आया है। पाठकगण यदि स्वयं भी इस बात को ध्यान में रखकर कुण्डली अनुशीलन करेंगे तो इस तथ्य को सत्य पायेंगे। यहाँ पर कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

१— दिनांक २८-६-५३—४/१० प्रात:।

इस कन्या का आज तक (३४ वर्ष) विवाह नहीं हो पाया है। पंचम में शनि बाधक है।

२—सम्वत् २०१३ भाद्रकृष्ण ६ सोमेष्टम् ५२/५५ ।

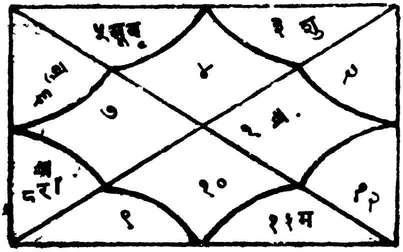

इसमें मंगल भी अष्टम है, साथ ही शनि भी पंचम है इस कन्या का भी आज तक (३१ वर्ष) विवाह नहीं हो पाया है।

३—सम्वत् १९९६ फाल्गुन शुक्ल ११ बुधे।

९	११	१२	१	४	६
ल	बु	सू	मं		
		बृ	शु	चं	रा.
		के	श		

इसका भी पंचम शनि बाधक है। इस कन्या का भी बिवाह नहीं हुआ, अभी ४८ वें वर्ष में है।

४—शाके १८१५ वृश्चिकार्क ७ सोमेष्टम् ७/२८

९	१२	२	६	७	८
ल०	चं	बृ	श	मं.	सू.
शु०	रा		क		बु

इस जातक के दो विवाह हुए पहली पत्नी विवाह के एक वर्ष के अन्दर ही दिवंगत हो गई थी। इसमें शनि दशम में है।

५—सम्वत् १९६० फाल्गुन शुक्ल १५ बुधेष्टम् ६/९

१	५	६	१०	११	१२
	चं	रा	श	सू	क
			शु	बु	मं

इसमें भी दशम शनि है। जातक के दो विवाह हुए। प्रथम पत्नी मात्र एक कन्या को जन्मदेकर स्वल्पायु में दिवंगत हुई।

६—सम्वत् १९७६, २८ सितम्बर, १९१९

८	२	४	५	६	७
रा	के	मं	श	सू	चं
ल.		बृ	शु	बु	

इसमें भी दशम शनि है। प्रथम पत्नी का स्वल्पायु में निधन हुआ, दो विवाह हुए।

७—अगस्त ४, १९०९

४	५	८	११	१२	१	२
ल	वृ	क	च	म	श	रा
सू	शु					
बु.						

इसमें भी शनि दशम है। दो विवाह नहीं हुए लेकिन स्वल्प काल में विधुर हो गये वर्तमान में विधुर जीवन जीरहे हैं। दाम्पत्यसुख नगण्य रहा।

पंचम व दशम शनि के बारे में अपने संग्रह से कुछ उदाहरण मैने प्रस्तुत किये हैं। लग्न, सप्तम व अष्टम शनि के तो सैकड़ों उदाहरण हैं और वह सर्वमान्य हैं अत: उनको यहाँ पर देना निरर्थक है। उपरोक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि पंचम व दशम का शनि दाम्पत्य सुख के प्रति प्रतिकूल फल सूचक है।

क्या गुरु की दृष्टि मंगली का परिहार है?

कुछ पुस्तकों मे एक सूत्र प्राप्त होता है कि यदि सप्तमभाव में मंगल हो और उस पर बृहस्पत्ति की दृष्टि हो तो मंगली दोष का परिहार हो जाता है :–

सप्तमस्थो यदाभौम: गुरुणा च निरीक्षित: ।
तदा तु सर्वं सौख्यस्यान्मंगली दोषनाशकृत् ।।

अर्थात् सप्तम में मंगल होने पर, उस मंगल पर बृहस्पति की दृष्टि हो तो मंगली दोष नहीं रह जाता। इस विषय पर दो बातें मुख्य विचारणीय हैं—

(१) क्या उपरोक्त श्लोक मूल रूप से प्रामाणिक है? या क्षेपक है और किसी व्यक्ति ने इसे बनाकर जोड़ किया है अर्थात् कल्पित है। क्योंकि मंगली का परिहार मंगली ही है— 'भौमतुल्यो यदा भौम: पापो वा तादृशोभवेत्'' गुरु की दृष्टि से उसका परिहार सिद्धान्तत: व्यावहारिक प्रतीत नहीं होता।

यह भी विचारणीय है कि प्राचीन मौलिक ग्रंथों में ''मंगली'' शब्द कहीं प्रयुक्त ही नहीं हुआ है, प्राचीन ग्रंथों में तो 'मंगली' निमित्त ''भौमदोष'' प्रयुक्त हुआ है। बास्तव में मंगली शब्द हिन्दी में प्रयुक्त होता है, उपरोक्त श्लोक में 'मंगली' शब्द का प्रयोग इसके कल्पित (क्षेपक) श्लोक होने का संकेत देता है।

(२) उपरोक्त श्लोक में केवल सप्तम में मंगल होने पर ही गुरु की दृष्टि होने पर मंगली दोष का परिहार कहा है। क्या जब मंगल १, ४, ८, १२वें होने से कोई मंगली हो उस पर गुरु की दृष्टि हो—तब क्या मंगली दोष का परिहार नहीं होगा? क्यों? यदि उपरोक्त योग सिद्धान्तत: सही है तो हर प्रकार के मंगली दोष का परिहार होना चाहिए।

अब देखना है इसका व्यावहारिक रूप। बहुधा ज्योतिर्विद अपने यजमान या ग्राहक की संतुष्टि के लिए इसी श्लोक का आधार लेकर मंगली लड़के या लड़की का विवाह बिना मंगली लड़के या लड़की से करने की अनुमति दे देते हैं, मैं समझता हूं यह उचित नहीं है। क्योंकि मेरे पास कुछ ऐसे उदाहरण है :—

[अ] श्रीमती सरोज गोस्वामी जन्म ८ दिसम्बर १९५१, प्रात: २/३०, मथुरा।

यह बालिका मंगली होते भी "मंगल पर बृहस्पति की दृष्टि है, अत: दोषकरक नहीं है" इसी आधार पर भौमदोष रहित लड़के से विवाह सम्पन्न करा दिया गया। समय के अनुसार १६ वर्ष में विवाह सम्पन्न हुआ और एक कन्या को जन्म देकर २० वर्ष की अल्पावस्था मे ही वैधव्य हो गया।

६	७	८	९	११	१२	५
मं श. ल	शु	भू	बु	रा	बृ चं	के

[ब] श्रीमती सावित्री श्री सम्वत् २०१३ पौष शुक्ल ५ रविवासरेष्टम् १२/१५।

इस कन्या का विवाह भी उपरोक्त बृहस्पति की दृष्टि होने के आधार पर ही बिना मंगली लड़के के साथ १९ वर्ष की आयु में विवाह सम्पन्न करा दिया गया। विवाह के समय लड़का स्वस्थ्य था। विवाह के दो वर्ष के अन्दर ही लड़के की रक्त कैंसर से मृत्यु होने पर वैधव्य प्राप्त हुआ।

१२	२	६	८	९	१०	११
मं ल	के	बृ	श शु रा	सू	बु	चं

[स] एक कुण्डली अभी कुछ दिन पहले मेरे पास प्रस्तुत की गयी थी। यह कुण्डली किसी कन्या की न होकर लड़के की है।

इस लड़के का विवाह भी उपरोक्त आधार पर ही बिना मंगली कन्या से ३/४ वर्ष पूर्व सम्पन्न करा दिया गया। तब कन्या स्वस्थ्य थी, इस समय कन्या

की आयु २८।२९ वर्ष है, एक कन्या भी जन्म ले चुकी है। इस समय इनकी पत्नी भयंकर रूप से रोगग्रस्त है और डाक्टरों ने मष्तिष्क का ट्यूमर बतलाया है, जिसकी शल्यक्रिया होनी है।

१२	१	५	६	७	८
ल	के चं	सू बु	मं बृ	शु रा.	श

अत ज्योतिर्विदों से अनुरोध है कि वह भौमदोष का परिहार देखते समय इस बात का ध्यान अवश्य रखें। भौमदोष का परिहार बृहस्पति की दृष्टि से होना—उक्त मत युक्तिसंगत नहीं प्रतीत होता। वर्तमान युग में इस विषय पर अधिक से अधिक अनुसंधान होना आवश्यक है।

आकस्मिक धन लाभ योग

ज्योतिषशास्त्र में "धन" से सम्बन्धित स्थान जन्मपत्र में मुख्यत: द्वितीय और एकादश हैं। इनमें द्वितीय स्थान संचित (जमा धन) धन को सूचित करता है और एकादशभाव धन की प्राप्ति (लाभ) का सूचक है। अकस्मात लाभ सूचक भाव भी एकादशभाव ही है। ग्रहों में धन का कारकग्रह बृहस्पति है इस प्रकार द्वितीय एकादशभाव और बृहस्पति यह तीन मुख्य धन के सूचक होते भी भाग्यभाव (क्योंकि भाग्यवान धनी होगा ही) और चतुर्थ भाव (अचल सम्पत्ति) भी धन से सम्बन्धित हैं। अत: लाटरी से धन लाभ या अन्य प्रकार से आकस्मिक लाभ मे इन्हीं का सम्बन्ध मुख्यत: होता है।

इस युग में अकस्मात धन लाभ का 'लाटरी' एक आकर्षण बन गया है, अपनी अन्य समस्याओं के बारे मे परामर्श लेते समय जनसाधारण अवश्य ही यह प्रश्न भी कर बैठता है कि क्या उनके भाग्य में भी 'लाटरी' से अकस्मात धन मिलने का योग है ? भाग्य में लाटरी से धन लाभ का योग चाहे हो या न हो लेकिन लाटरी का टिकट हर कोई खरीदता ही है लाटरी आये तो भला न आये तब एक रुपये में कोई हानि नहीं यह भी दान ही है। फिर भी हम उन योगों पर प्रकाश डालेंगे (जन्मपत्र के आधार पर) जिसमें लाटरी या अन्य माध्यमों से आकस्मिक धन प्राप्त होती है।

(१) लाभेश भाग्य में हो और भाग्येश लाभ में।
(२) लाभेश धन स्थान में हो और धनेश लाभ स्थान में।
(३) भाग्येश धन स्थान में हो और धनेश भाग्य में।
(४) धनेश और भाग्येश का योग (युति) पंचम, सप्तम द्वितीय, लग्न, चतुर्थ, दशम, एकादश या नवम स्थान में हो।
(५) धनेश लाभेश की युति उपरोक्त स्थानों में हो।
(६) लाभेश की युति उपरोक्त स्थानों में हो।
(७) भाग्येश भाग्यभाव में स्वगृही हो, नवमांश तथा षट्वर्ग में भी बलवान हो।
(८) भाग्य स्थान में कोई ग्रह उच्च का हो, नवमांश में भी बलवान हो।

(९) सप्तमेश उच्च या स्वगृही होकर लाभेश से पंचम, द्वितीय, लग्न चतुर्थ, दशम, एकादश या नवम स्थान में युति करे।

(१०) सप्तमेश उच्च आदि बली होकर धनेश से उपरोक्त स्थानों में युति करे।

(११) सप्तमेश उच्च आदि का होकर भाग्येश से उपरोक्त स्थानों में युति करे।

(१२) बलवान (उच्च या स्वगृही) सप्तमेश का धनेश, लाभेश या भाग्येश से स्थान सम्बन्ध हो।—जैसे :—

(अ) सप्तमेश धन स्थान में धनेश सप्तम।

(आ) सप्तमेश लाभ में लाभेश सप्तम में।

(इ) सप्तमेश भाग्य में भाग्येश सप्तम।

(१३) समस्त ग्रह भाग्य से धन भाव के बीच ही में पड़े हों।

(१४) बलवान् (उच्च या स्वगृही) धनेश लग्न में और लग्नेश धन स्थान में हो।

(१५) भाग्य, लाभ या धन स्थान में उच्च या स्वगृही का सूर्य हो उस पर शनि की पूर्ण दृष्टि हो।

(१६) भाग्येश, धनेश या लाभेश उच्च का अथवा स्वक्षेत्री होकर सप्तम में हो। नवांश में भी बली हो।

लाभ कब

धन लाभ का योग बनने पर प्रश्न उठता है, लाभ कब किस आयु में होगा ? एतदर्थ योग कारक ग्रहों-योग कारक ग्रह जिस ग्रह के नवमांश में हो— उन ग्रहों की दशा-अन्तर्दशा-प्रत्यन्तर में लाभ होगा।

उदाहरण–१ (योग–१)

एक कुण्डली इस प्रकार है—मीन लग्न-भाग्येश मंगल मकर राशि (मकर नवांश) का लाभ में और लाभेश शनि वृश्चिक राशि (तुला नवांश) का भाग्य में है। इस कुण्डली में—

(अ) लाभेश शनि

(आ) भाग्येश मंगल यह दो प्रधान योग कारक हैं अत: मंगल की दशा मध्ये शनि अन्तर मंगल के प्रत्यन्तर में अथवा शनिदशा मध्ये मंगल का अन्तर शनि का प्रत्यन्तर लाभ देगा।

उदाहरण–२ (योग –७)

एक कुण्डली में सिंह का सूर्य भाग्य में मेष के नवांश में है। यहाँ पर

(अ) भाग्येश – सूर्य

(आ) सूर्य का नवांशेश मंगल

उदाहरण – ३ (योग - १६)

इस कुण्डली में भाग्येश शुक्र मीन का सप्तम भाव में (मीन ही के नवांश का वर्गोत्तम) है। अतः यहाँ—

(अ) भाग्येश शुक्र

(आ) शुक्र का नवांशेश गुरु—यह दो योग कारक हैं। इसलिए – शुक्र दशा में गुरु अन्तर शुक्र का प्रत्यन्तर अथवा गुरु दशा में शुक्र का अन्तर गुरु का प्रत्यन्तर आने पर लाभ होगा।

सामान्यतः लाभ का योग बनने पर दूसरे समय भी लाभ हो सकता है, किन्तु उपरोक्त समय में लाभ निश्चित है।

एक लाटरी विजेता की कुण्डली

यह एक लाटरी विजेता का जन्मपत्र है जिसे २०,००० रुपये लाटरी में मिले। जातक उ० प्र० शासन की सेवा में एक मध्यमवर्गीय पद पर है इतनी

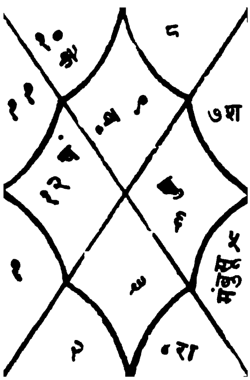

अच्छी जन्मपत्र देकर पहले मुझे सन्देह हुआ कि इस साधारण व्यक्ति की क्या ऐसी जन्मपत्र हो सकती है? लेकिन लाटरी विजेता होने पर पुष्टि होती है कि जन्म पत्र सही है। इस कुण्डली में योग संख्या ७।१।१५ सटीक बैठते हैं। बलवान योग न होने से केवल रु० २०००० की प्राप्ति हुई।

जन्म दिनांक ५ सितम्बर १९२५ इष्टकाल २२।५४। लाटरी से धन प्राप्ति के समय जातक को शनि की अन्तर्दशा थी जो धनेश होकर लाभस्थान में उच्च का है।

अतः हम यह भी कह सकते हैं कि इस लाटरी का योग कारक शनि है। इस प्रकार यदि धनेश बलवान (उच्च आदि) होकर लाभ में हो तो वह भी लाटरी आदि से अकस्मात धनदाता होता है।

ज्यौतिष द्वारा व्यवसाय निर्धारण : कुछ योग

मनुष्य क्या व्यवसाय करेगा अथवा किस व्यक्ति को कौन सा व्यवसाय लाभदायक व सफलताप्रद होगा, इसका निर्धारण ज्यौतिष शास्त्र में किया गया है। इस सम्बन्ध में अनेक सिद्धान्त है अनेक प्रकार से विचार किया जाता है। यहां पर केवल कुछ योग दे रहे है।

शिल्प शिक्षा विद्योग

महर्षि लोमश के अनुसार निम्न योगों में से किसी योग के होने पर जातक हस्तकला एवं शिल्पशास्त्र का विद्वान होता है—

(१) कर्क का सूर्य व्यय में या मीन का सूर्य अष्टम हो।

(२) मिथुन का चन्द्र व्यय में या कुंभ का चन्द्र अष्टम हो।

(३) मंगल मीन या तुला का व्यय में हो, अथवा वृश्चिक या मिथुन का अष्टम में हो।

(४) बुध वृष या सिंह का व्यय में हो, अथवा मकर या मेष का अष्टम हो।

(५) बृहस्पति वृश्चिक या कुंभ का व्यय में हो, अथवा कर्क या तुला का अष्टम हो।

(६) शुक्र मेष या कन्याका व्यय में हो, अथवा धनु या वृष का अष्टम हो।

(७) शनि धनु या मकर का व्यय में हो, अथवा सिंह या कन्या अष्टम मे हो।

इस प्रकार से कुल २४ योग बनते हैं। वास्तव में यह योग कहां तक घटित होते हैं, यह अनुसंधान एवं परिक्षण का विषय है। कुछ इन्जीनियरों की कुण्डली जो मेरे संग्रह में हैं उनमें यह योग घटित होते हैं।

वैद्य (चिकित्सक) योग

महर्षि लोमश जी ने निम्म योगों में से किसी योग के होने पर "वैद्य" का योग कहा है। वैद्य का तात्पर्य यद्यपि आयुर्वेद चिकित्सक से है लेकिन यदि व्यापक दृष्टिकोणों से देखा जाय तो प्रत्येक चिकित्सक को, भले ही वह किसी

पद्धति का चिकित्सा का ज्ञाता हो 'वैद्य" कहा जा सकता है। इन योगों वाले जातक कहां तक चिकित्सा के क्षेत्र में जाते हैं—यह परिक्षण का विषय है, लेकिन यह योग सही घटित पाया गया तो इससे जातक को किस क्षेत्र में शिक्षा दी जाय, वह किस क्षेत्र में सफल रहेगा, इसका भी निर्धारण हो सकता है—इस दृष्टि से यह योग अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकते है।

(१) मकर का सूर्य सप्तम हो।
(२) धनु का चन्द्र सप्तम हो।
(३) कन्या या मेष का मंगल सप्तम हो।
(४) वृश्चिक या कुंभ का बुध सप्तम हो।
(५) वृष या सिंह का गुरु सप्तम हो।
(६) मीन या तुला का शुक्र सप्तम हो।
(७) मिथुन या कर्क का शनि सप्तम हो।

इस प्रकार कुल योग १२ बनते हैं। ज्योतिषशास्त्र में व्यवसाय या आजीविका का विचार मुख्यत: दशम से होता है। सप्तम से व्यापार का विचार होता है। उपरोक्त योगों में ग्रंथकार ने सप्तम भाव से ही सम्बन्ध दिखलाया है।

बहुविद्याविद्

जन्म कुण्डली में निम्न योग होने पर जातक असाधारण प्रतिभाशाली तथा विद्वान होता है, अनेक शास्त्रों का ज्ञान होता है। महर्षि लोमश, गर्ग, यवनाचार्य आदि सभी ने इस योग को शुभ एवं महत्वपूर्ण माना है—

(१) सूर्य धनु का नवम हो।
(२) चन्द्र वृश्चिक का नवम हो।
(३) मंगल सिंह या मीन का नवम हो।
(४) बुध तुला या मकर का नवम हो।
(५) गुरु मेष या कर्क का नवम हो।
(६) शुक्र कन्या या कुंभ का नवम हो।
(७) शनि वृष या मिथुन का नवम हो।

इस प्रकार कुल १२ योग बनते हैं।

कवि

कवित्व के निमित्त शुक्र को कारक ग्रह माना गया है, तदनुसार सामान्यत: धनस्थान या पंचम में बली शुक्र हो तो कवित्व शक्ति होती है, ऐसा विद्वानों

का कथन है। महर्षि लोमश जी ने निम्न योगों को कवित्व शक्ति का सूचक माना है—

(१) वृश्चिक का सूर्य लग्न में हो।
(२) तुला का चन्द्र लग्न में हो।
(३) कर्क या कुंभ का मंगल लग्न में हो।
(४) कन्या या धनु का बुध लग्न में हो।
(५) मीन या मिथुन का गुरु लग्न में हो।
(६) सिंह या मकर का शुक्र लग्न में हो।
(७) मेष या वृष का शनि लग्न में हो।

महर्षि लोमश जी के मतानुसार ही निम्न योग विद्यमान होने पर भी जातक विद्वान, कवि और यशस्वी होता है—

(१) सिंह का सूर्य एकादश हो।
(२) कर्क का चन्द्र एकादश हो।
(३) मेष या वृश्चिक का मंगल एकादश हो।
(४) मिथुन व कन्या का बुध एकादश हो।
(५) धनु या मीन का गुरु एकादश हो।
(६) वृष या तुला का शुक्र एकादश हो।
(७) मकर या कुंभ का शनि एकादश हो।

धनुर्विद्या (शस्त्रविद्या) विशारद

आचार्य गर्ग के मतानुसार जन्म कुण्डली में निम्न योग होने से जातक शस्त्रविद्या में निपुण होता है :—

(१) कन्या का सूर्य लग्न में हो।
(२) सिंह का चन्द्र लग्न में हो।
(३) वृष या धनु का मंगल लग्न में हो।
(४) कर्क या तुला का बुध लग्न में हो।
(५) मकर या मेष का गुरु लग्न में हो।
(६) मिथुन या वृश्चिक का शुक्र लग्न में हो।
(७) कुंभ या मीन का शनि लग्न में हो।

वस्त्र व्यवसाय

महर्षि लोमश जी के मतानुसार जन्म कुण्डली में निम्न योग होने पर जातक

वस्त्र सम्बन्धी व्यवसाय करता है, अथवा यों कहें कि उसे वस्त्र सम्बंधी व्यवसाय हितकर होगा : —

(१) मकर का सूर्य द्वादश हो।
(२) धनु का चन्द्र द्वादश हो।
(३) कन्या या मेष का मंगल द्वादश हो।
(४) वृश्चिक या कुम्भ का बुध द्वादश हो।
(५) वृष या सिंह का गुरु द्वादश हो।
(६) शुक्र मीन या तुला का द्वादश हो।
(७) मिथुन या कर्क का शनि द्वादश हो।

राशि के अनुसार व्यवसाय का चुनाव

सभी व्यक्ति, सभी व्यापार में सफल नहीं होते। भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की रुचि भी भिन्न भिन्न होती है। कौन से व्यक्ति की अभिरुचि कैसी है, किस क्षेत्र में उसकी योग्यता अनुकूल है, कौन का व्यवसाय और कौन सा वस्तु का व्यवसाय या किस विभाग में सेवा उसके लिये अधिक लाभकर व उन्नतिकर रहेगी, बच्चे को किस प्रकार की शिक्षा, कौन से विषय की दी जाय आदि—इसे जानने के ज्यौतिष में अनेक प्रकार से विस्तार से वर्णन एवं विचार है। जन्म कुण्डली से इसका विचार सूक्ष्म व सर्वांगपूर्ण हो सकता है, ताकि सभी सिद्धांतों एवं दृष्टिकोणों से विचार हो सके।

यहां पर हम केवल जन्म राशि के आधार पर—किस राशि के व्यक्ति को कौन सा व्यापार या कार्य अनुकूल हो सकता है इसका संक्षिप्त विवरण दे रहे हैं।

मेष राशि के व्यवसाय—सर्वेक्षण, प्रशासन, बांध निर्माण, वन, विद्युत, सेना आदि रक्षा कार्य कृषि, वस्त्र अनाज विशेषकर गेहूं, मसूर आदि लाल रंग के अनाज, ऊन, सरसों, दालें, औषधियाँ तांबा मिश्रित धातु तथा खनिज तेल आदि।

वृष राशि के व्यवसाय—पशुपालन, मुर्गीपालन, डेरी उद्योग, अनाज, उत्पादन एवं भण्डारण का कार्य, खेती-बागवानी, फल-फूल, चावल, शक्कर-खाण्ड गुड़ घी तेल आदि रस पदार्थ दूध सफेद कपड़ा सूत जूट रुई इत्यादि।

मिथुन राशि के व्यवसाय—हास्य अभिनय, कार्टूनिस्ट, गणितज्ञ, ज्वार, बाजरा, कपास, कस्तूरी, जूट, मूंगफली, हल्दी, बिनौला मोठ नर्तक पत्रकारिता

कागज, शिल्पकला, सम्पादन क्लर्क अथवा स्टेनो, वह वस्तुएं जो मनोरंजक यात्राओं में क्रय की गयी हों। विख्यात फिल्म व खेल, दूरदर्शन कलाकार, अनुसंधाता, प्राध्यापक, पायलट आदि।

कर्क राशि के व्यवसाय—फल, किराने का सामान, उत्तम अन्न, चाय, मूल्यवान पदार्थ जैसे चांदी, पारा, जल सम्बन्धी कार्य जैसे नौसेना, माल का प्रेषण, डाक्टर, राजनीतिक, सैनिक इत्यादि।

सिंह राशि के व्यवसाय—शिकारी, सफल कलाकार अथवा अभिनेता, मैनेजर, क्लर्क, वनों से सम्बन्धित व्यवसाय, वकील, सैनिक अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के लेखक, केमिस्ट, भाषाशास्त्री, अन्न, रस पदार्थ, चमड़ा, गुड़, खाण्ड, पीतल, सोना, चना, प्रशासन, नाटककार घरेलू सजावट का सामान इत्यादि।

कन्या राशि के व्यवसाय—व्यापारी, गणितज्ञ अध्यापक, बिचौलिये, साहित्यकार स्टेनो, खजांची सेल्समैन, मनोवैज्ञानिक, चिकित्सक, गायन-वादन, ठग, जेबकतरे, व्यंगकार, गणितज्ञ, मूंग, मोठ, अलसी, सरसों, मटर, ज्वार, जौ, रूई, हस्तशिल्प की वस्तुयें आदि।

तुला राशि के व्यवसाय—तिल, वस्त्र, अनाज जैसे—गेहूँ, अरहर, रुई, अरण्डी, चना, चावल आदि विश्लेषक, रेशम, विशिष्ट, धातुओं, रत्न विज्ञान, धर्मशास्त्री, दर्शनशास्त्र, नीतिशास्त्र, तर्कशास्त्री, वकील, कवि, जल सैनिक, न्यायाधीश, साहित्य, व्यापार, वायु सम्बन्धी विज्ञान, कलाकार।

वृश्चिक राशि के व्यवसाय—लोहा गुड़, शक्कर, औषधि, तेल, सुपारी, रुई, सरसो, व मादक जहरीली वस्तुओं, अनुसंधान खनिज, गन्ना इत्र, अभिनय जासूसी एवं तस्करी, केमिस्ट, सर्जन, राजनीतिज्ञ, भूगोल, इन्द्रजालिक, लेखक, वैद्य, इन्जीनियरिंग दाई, पुलिस, सेना, ठग आदि।

धनु राशि के व्यवसाय—अश्व, वाहन, नमक, हल्दी, मूंगफली, आलू, अन्न, वस्त्र, रबड़ चर्बी, बीमा, कागज, समुद्र के गर्भ में पायी जाने वाली बहुमूल्य वस्तुयें औषधि विज्ञान, लेखक, वकील, राजनीतिज्ञ, व्यवसायी, प्रोफेसर, खेल, दार्शनिक, कथाकार, महन्त, सन्यासी, उपदेशक आदि।

मकर राशि के व्यवसाय—व्यापार रंगमंच, राजनीति, अधिकारी, सेना विशेषज्ञ, गुप्तचर, चोर, मजदूर, कृषि, खनिज, क्लर्क, संगणक, रेल, वायुयान, काली खाद्य वस्तुयें, सोना, लोहा, सीसा, जस्ता, टीन, कोयला गन्ना।

कुम्भ राशि के व्यवसाय—कमल, फल, शंख-सीपी, कोयला, समुद्र, बाँध, तैराकी, मदिरा, जुआं, तेल, तिल, लोहा, सिल्क, नाइलोन, मशीनरी, विद्युतीय सामान, घरेलू भौतिक उपकरण, वाणिज्य, व्यवसाय, हस्तकला, वैश्या, पायलट, पेट्रोल, काली उरद, अचल सम्पत्ति, क्रान्तिकारी, वैज्ञानिक अध्यापक शोधकर्ता अभियंता आदि।

मीन राशि के व्यवसाय—मछली, जवाहरात, मोती, हीरा, गोरोचन, मत्स्य मदिरा, वस्त्र, शयनकक्ष उपकरण, चलचित्र, काव्य, जहाज, मोती, सिंघाड़ा, आयात-निर्यात, मनोरंजन, वैज्ञानिक, सांस्कृतिक कार्य, एकाउन्टेंट, फाइनेंसर, केमिस्ट, डाक्टर, समुद्र में उत्पन्न पदार्थ, वस्त्र, समाज-सुधारक व हास्य एवं व्यंग लेखक, पी० डब्ल्यू० डी०, जल विभाग।

⊛

गुरु अथवा शुक्रास्त में विवाहादि मंगल कार्यों का पूर्ण निषेध नहीं है

जब गुरु और शुक्र दोनों एक साथ अस्त हों तब सर्वथा शुभ कार्य वर्जित माने गये हैं लेकिन गुरु अथवा शुक्र के अकेले अस्त होने पर भी क्या विवाहादि मंगल कार्यों का पूर्ण निषेध है ? गहन अध्ययन से यह सिद्ध है कि अकेले गुरु या शुक्र के अस्त रहने पर भी विवाहादि काय सम्पन्न किये जा सकते हैं। अस्त का तात्पर्य है कि सूर्योदय के समय ही अस्त व उदय होने से सम्बन्धित ग्रह का रात्रि में दृष्टिगोचर न होना।

खेद एवं लज्जा का विषय है कि हमें महर्षि गर्ग, नारद, लल्ल, आदि-मानव मनु, शौनक, व्यास, बृहस्पति जैसे ज्योतिष शास्त्र के जन्मदाताओं, धर्माचार्यों के वचनों का भी स्मरण नहीं रहा ? हमारा यह दुर्भाग्य है कि आचार्य वराहमिहिर [५७ वर्ष ईसा पूर्व] के बाद भारत में इस विषय पर कोई अनुसंधान एवं चिन्तन हुआ हो नहीं। वर्तमान परिस्थिति यह है कि कुछ ज्योतिर्विदों का ज्ञान 'मुहूर्त चिन्तामणि' के "अस्ते वर्ज्यं०" तक ही सीमित है।

गुरु-शुक्र के अस्त में दोष है ही नहीं

प्रयोग पारिजात, ज्योतिर्निबन्ध आदि
ने स्पष्ट रूप में लिखा है कि बृहस्पति
[य हो तो विवाहादि मंगल कार्य हो सकते
[हीं रहे हों तब किसी प्रकार के दोष या

[द ।

[ा ॥

[ार्क—काशिकाटीका, गर्ग

द्वयोरस्तमये दोषो नास्ति शुक्रोदयोयदि ।
द्वयोरस्तमय: स्यान्चेदपवादैर्नभिद्यते ।।

—काल प्रकाशिका

यद्येकस्यापिमूढत्वे शुभ कर्म न दोषकृत् ।
द्वयोर्मूढत्व मेवोक्तं दोषत्वं गुरु शुक्रयो: ।।

—लल्ल: (प्रयोगपारिजाते)

व्यवहार चिन्तामणि, व्यवहार चण्डेश्वर, काशीखण्ड आदि ग्रंथों के अनुसार अंगदेश, बंगाल मगध तथा काशी में गुरु या शुक्र के अस्त का विचार नहीं है—"बंगे बंगे न शुक्रास्तो गुर्वस्तो नैव मागधे ।
न ग्रहास्तोदय कृतो दोषो विश्वेश्वरालये"
मगधाख्ये विवाहादौ गुर्वस्तो नैव दोषकृत् । इत्यादि ।

वास्तव में यदि देखा जाय तो शुक्रास्त का दोष है ही नहीं क्योंकि शास्त्रों में द्विजातियों (सवर्णों) तथा संकीर्ण जातियों—सभी को विवाहादि कार्य करने की अनुमति है । यदि दूसरा विवाह है तो उसकी भी स्पष्ट अनुमति है—

द्विजन्मादि शुभे कार्ये शुक्रमौढ्यं न दोषकृत् ।
यदास्तमायादि गुरुर्भृगुर्वा—संकीर्ण जातेस्तु शुभावहानि ।
न शुक्रस्तादिकं चिन्त्यं शुद्धिवेधादिकं तथा ।।

उपरोक्त तथ्यों को देखते हुए अकेले बृहस्पति या शुक्र के अस्त में कहीं कोई निषेध है ही नहीं ।

गुरु या शुक्रास्त का विचार अनावश्यक

ज्योतिष तथा धर्मशास्त्र के आचार्यों, नारद आदि महर्षियों के मत से केवल "लग्नशुद्धि ताराशुद्धि और चन्द्रशुद्धि" का विचार आवश्यक है. गुरु या शुक्र के अस्त का विचार आवश्यक नहीं है ।

इसके समर्थन में सैकड़ों प्रमाण हैं । अन्धविश्वासी एवं रूढ़िवादी ज्योतिषियों को फटकारते हुए महर्षि नारद कहते हैं कि—"लड़की को ग्यारहवां वर्ष शुरू हो गया है और यह ज्योतिषी कहता है कि बृहस्पति बलहीन है, सूर्य अशुभ है—अरे, यह ज्योतिषी नहीं ब्रह्महत्यारा है ।"

"गुरु रबलो रविरशुभ: प्राप्ते एकादशाब्दया कन्या ।
गणयति गणक विमूढ: स गणको ब्रह्महाभवति ।।"

बृहद्दैवज्ञ रंजन, राजमार्तण्ड आदि प्राचीन एवं सुप्रसिद्ध ग्रंथों में देवगुरु आचार्य बृहस्पति आदि के वचनों का संग्रह है । तदनुसार :—

कंटके समये याते राजदुर्भिक्ष पीड़िते ।
समूलतूल यात्रायां शुक्र दोषो न विद्यते ।।

आवश्यकेषु कार्येषु राज्ञांत्कर्म चारिणाम् ।
विवाहादीनिकुर्वीत मौढ्येऽपि गुरु शुक्रयो ।।

—बृहस्पति:

राजग्रस्ते तथा युद्धे पितृणां प्राणसंशये ।
अति प्रौढ़ा तु या कन्या न तु कालं प्रतीक्षते ।।

—नारद:

कहीं स्थानान्तरण होने को हो, दूरदेश यात्रा करनी हो, अकाल पड़ा हो, कोई दुर्घटना हुई हो, माता-पिता, दादा दादी, नाना नानी आदि किसी की मृत्यु की सम्भावना हो, देश में युद्ध का भय हो, आन्तरिक अशान्ति या उपद्रव हो रहे हों, सत्ता परिवर्तन आदि का भय हो, कन्या की आयु दस वर्ष से ऊपर हो, राजाओं तथा राज कर्मचारियों—जिन्हें अपनी आवश्यक सेवाओं में कारण समय या सुविधायें मिलने में कठिनाई होती है—इन सभी परिस्थितियों के गुरु वा शुक्रास्त में विवाहादि कार्य दोष रहित हैं ।

स्मृतिसार समुच्चय आदि के अनुसार तो विशेष परिस्थितियों में गुरु व शुक्र दोनों के एक साथ अस्त होने पर भी जप दानादि से विवाहादि कार्य हो सकते हैं ।

वास्तव में तीन प्रकार के समय कहे जाते हैं—शुद्ध एवं श्रेष्ठ, मध्यम एवं ग्राह्य तथा निषिद्ध इनमें शुद्ध समय तो शुद्ध है ही । निषिद्ध समय सर्वथा दोष-पूर्ण माना जाता है, उसमें शुभ कार्य नहीं हो सकते । मध्यम समय इन दोनों के बीच एक ऐसा समय है जो न तो उत्तम है और न वर्जित है—ऐसा समय ग्राह्य माना गया है जिसमें शुभ कार्य किये जा सकते हैं ।

सम्वत् २०३३ के निर्णय

गुरु शुक्रास्त के विषय प्रायः आते रहते हैं । सर्वप्रथम सम्वत् २०३३ में मेरी अध्यक्षता में भारतीय ज्योतिर्विद सम्मेलन के तत्वावधान में इस पर निर्णय हुआ था, जिसमें जगद्गुरु श्री शंकराचार्य सहित भारत के शीर्षस्थ धर्माचार्यों व पंचांगकारों ने "गुरु या शुक्र के अस्त में विवाहादि मंगल कार्य हो सकते हैं" ऐसा निर्णय दिया था और ११ ग्यारह पंचांगों ने गुरु शुक्रास्त में विवाह प्रारम्भ किये

थे एवं ७ सात अन्य पंचांगकारों ने भी बाद में यह संशोधन स्वीकार किये थे। तदनुसार सम्वत् २०३३ से गुरु या शुक्रास्त में विवाहादि कार्य होते रहे हैं।

काशी के विद्वानों के दो संगठनों काशी ज्योतिर्विद्समिति' और "भारतीय कर्मकाण्ड मण्डल" ने गुरु-शुक्रास्त में विवाहादि कार्य करने की व्यवस्था दी थी। काशी के ही एक अन्य संगठन 'काशी विद्वत्परिषद' ने भी ब्राह्म, दैव, आर्ष और प्राजापत्य विवाहों को छोड़कर अन्य विवाहादि करने का औचित्य स्वीकार किया। ज्ञातव्य है कि उक्त चारों विवाहों में कन्या की आयु १० वर्ष से कम होनी चाहिए—जो वर्तमान समय में कानूनन अपराध है अत: आजकल के विवाह उक्त श्रेणी में आते ही नहीं हैं।

आदि मानव 'मनु' ने तो वर्तमान परिपेक्ष में "विवाह सार्वकालिक:" अर्थात् विवाह किसी भी समय किया जा सकता है—तक कह दिया है।

कुछ विषय के अनभिज्ञों द्वारा व्यक्तिगत स्वार्थ हेतु ऐसा मिथ्या प्रचार किया जाता रहा है कि उपरोक्त जो प्रमाण दिये गये हैं, वे श्लोक मिथ्या हैं लेकिन विद्वज्जन एवं जनसाधारण को यह ज्ञात होगा कि यह श्लोक यह प्रमाण पुस्तकों में छपे हैं और यह पुस्तकें आज की छपी नहीं, सौ-डेढ़ सौ वर्ष पहले की छपी हैं।

इन तथ्यों को देखने के बाद भी यदि कोई व्यक्ति इन महर्षियों व जगद्गुरु श्री शंकराचार्य आदि को धता बताकर अपने को इनसे ऊपर मानता है तो यही कहना पड़ेगा कि उसका मानसिक संतुलन सही नहीं है।*

सन्तान प्रतिबन्धक योग

बहुत से बच्चों के ग्रहयोग स्वयं तो अपने स्वास्थ्य व आयु को अच्छे होते हैं लेकिन इसके बावजूद वे बाल्यारिष्ट से अल्पायु में ही नाश को प्राप्त हो जाते हैं। बारह वर्ष की आयु तक बच्चे के ऊपर माता-पिता के ग्रहों का भी प्रभाव रहता है अत: यदि माता-पिता के ग्रहयोग सन्तान के हेतु कष्टप्रद हुए तो स्वयं का आयु योग अच्छा होते भी शिशु को अरिष्ट भय रहता है।

ज्योतिष के विभिन्न ग्रंथकारों, महर्षियों ने इन योगों का वर्णन किया है, उनमे से कुछ योगों का वर्णन हम यहाँ कर रहे हैं। जो योग हम यहाँ वर्णित कर रहे हैं, उनके अलावा और भी बहुत से ऐसे योग हैं। ज्योतिष के मान्य सिद्धान्तों के अनुसार -

[१] पंचमेश का ६ ८ १२वें होना।

[२] षष्ठेश, अष्टमेश, व्ययेश का पँचम होना।

[३] पंचम में पापग्रह की युति या दृष्टि होना।

[४] पंचमेश की पँचम पर दृष्टि न होना।

[५] पंचमेश नीच, अस्त, पापयुक्त एवम् दुर्बल होना—यह योग सन्तान सुख में बाधक माने जाते हैं।

अध्येताओं को ज्योतिषशास्त्र के प्राचीन एवम् मौलिक ग्रंथों का अध्ययन करना चाहिए। आचार्य लोमश जी ने 'लोमश' संहिता' में १७६ योग दिये हैं।

प्रथम सन्तति को अरिष्टयोग

यदि मां या पिता की जन्म कुण्डली में निम्न योग हों तो उनकी प्रथम सन्तति (प्रथम गर्भ) को अरिष्टकारी होता है—

(१) धनु का सूर्य पँचम हो।

(२) वृश्चिक का चन्द्र पँचम हो।

(३) सिंह या मीन राशि में मंगल पँचम हो।

(४) मकर या तुला का बुध पँचम हो।

(५) कन्या या कुंभ का शुक्र पँचम हो।

(६) कर्क या मेष का गुरु पँचम हो।

(७) वृष या मिथुन का शनि पँचम हो।

इस प्रकार कुल बारह योग बनते हैं। —महर्षि लोमश

पुत्र सुख प्रतिबन्धक योग

निम्न योग विद्यमान होने पर पुत्र सुख में प्रतिबन्ध (बाधा) होता है। या तो पुत्र न हो, अथवा पुत्र को अरिष्ट हो। लेकिन कन्या सन्तति पर कुप्रभाव नहीं होगा—

(१) धनभाव में कोई भी ग्रह अपनी स्वराशि का हो। जैसे सिंह का सूर्य धनभाव में हो, कर्क का चन्द्रमा, मेष या वृश्चिक का मंगल, मिथुन या कन्या का बुध, धनु या मीन का गुरु, वृष या तुला का शुक्र और मकर या कुम्भ का शनि। इसमें भी बारह योग बनते हैं।

—महर्षि लोमश

सन्तान (विशेषकर पुत्र) सुख प्रतिबन्धक योग

(क) निम्न योग कुण्डली में होने से पुत्र सन्तान होने या उसके दीर्घायु होने में शंका जाननी चाहिए—

निम्न प्रकार बारह योग बनते है।

(१) मेष का सूर्य दशम हो।

(२) मीन का चन्द्र दशम हो।

(३) धनु या कर्क का मंगल दशम हो।

(४) कुंभ या वृष का बुध दशम हो।

(५) सिंह या वृश्चिक का गुरु दशम हो।

(६) मकर या मिथुन का शुक्र दशम हो।

(७) कन्या या तुला का शनि दशम हो।

(आ) पचम में पंचमेश स्वगृही होकर स्थिति हो। यथा कर्क का चन्द्र, सिंह का सूर्य, मेष या वृश्चिक का मंगल, मिथुन या कन्या का बुध, तुला या वृष का शुक्र, धनु या मीन का गुरु मकर या कुंभ का शनि।

इसमें भी बारह योग बनते हैं।

—आचार्य मंत्रेश्वर और लोमश

यद्यपि यह बात तर्कसंगत नहीं प्रतीत होती और ज्योतिषशास्त्र के सामान्य सिद्धान्तों के विपरीत है, फिर भी महर्षि लोमश ने उक्त योग का वर्णन

किया है। साथ मंत्रेश्वर भी ऐसा ही कहते हैं यथार्थतः यह कहाँ तक घटित होता है यह विद्यार्थियों के एवं अध्येताओं के लिए शोध का विषय है।

पुत्र सुख बाधा/दत्तक पुत्र योग

निम्न योग होने पर सन्तान सुख में बाधा होती है, सन्तानें अल्पायु हों। सम्भवत: ऐसा जातक किसी बालक को गोद (दत्तक) लेकर सन्तान सुख प्राप्त करता है। यदि पुत्र हो भी तब भी उससे सम्बन्ध ठीक नहीं रहते।

(अ) (१) कन्या का सूर्य षष्ठ हो।
(२) सिंह का चन्द्र षष्ठ हो।
(३) वृष या धनु का मंगल षष्ठ हो।
(४) कर्क या तुला का बुध षष्ठ हो।
(५) मकर या मेष का गुरु षष्ठ हो।
(६) मिथुन या वृश्चिक का शुक्र षष्ठ हो।
(७) कुंभ या मीन का शनि षष्ठ हो।

(आ) (१) मीन का सूर्य व्यय में हो।
(२) कुंभ का चन्द्र व्यय में हो।
(३) वृश्चिक या मिथुन का मंगल व्यय में हो।
(४) मकर या मेष का बुध व्यय में हो।
(५) कर्क या तुला का गुरु व्ययस्थ हो।
(६) धनु या वृष का शुक्र व्यय में हो।
(७) सिंह या कन्या का शनि व्यय में हो।

दोनों को मिलकर चौबीस योग बनते हैं।

—महर्षि लोमश

इस योग की पुष्टि थोड़े बहुत अन्तर से महर्षि गर्ग तथा यवनाचार्य ने भी की है। गर्ग तथा यवनाचार्य के मत से योग सं० आ—१, आ—२, आ—३, आ—७, ही उक्त फल सूचक हैं। शेष नहीं।

पुत्रसुख बाधायोग

(१) सप्तम में कन्या का सूर्य, चन्द्रमा सिंह का, मंगल वृष या धनु का, बुध कर्क या तुला का बृहस्पति मकर या मेष का शुक्र मिथुन या वृश्चिक का, शनि कुम्भ या मीन का हो।

(२) लाभ में सूर्य मकर का, चन्द्रमा धनु का, मंगल कन्या या मेष का, बुध वृश्चिक या कुंभ का, बृहस्पति वृष या सिंह का, शुक्र तुला या मीन का, शनि मिथुन या कर्क का हो।

(३) लग्न में मीन का सूर्य कुंभ का चन्द्र, वृश्चिक या मिथुन का मंगल, मकर या मेष का बुध, कर्क या तुला का बृहस्पति, धनु या वृष का शुक्र अथवा सिंह या कन्या का शनि हो।

(४) चतुर्थ में मकर का सूर्य धनु का चन्द्रमा, कन्या या मेष का मंगल, वृश्चिक या कुंभ का बुध, वृष या सिंह का गुरु, तुला या मीन का शुक्र अथवा मिथुन या कर्क का शनि हो।

इस योग की पुष्टि यवनाचार्य तथा गर्ग ने भी की है, इन दोनों आचार्यों के मत से पुत्र सुख नहीं मिलता, पुत्र से विरोध एवं शत्रुता रहती है एवं इस प्रकार के योगों में पुत्र के हाथों मृत्यु होना भी सम्भव कहा गया है।

(५) दशम में मिथुन का सूर्य वृष का चन्द्र, कुंभ या कन्या का मंगल, कर्क या मेष का बुध, तुला या मकर का गुरू, मीन या सिंह का शुक्र अथवा धनु या वृश्चिक का शनि हो।

(६) लाभ स्थान में कर्क का सूर्य, मिथुन का चन्द्र, मीन या तुला का मंगल, वृष या सिंह का बुध, कन्या या मेष का शुक्र, वृश्चिक या कुंभ का गुरू, अथवा धनु या मकर का शनि हो।

(७) निम्न में से किसी योग के होने से संतानें उत्पन्न होकर मृत्यु को प्राप्त होती हैं और जीवित भी रहे तो उनसे मतभेद, विवाद रहता है। यथेच्छ सुख नहीं मिलता।

(१) मीन का या तुला का मंगल पंचम हो।
(२) पापयुक्त बुध वृष का अथवा सिंह का पंचम हो।
(३) क्षीण चन्द्रमा मिथुन का पंचम हो।
(४) कर्क का सूर्य पंचम हो।
(५) धनु का अथवा मकर का शनि पंचम में हो।

इस प्रकार से ६ × १२ = कुल ७२ + ८ = ८० योग बनते हैं।

मृत पुत्र योग

निम्न योगों के होने पर संतानें (विशेषकर पुत्र सन्तति) होकर मरते हैं। विशेष प्रयास से पुत्र जीवित बचते हैं।

(१) सूर्य मेष का तीसरे हो।

(२) एकादश में धनु का सूर्य हो।

(३) चन्द्रमा मीन का तीसरे हो।

(४) चन्द्र वृश्चिक का एकादश हो।

(५) मंगल धनु या कर्क का तीसरे हो।

(६) मंगल सिंह या मीन का एकादश हो।

(७) बुध कुंभ या वृष का तीसरे हो।

(८) बुध तुला या मकर का एकादश हो।

(९) बृहस्पति सिंह या वृश्चिक का तीसरे हो।

(१०) बृहस्पति मेष या कर्क का एकादश हो।

(११) शुक्र मकर या मिथुन का तीसरे हो।

(१२) शुक्र कन्या या कुंभ का एकादश हो।

(१३) शनि कन्या या तुला का तीसरे हो।

(१४) शनि वृष या मिथुन का एकादश हो।

इस तरह कुल चौबीस योग बनते हैं। इन सबको मिलाकर १७६ योग बनते हैं।

यवनाचार्य तथा गर्ग जी ने निम्न योगों को भी सन्तान सुख में बाधक, सन्तति को कष्ट एवं संतान हानिकर कहा है :—

(१) क्षीण चन्द्रमा मेष का पंचम हो।

(२) वृष का सूर्य पंचम हो।

(३) मकर या सिंह का मंगल पंचम हो।

(४) पापग्रह के साथ बुध मिथुन या मीन का पंचम हो (अकेले या शुभयुक्त होने पर दोष नहीं है)।

(५) तुला या वृश्चिक का शनि पंचम हो।

इस प्रकार कुल ८ योग बनते हैं।

ज्येष्ठ पुत्र सुख हानि

महर्षि लोमश के मतानुसार निम्नांकित योग विद्यमान होने से जातक को ज्येष्ठ पुत्र का सुख नहीं होता। यद्यपि अन्य आचार्य इससे सहमत नहीं जान पड़ते।

(१) सूर्य मिथुन का द्वादश हो।

(२) चन्द्र वृष का द्वादश हो।

(३) मंगल कन्या या कुंभ का बारहवें हो।
(४) बुध मेष या कर्क का बारहवें हो।
(५) बृहस्पति तुला या मकर का बारहवें हो।
(६) शुक्र सिंह या मीन का बारहवें हो।
(७) शनि वृश्चिक या धनु का बारहवें हो।

इस प्रकार कुल १२ योग बनते हैं।

नपुंसकता/वंध्यत्व के कारण संतानहीनता

[अ] यवनाचार्य के मत से निम्न योगों में नपुंसकत्व/वंध्यत्व के कारण सन्तान का अभाव संभव है—

(१) तुला का सूर्य नवम हो।
(२) क्षीण चन्द्रमा नवम में कन्या का हो।
(३) सू. मं. श रा. या केतु के साथ में बुध सिंह अथवा वृश्चिक का नवम हो।
(४) मंगल मिथुन या मकर का नवम हो।
(५) शनि मीन या मेष का नवम हो।

[आ] निम्न योगों को यवनाचार्य तथा महर्षि गर्ग ने भी नपुंसकत्व सूचक कहा है :—

(१) कर्क का सूर्य अष्टम हो।
(२) मिथुन का चन्द्र अष्टम हो।
(३) मीन या तुला का मंगल अष्टम हो।
(४) वृष या सिंह का बुध अष्टम हो।
(५) वृश्चिक या कुम्भ का गुरु अष्टम हो।
(६) मेष या कन्या का शुक्र अष्टम हो।
(७) धनु या मकर का शनि अष्टम हो।

[इ] मानसागरीकार श्री हरजी तथा यवनाचार्य ने इन योगों को भी नपुंसकत्व सूचक कहा है :—

(१) कन्या का सूर्य लग्न में हो।
(२) सिंह का चन्द्र लग्न में हो।
(३) वृष या धनु का मंगल लग्न में हो।
(४) कर्क या तुला का बुध लग्न में हो।
(५) मकर या मेष का गुरु लग्न में हो।
(६) मिथुन या वृश्चिक का शुक्र लग्न में हो।
(७) कुम्भ या मीन का शनि लग्न में हो।

नपुंसकता/वंध्यासूचक और भी अनेक योग हैं। यहाँ केवल संहिता ग्रंथों के योग दिये हैं।

सन्तति विरोध योग

आज के युग में पिता-पुत्र में वाद-विवाद एक सामान्य बात है। यह जिज्ञासा होती है कि ऐसे कौन से योग होते हैं जो पिता तथा पुत्र के बीच कटुता उत्पन्न करते हैं। ज्योतिष के आचार्यों तथा ग्रंथकारों ने इस प्रकार के कुछ योगों का वर्णन किया है।

[अ] महर्षि लोमश तथा गर्ग ने निम्न योगों के होने पर पितृपक्ष से वैर सूचित किया है। यह आवश्यक नहीं है कि इन योगों में पितापुत्र में ही वैर हो, लेकिन इन योगों में जातक का भाई आदि बन्धुओं से वैर होना सूचित होता है। लोमश जी का कथन है कि ऐसा व्यक्ति पैतृक सम्पत्ति का भी त्याग करता है—

(१) वृष का सूर्य लग्न में हो।
(२) मेष का चन्द्र लग्न में हो।
(३) सिंह या मकर का मंगल लग्न में हो।
(४) मिथुन या मीन का बुध लग्न में हो।
(५) कर्क या कुंभ का शुक्र लग्न में हो।
(६) धनु या कन्या का गुरु लग्न में हो।
(७) तुला या वृश्चिक का शनि लग्न में हो।

[आ] पिता से विरोध :—यवनाचार्य तथा गर्ग ने निम्न योग होने पर पिता से विरोध होना कहा है। मानसागरीकार ने भी योग की पुष्टि की है---

(१) मिथुन का सूर्य द्वितीय हो।
(२) कन्या या कुंभ का मंगल द्वितीय हो।
(३) वृश्चिक या धनु का शनि द्वितीय हो।

[इ] यवनाचार्य, गर्ग तथा मानसागरीकार ने निम्न योगों को भी पिता से विरोध सूचक कहा है। पिता माता दोनों से सम्बन्ध स्नेहपूर्ण नहीं रहते, भले ही दोष किसी का हो—

(१) कर्क का सूर्य तृतीय हो।
(२) मिथुन का चन्द्र तृतीय हो।
(३) मीन या तुला का मंगल तृतीय हो।
(४) सिंह या वृष का बुध तृतीय हो।
(५) वृश्चिक या कुंभ का गुरु तृतीय हो।
(६) कन्या या मेष का शुक्र तृतीय हो।
(७) धनु या मकर का शनि तृतीय हो (यह योग मेरे अनुभव में सत्य घटित हुआ है)

उपरोक्त योगों में प्रायः दोष माता-पिता का ही होता है। जातक इसके बावजूद अपने कर्तव्यों का पालन करता है।

[ई] गर्ग तथा लोमश जी के मतानुसार निम्न योगों के विद्यमान रहने पर पिता का सुख कम मिलता है। या तो पिता की कम आयु में मृत्यु हो। अथवा जातक पिता से दूर (विदेश) रहता है--

(१) मेष का सूर्य व्यय में हो।
(२) मीन का चन्द्र व्यय में हो।
(३) कर्क या धनु का मंगल व्यय में हो।
(४) वृष या कुंभ का बुध व्यय में हो।
(५) मिथुन या मकर का शुक्र व्यय में हो।
(६) सिंह या वृश्चिक का गुरु व्यय में हो।
(७) कन्या तुला का शनि व्यय में हो।
(८) धनु का सूर्य अष्टम हो।
(९) वृश्चिक का चन्द्र अष्टम हो।
(१०) सिंह या मीन का मंगल अष्टम हो।
(११) तुला या मकर का बुध अष्टम हो।
(१२) मेष या कर्क का गुरु अष्टम हो।
(१३) कन्या या कुंभ का शुक्र अष्टम हो।
(१४) वृष या मिथुन का शनि अष्टम हो।

[उ] निम्न योगों के विद्यमान होने पर जातक क्रोधी हो, पितृपक्ष (पिता और बन्धुबान्धवों) से बैर एवं वाद-विवाद हो—ऐसा यवनाचार्य का कथन है। आचार्य गर्ग के मत से पिता-पुत्र में विरोध होता है। मानसागरी के अनुसार पिता रोगी होता है—

(१) मिथुन का सूर्य चतुर्थ हो।
(२) वृष का चन्द्र चतुर्थ हो।
(३) कन्या या कुंभ का मंगल चतुर्थ हो।
(४) कर्क या मेष का बुध चतुर्थ हो।
(५) तुला या मकर का गुरु चतुर्थ हो।
(६) मीन या सिंह का शुक्र चतुर्थ हो।
(७) वृश्चिक या धनु का शनि चतुर्थ हो।

(ऊ) निम्न योगों में भी यवनाचार्य तथा गर्ग जी ने पिता-पुत्र में वैर होना कहा है—

(१) कर्क का पंचम सूर्य हो।
(२) मिथुन का चन्द्र पंचम हो।
(३) मीन या तुला का मंगल पंचम हो।
(४) वृष या सिंह का बुध पंचम हो।
(५) मेष या कन्या का शुक्र पंचम हो।
(६) वृश्चिक या कुंभ का गुरू पंचम हो।
(७) धनु या मकर का शनि पंचम हो।

(ए) यवनाचार्य तथा गर्ग जी के मतानुसार निम्न योग होने पर माता से तथा पिता से भी विरोध होता है। माता से विशेष रूप से—

धनु का सूर्य वृश्चिक का चन्द्र, सिंह या मीन का मंगल, तुला या मकर का बुध, मेष या कर्क का गुरु कन्या या कुंभ का शुक्र अथवा वृष या मिथुन का शनि दशम हो।

(ऐ) निम्न योगों को यवनाचार्य तथा गर्ग ने पिता से वैर सूचक कहा है। ऐसे योगों में पत्नी के कारण, अथवा पत्नी के सम्बन्धियों (ससुरालपक्ष) को लेकर मतभेद होने की सम्भावना व्यक्त की है—

वृष का सूर्य, मेष का चन्द्र, मकर या सिंह का मंगल, मीन या मिथुन का बुध, धनु या कन्या का गुरू, कुंभ या कर्क का शुक्र, तुला या वृश्चिक का शनि चतुर्थ मे हो।

(ओ) सन्तान से जीवन को भय—कभी-कभी विरोध इतना बढ़ जाता है कि जिसके घातक परिणाम होते हैं। यवनाचार्य तथा गर्ग जी के मतानुसार

निम्न योग जन्म कुण्डली में विद्यमान होने से पुत्र के द्वारा जीवन को भी भय सम्भव है। या तो पुत्र सुख न हो और यदि पुत्र हो भी तो उससे विरोध होगा।

(१) धनु का सूर्य चौथे हो।

(२) वृश्चिक का चन्द्र चतुर्थ हो।

(३) सिंह या मीन का मंगल चौथे हो।

(४) तुला या मकर का बुध चतुर्थ हो।

(५) कर्क या मेष का गुरू चतुर्थ हो।

(६) कन्या या कुंभ का शुक्र चौथे हो।

(७) वृष या मिथुन का शनि चौथे हो।

इस प्रकार पिता पुत्र में परस्पर कटु सम्बन्धों के द्योतक १२+१+ १२+२४+१२+१२+१२+१२+१२=कुल ११३ योग बनते हैं।

एकाधिक विवाह / यौनसम्बन्ध योग

सामान्यत. द्विभार्या योग का अर्थ है एक से अधिक विवाह अथवा एक से अधिक यौन सम्पर्क। अनेक सम्प्रदायों में जहाँ एकाधिक या बहुविवाह की प्रथा प्रचलित है, वहां पर यह योग निश्चय ही शतप्रतिशत घटित होंगे। वर्तमान परिपेक्ष में जहाँ कि एक से अधिक विवाह शासन द्वारा निषिद्ध ठहरा दिया गया है, यह योग कितने सही उतरते हैं यह परीक्षा एवं अनुसंधान का विषय है। यह योग स्त्री तथा पुरुष दोनों पर समान रूप से मान्य होंगे। अब समाज में विधवा विवाहों को मान्यता मिलने लगी है, कुछ सम्प्रदायों एवं जातियों में तो स्त्रियों के पुनर्विवाह प्रत्यक्ष रूप से प्रचालित हैं ही। पुरुषों में भी शासन द्वारा स्थापित विधि के अनुसार एक ही विवाह मान्य होते भी, प्रथम पत्नी के निधन पर पुनर्विवाह होते ही हैं। वैवाहिक सम्बन्ध न होते भी समाज में गुप्त रूप से पर-स्त्री या पर-पुरुष से यौन सम्बन्ध होना भी कोई असम्भव नहीं है।

ज्योतिष शास्त्र के प्राचीन मौलिक ग्रंथों में ऐसे योगों का वर्णन मुख्यत: महर्षि लोमश तथा यवनाचार्य के ग्रंथों में मिलता है। यहाँ पर ऐसे ही योगों की चर्चा कर रहे हैं। महर्षि लोमश जी ने एक से अधिक विवाह में लग्नेश, धनेश, तृतीयेश, सप्तमेश अष्टमेश और व्ययेश को कारण माना है। यवनाचार्य ने तृतीयेश व सप्तमेश को ही कारण माना है।

महर्षि लोमश जी ने द्विभार्या' या 'बहुभार्या' सूचक निम्न योग बतलाये हैं, अर्थात् निम्नांकित किसी एक योग के होने पर या तो एक से अधिक विवाह होते हैं अथवा एक से अधिक यौन सम्बन्ध होते हैं।

इन योगों को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं।

(अ) ऐसे योग जिसमें कारण विशेष से एक से अधिक विवाह की सम्भावना होती है, लेकिन चरित्र दोष नहीं होता—

[१] सूर्य तुला का तृतीय हो।
[२] सूर्य मकर का षष्ठ में हो।
[३] सूर्य सिंह का द्वितीय में हो।
[४] सूर्य मकर का लग्न में हो।
[५] सूर्य कर्क का सप्तम में हो।
[६] सूर्य धनु का चतुर्थ में हो।

(७) चन्द्रमा कन्या का तृतीय हो ।
(८) चन्द्रमा धनु का षष्ठ में हो ।
(९) चन्द्रमा कर्क का द्वितीय में हो ।
(१०) चन्द्रमा धनु का लग्न में हो ।
(११) चन्द्रमा मिथुन का सप्तम में हो ।
(१२) चन्द्रमा वृश्चिक का चतुर्थ में हो ।
(१३) मंगल मिथुन का तृतीय में हो ।
(१४) मंगल कन्या का षष्ठ में हो ।
(१५) मंगल मेष का द्वितीय हो ।
(१६) मंगल कन्या का लग्न में हो ।
(१७) मंगल मीन का सप्तम में हो ।
(१८) मंगल सिंह का चौथे हो ।
(१९) मंगल मकर का तृतीय में हो ।
(२०) मंगल मेष का षष्ठ में हो ।
(२१) मंगल वृश्चिक का द्वितीय हो ।
(२२) मंगल मेष का लग्न में हो ।
(२३) मंगल तुला का सप्तम में हो ।
(२४) मंगल मीन का चतुर्थ हो ।
(२५) बुध सिंह का तृतीय हो ।
(२६) बुध वृश्चिक का षष्ठ हो ।
(२७) बुध मिथुन का द्वितीय हो ।
(२८) बुध वृश्चिक का लग्न में हो ।
(२९) बुध वृश्चिक का सप्तम हो ।
(३०) बुध तुला का चतुर्थ में हो ।
(३१) बुध वृश्चिक का तृतीय हो ।
(३२) बुध कुंभ का षष्ठ हो ।
(३३) बुध कन्या का द्वितीय हो ।
(३४) बुध कुंभ का लग्न में हो ।
(३५) बुध सिंह का सप्तम हो ।
(३६) बुध मकर का चतुर्थ हो ।
(३७) बृहस्पति कुंभ का तृतीय हो ।
(३८) बृहस्पति वृष का षष्ठ हो ।
(३९) बृहस्पति धनु का द्वितीय हो ।
(४०) बृहस्पति वृष का लग्न में हो ।
(४१) बृहस्पति वृश्चिक का लग्न में हो ।
(४२) बृहस्पति मेष का चतुर्थ हो ।
(४३) बृहस्पति वृष का तृतीय हो ।
(४४) बृहस्पति सिंह का षष्ठ हो ।
(४५) बृहस्पति मीन का द्वितीय हो ।
(४६) बृहस्पति सिंह का लग्न में हो ।
(४७) बृहस्पति कुंभ का सप्तम में हो ।
(४८) बृहस्पति कर्क का चतुर्थ हो ।
(४९) शुक्र कर्क का द्वितीय हो ।
(५०) शुक्र तुला का षष्ठ हो ।
(५१) शुक्र वृष का द्वितीय हो ।
(५२) शुक्र तुला का लग्न में हो ।
(५३) शुक्र मेष का सप्तम हो ।
(५४) शुक्र कन्या का चतुर्थ हो ।
(५५) शुक्र धनु का तृतीय हो ।
(५६) शुक्र मीन का षष्ठ हो ।
(५७) शुक्र तुला का द्वितीय हो ।
(५८) शुक्र मीन का लग्न में हो ।
(५९) शुक्र कन्या का सप्तम हो ।
(६०) शुक्र कुंभ का चतुर्थ में हो ।
(६१) शनि मीन का तृतीय हो ।
(६२) शनि मिथुन का षष्ठ में हो ।
(६३) शनि मकर का द्विनीय हो ।
(६४) शनि मिथुन का लग्न में हो ।
(६५) शनि धनु का सप्तम हो ।
(६६) शनि वृष का चतुर्थ में हो ।
(६७) शनि मेष का तृतीय हो ।
(६८) शनि कर्क का षष्ठ हो ।

(६९) शनि कुंभ का द्वितीय हो।

(७०) शनि कर्क का लग्न में हो।

(७१) शनि मकर का सप्तम हो।

(७२) शनि मिथुन का चतुर्थ हो।

इस प्रकार कुल कुल ७२ योग बनते हैं।

(आ) इस वर्ग में ऐसे योग आते हैं, जिसमें या तो व्यक्ति के एक से अधिक विवाह हों, या एक से अधिक यौन सम्बन्ध हों। ऐसे योगों में चरित्र-दोष भी सम्भव है, गुप्त यौन सम्बन्ध हो सकते हैं:—

(१) सूर्य सिंह का लग्न में हो।

(२) सूर्य मीन का अष्टम हो।

(३) सूर्य कन्या का तृतीय हो।

(४) सूर्य तुला का चतुर्थ हो।

(५) मकर का सूर्य सप्तम हो।

(६) मिथुन का सूर्य लग्न में हो।

(७) सूर्य सिंह का सप्तम हो।

(८) सूर्य मीन का द्वितीय हो।

(९) सूर्य कुंभ का लग्न में हो।

(१०) कर्क का चन्द्रमा लग्न में हो।

(११) चन्द्र कुंभ का अष्टम हो।

(१२) चन्द्र सिंह का तीसरे हो।

(१३) चन्द्र कन्या का चतुर्थ हो।

(१४) चन्द्र धनु का सप्तम हो।

(१५) चन्द्र वृष का लग्न में हो।

(१६) कर्क का चन्द्र सप्तम हो।

(१७) कुंभ का चन्द्र द्वितीय हो।

(१८) मकर का चन्द्र लग्न में हो।

(१९) मंगल लग्न में मेष तुला, वृष कुंभ, कन्या या वृश्चिक का हो।

(२०) मंगल अष्ठम में वृश्चिक या मिथुन का हो।

(२१) मगल तीसरे धनु, मेष, वृश्चिक या वृष का हो।

(२२) मंगल चौथे मिथुन या मकर का हो।

(२३) मंगल सप्तम में कन्या वृश्चिक या मेष का हो।

(२४) मंगल द्वितीय में मिथुन या वृश्चिक का हो।

(२५) बुध लग्न में कन्या, मिथुन, मेष कर्क, धनु या मीन का हो।

(२६) बुध का अष्टम में मेष या मकर का हो।

(२७) बुध द्वितीय में मेष या मकर का हो।

(२८) बुध तृतीय में कर्क या तुला का हो।

(२९) बुध चतुर्थ में सिंह या वृश्चिक का हो।

(३०) बुध सप्तम में मिथुन, कन्या, वृश्चिक या कुंभ का हो।

(३१) बृहस्पति लग्न में धनु, मीन, मिथुन, कन्या, तुला या मकर का हो।

(३२) बृहस्पति अष्टम में कर्क या तुला का हो।

(३३) बृहस्पति द्वितीय में कर्क या तुला का हो।

(३४) बृहस्पति तृतीय में मकर या मेष का हो।

(३५) बृहस्पति चतुर्थ में वृष या कुंभ का हो।

(३६) बृहस्पति सप्तम में वृष, सिंह धनु या मीन का हो।

(३७) शुक्र लग्न में वृष, तुला, मेष वृश्चिक, सिंह या मीन का हो।

(३८) शुक्र अष्टम में वृष या धनु का हो।

(३९) शुक्र द्वितीय में वृष या धनु का हो।

(४०) शुक्र तृतीय में मिथुन या वृश्चिक का हो।

(४१) शुक्र चतुर्थ में कर्क या धनु का हो।

(४२) शुक्र सप्तम में तुला, मीन, या वृष का हो।

(४३) शनि लग्न में मकर कुंभ, वृश्चिक, धनु कर्क या सिंह का हो।

(४४) शनि अष्टम में सिंह या कन्या का हो।

(४५) शनि द्वितीय सिंह या कन्या का हो।

(४६) शनि तीसरे कुंभ या मीन का हो।

(४७) शनि चतुर्थ मीन या मेष का हो।

(४८) शनि सप्तम मिथुन, कर्क, मकर या कुम्भ का हो।

इस प्रकार कुल ७२ + ४८ = १२० एक सौ बीस योग बनते हैं।

महर्षि लोमश के मत से—नवम में तुला का सूर्य, कन्या का चन्द्र, मिथुन या मकर का मंगल, सिंह या वृश्चिक का बुध, कुम्भ या वृष का गुरु, कर्क या धनु का शुक्र मीन या मेष का शनि होने पर भी अन्यत्र यौन सम्बन्ध हो सकते हैं। किन्तु यवनाचार्य के मत से पति/पत्नी में विरोध रहता है।

सावधान—जन्मपत्र में विद्यमान दूसरे योगों से इन योगों का निष्प्रभावी होना भी सम्भव है।

अत: अन्यान्य योगों का विचार भी साथ में होना आवश्यक है।

निम्न योग भी महर्षि लोमश जी के मतानुसार चरित्रहीनता एवं द्विभार्या सूचक हैं—

(१) कर्क का सूर्य बारहवें हो।

(२) मिथुन का चन्द्र बारहवें हो।

(३) मीन या तुला का मंगल व्यय में हो।

(४) वृष या सिंह का बुध व्ययस्थ हो।

(५) गुरु वृश्चिक या कुम्भ का व्यय में हो।

(६) शुक्र मेष या कन्या का व्यय में हो।
(७) शनि मकर या धनु का व्यय में हो।

परस्त्री/परपुरुषगामी योग

महर्षि लोमश ने निम्न योगों को चरित्र सम्बन्धी दुर्बलता का सूचक कहा है, परस्त्री/परपुरुष सम्बन्ध हो सकते हैं—

(१) तुला का सूर्य अष्टम हो।
(२) कन्या का चन्द्र अष्टम हो।
(३) कुम्भ का सूर्य द्वादश हो।
(४) मकर का चन्द्र द्वादश हो।
(५) मिथुन का या मकर का मंगल अष्टम हो।
(६) सिंह या वृश्चिक का बुध अष्टम हो।
(७) तुला या वृष का मंगल व्ययस्थ हो।
(८) धनु या मीन का बुध व्ययस्थ हो।
(९) कुम्भ या वृष का गुरु अष्टम हो।
(१०) मिथुन का कन्या का गुरु द्वादश हो।
(११) कर्क या धनु का शुक्र अष्टम हो।
(१२) वृश्चिक या मेष का शुक्र द्वादश हो।
(१३) मेष या मीन का शनि अष्टम हो हो।
(१४) कर्क या सिंह का शनि द्वादश हो।

इस प्रकार कुल २४ योग बनते हैं।

पत्नी/पती हन्ता योग

पुरुष की कुण्डली में निम्न योग होने पर पत्नी को अरिष्ट कारक तथा पत्नी की कुण्डली में होने पर पति को अरिष्टकारी योग बनता है—

[१] कुम्भ का सूर्य सप्तम हो।
[२] मकर का चन्द्र सप्तम हो।
[३] वृष या तुला का मंगल सप्तम हो।
[४] मीन या धनु का बुध सप्तम हो।
[५] मिथुन या कन्या का गुरु सप्तम हो।
[६] मेष या वृश्चिक का शुक्र सप्तम हो।
[७] कर्क या सिंह का शनि सप्तम हो।

दाम्पत्य सम्बन्ध विच्छेद योग

वैवाहिक जीवन में सुखशान्ति एवं समन्वय के लिए मंगल तथा तत्समान पापग्रहों का विचार तो किया ही जाता है लेकिन इसके साथ ही सप्तमभाव, सप्तमेश की स्थिति और सप्तमभाव पर शुभ पाप-दृष्टियों का तुलनात्मक विचार आवश्यक है।

महिलाओं के जन्म पत्र में "अष्टमं पति सौभाग्यं" के अनुसार "अष्टम भाव का" भी विचार वांछनीय है लेकिन पुरुषों के जन्म पत्र में सप्तमभाव ही मुख्य विचारणीय होता है। पति (पुरुष) के जन्मपत्र में सप्तमेश की स्थिति ठीक न होने पर पत्नी तेज स्वभाव तथा गर्वीली मिलती है और दाम्पत्यजीवन संतोषजनक नहीं जाता। ऐसा ही फल अष्टमेश अथवा षष्टेश के सप्तम होने पर भी है।

यहाँ पर तीन ऐसे पतियों का उदाहरण है जिन्हें उनकी पत्नियों ने पति को अयोग्य बताकर स्वयं तलाक देकर उनसे सम्बन्ध विच्छेद कर लिया है।

यद्यपि तीनों जन्मपत्रों में इसके कारण अलग-अलग योग हैं लेकिन फिर भी तीनों जातकों के जन्मपत्रों में एक योग समान रूप से मिलता है वह योग है, सप्तमेश अष्टम में।

सप्तमेश अष्टम होने पर प्राचीन आचार्यों ने इस प्रकार फल कहे हैं।

जायेशे चाष्टमेषष्ठे सरोषाकामिनी भवेत ।
क्रोध युक्ताभवेद्वापि न सुखंलभते क्वचित् ।।
—लोमश संहिता ।।

निधनगेतु कलत्रपतौ नरः, कलहकृतगृहणी सुख वर्जित: ।
दयितया निजया न समागमो, यदि भवेदथवा मृत भार्यक: ।।
—यवनजातक

अर्थात सप्तमेश अष्टम होने पर पत्नी गर्वीली अथवा क्रोधी स्वभाव की मिलती है उससे समागम या सुख प्राप्त नहीं होता। जीवन कटु एवं कलहपूर्ण रहता है अथवा पत्नी की मृत्यु हो जाती है।

अन्य आचार्यों ने भी इसी प्रकार के फल बतलाये हैं। निम्न तीनों जन्म पत्रों में यह योग घटित होता है।

[क]

सम्वत् १९९६ श्रावणाधिक कृष्ण १ भौमवार (१ अगस्त १९३९) अ० कु० प० ।

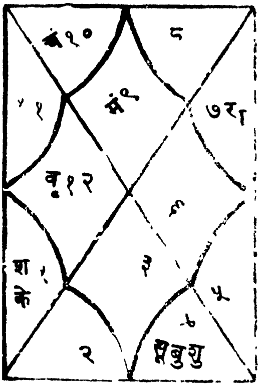

इस कुण्डली में सप्तम भाव का स्वामी बुध अष्टम [दु:स्थान] में तथा अस्त गत है। इसके अलावा सप्तम भाव पर मंगल तथा शनि की पूर्ण दृष्टि है, फलत: दाम्पत्य सुख की हानि करता है। जातक स्वयं विश्वविद्यालय में प्राध्यापक है। गुरुमध्ये चन्द्रमा में इस जातक का विवाह भारतीय प्रशासकीय सेवा में कार्यरत एक (आई० ए० एस० अधिकारी) कन्या से हुआ लेकिन विवाह के तत्काल बाद ही सम्बन्ध कटु हो गये (भौमान्तर मे) और शनि मध्ये शनि आते ही दोनों का सम्बन्ध विच्छेद हो गया। इस स्थिति के लिये बुध, मंगल और शनि ही मुख्य कारण है।

[ख]

श्री त्रिवेदी-आगरा। जन्म २१ अक्टूबर १९३८ हस्तनक्षत्र, प्रथमचरण।

इस जन्मपत्र में मंगल दोषकारक नहीं है। सप्तम में सूर्य और राहु, सप्तमेश शुक्र अष्टम, बुध षष्ठेश सप्तम में तथा लग्न में केतु—यह योग ही वैवाहिक सुखहानि में मुख्य कारण है पिछले दिनों जब जातक मेरे सम्पर्क में आया, तब गुरुदशामध्ये शुक्र की अन्तर्दशा चल रही थी इसके पहले केतु की अन्तर्दशा में जातक का पत्नी से सम्बन्ध विच्छेद हो चुका था।

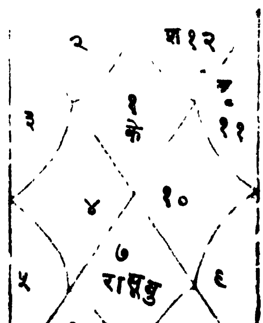

यह जातक भी प्राध्यापक है। लग्न पहले द्रेष्काण में है, लग्न में केतु तथा लग्नेश

षष्ठ होने से जातक के मस्तिष्क पर इस घटना का पर्याप्त कुप्रभाव पड़ा है और मानसिक रूप से अत्यन्त तनाव की स्थिति में रोगग्रस्त था। जो जन्मलग्न के अनुसार स्वाभाविक एवं सही है।

वैवाहिक सम्बन्धों में कुछ लोग केवल मंगल को ही देखते हैं, लेकिन जैसा कि हमारे आचार्यों ने कहा है—

"भौमतुल्यो यदा भौम: पापो वा तादृशो-भवेत्"

इससे स्पष्ट है कि दूसरे पापग्रह भी तत्समान फल देते हैं। अत: केवल मंगल का ही विचार यथेच्छ नहीं है।

[ग]

जन्म २७ अगस्त रविवार १९३९ (गि० न०) इष्ट २०/४५। श्रवण नक्षत्र प्रथमचरण। जातक की मूल जन्मपत्र वृश्चिक लग्न की बनी हुई थी, जो २९ अंश पर संधिगत थी शुद्ध लग्न धनु होती है।

इस कुण्डली में भी ठीक वैसी ही स्थिति है जो कुण्डली संख्या [क] में है—केवल शुक्र को छोड़कर शेष सम्पूर्ण ग्रह-स्थिति ज्यों की त्यों है।

इस जातक के विवाह की तिथि का सही विवरण मुझे स्मरण नहीं है, लेकिन विवाह के एक वर्ष के भीतर ही पत्नी से सम्बन्ध टूट गया था और बाद में सम्बन्ध विच्छेद भी हो गया है।

महिलाओं की कुंडल में ऐसे योग होने पर पति क्रोधी होगा।

यौन एवं गुप्त रोग सूचक योग

निम्न प्रकार के योग जन्मपत्र में होने पर महर्षि लोमश जी ने गुह्य रोग [गुप्तांग के रोग] की संभावना व्यक्त की है।

[१] धनु राशि का सूर्य षष्ठ में हो।

[२] वृश्चिक का चन्द्र षष्ठ में हो।

[३] सिंह या मीन का मंगल षष्ठ में हो।

[४] तुला या मकर का बुध षष्ठ में हो।

[५] मेष या कर्क का गुरु षष्ठ में हो।

[६] कन्या या कुम्भ का शुक्र षष्ठ में हो।

[७] वृष या मिथुन का शनि षष्ठ में हो।

इस प्रकार से कुल बारह योग बनते हैं। कसौटी पर यह योग कहाँ तक सही उतरते हैं यह तो विभिन्न जातकों की कुण्डलियों में परीक्षण एवं अनुसन्धान से ही स्पष्ट होगा लेकिन गुह्यरोग किस प्रकार का होगा? ज्योतिष के सामान्य सिद्धांतों के अनुसार इसका निर्धारण किया जा सकता है। क्योंकि प्रत्येक योग में एक प्रकार का ही रोग नहीं होगा। ज्योतिष के मूलभूत वैज्ञानिक सिद्धांतों के अनुसार—

[अ] सूर्य या मंगल योग कारक हो तो खुजली, बवासीर, फोड़ा, भगंदर गर्मी-सूजाक आदि रोगों का होना सम्भव है।

[आ] चन्द्रमा ऐसे योग का सूचक हो तो प्रसूति रोग, प्रदर, अण्डवृद्धि आदि संभव है।

[इ] शुक्र योग कारक हो तो मधुमेह, नपुंसकता, वन्ध्या, प्रमेह, प्रदर, स्वप्नदोष वीर्यदोष, अण्डवृद्धि आदि कारक होगा।

[ई] बुध योग कारक हो तो दाद, खाज, फोड़ा, गर्मी-सूजाक आदि का सूचक होगा।

[उ] बृहस्पति योग कारक होने पर कोई विशेष दोष न होते भी किसी प्रकार का भ्रम, संशय हो सकता है कि (व्यर्थ में) मुझे रोग है। जैसे धातु या रजोविकार संभव है।

[ऊ] शनियोग कारक हो तो अण्डवृद्धि, गर्भाशय अथवा गुप्तांगों में कोई प्राकृतिक कमी, बंध्यादोष, टेढ़ापन, आदि संभव होगा।

मेरे अपने अनुभव पर एक बात और स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि यदि जातक के जन्मलग्न का द्वितीय देष्काण हो तो योग अधिक प्रभावकारी होगा, अन्यथा योग का प्रभाव कम होगा। यही नियम निम्न योगों पर भी मान्य होगा।

कुछ अन्य योग

गुप्तांगों में रोग सम्बन्धी कुछ अन्य योग भी आचार्य लोमश जी ने कहे हैं। इन योगों की पुष्टि यवनाचार्य तथा गर्गाचार्य आदि ने भी की है।

अत. लोमश, गर्ग, यवनाचार्य के मत से निम्न योग में से किसी भी एक योग के होने से जातक यौनरोग से ग्रस्त हो सकता है। इन योगों में गर्मी, सूजाक आदि प्रकार के रोगों की ही सम्भावना अधिक रहती है। गर्गाचार्य का तो कथन है कि किसी स्त्री (पुरुष) के संसर्ग से यह रोग उत्पन्न होता है और संभव है मृत्यु भी इसी रोग से हो—नयी महामारी 'एड्स' ऐसे योग में सम्भव है।

(क) (१) कर्क का सूर्य सप्तम में हो।
(२) मिथुन का चन्द्र सप्तम हो।
(३) मीन या तुला का मंगल सप्तम हो।
(४) वृष या सिंह का बुध सप्तम हो।
(५) वृश्चिक या कुंभ का गुरु सप्तम हो।
(६) मेष या कन्या का शुक्र सप्तम हो।
(७) धनु या मकर का शनि सप्तम हो।
इस प्रकार कुल १२ बारह योग बनते हैं।

(ख) निम्न योगों में भी गुप्तांगों में रोग का योग लोमश, गर्ग व यवनाचार्य ने कहा है, लेकिन इन योगों में बहुधा दाद, खाज, फोड़ा, बवासीर, भगन्दर इस प्रकार की व्याधियां होती हैं—
(१) मकर का सूर्य लग्न में हो।
(२) धनु का चन्द्र लग्न में हो।
(३) कन्या या मेष का मंगल लग्न में हो।
(४) वृश्चिक या कुंभ का बुध लग्न में हो।
(५) वृष या सिंह का गुरु लग्न में हो।

(६) तुला या मीन का शुक्र लग्न में हो।

(७) मिथुन या कर्क का शनि लग्न में हो।

इसी प्रकार से भी कुल बारह योग बनते हैं। अतः गुप्तांग सम्बन्धी छत्तीस योग सिद्ध होते हैं।

गुदारोग योग

महर्षि लोमश जी के मतानुसार जन्मकुण्डली में निम्न योग होने से गुदारोग संभव है—

(१) कर्क का सूर्य द्वितीय हो।

(२) मिथुन का चन्द्र द्वितीय हो।

(३) तुला या मीन का मंगल द्वितीय हो।

(४) वृष या सिंह का बुध द्वितीय हो।

(५) वृश्चिक या कुंभ का गुरु द्वितीय हो।

(६) मेष या कन्या का शुक्र दूसरे हो।

(७) धनु या मकर का शनि द्वितीय हो।

गुदा सम्बन्धी रोग विविध प्रकार के हो सकते हैं। मेरे एक परिचित जातक जिनका शनि धनु का द्वितीय है, उन्हें हार्निया का रोग विद्यमान है।

ज्यौतिष में हृदय रोग सूचक योग

आज के भय, आतंक चिन्ता एवं समस्याओं से भरे जीवन में हृदय रोग दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है, यद्यपि यह रोग संक्रामक नहीं है और समय पर उचित उपचार हो जाने से इस पर नियंत्रण भी पा लिया जाता है, फिर भी आज के युग में यह रोग एक चिन्ता का विषय है।

ज्योतिष शास्त्र की दृष्टि से हम इस रोग की सम्भावनाओं के बारे में विचार करें कि कैसी ग्रह स्थिति में मानव इस रोग से पीड़ित हो सकता है, इस सम्बन्ध में ज्योतिष के मूलभूत सिद्धान्त इस प्रकार हैं—

(अ) जन्म कुण्डली में चौथा भाव 'हृदय' का प्रतीक माना गया है, अतः यदि चौथे भाव में सूर्य, मंगल, शनि, राहु, केतु, यूरेनस या प्लूटो—इनमें से कोई भी एक ग्रह स्थित हो. या एक से अधिक ग्रह स्थित हों। या इनकी कुदृष्टि इस भाव पर हो तो उक्त जातक को हृदय रोग सम्भव है।

(आ) जन्म कुण्डली में चौथे भाव की तरह ही पंचम भाव को 'क्रोड' (कोख) का प्रतीक माना है, हृदय तथा कुक्षि की सन्निकटता के कारण कुछ अंश तक उपरोक्त ग्रह स्थिति पंचम में हो तो भी हृदय रोग सम्भव है।

(इ) चतुर्थ या पंचम भाव का स्वामी सूर्य, मंगल, शनि में से कोई एक हो और वह षष्ठ, अष्टम व्यय आदि दुःस्थानों में बैठा हो, अथवा एक ओर वह पंचमेश या सुखेश हो और साथ ही मारकेश (अष्टमेश, सप्तमेश, तृतीयेश, द्वितीयेश, षष्ठेश, व्ययेश) भी हो—तब भी हृदय रोग सम्भव होता है। जैसे कन्या लग्न में जन्मे जातक का शनि पंचमेश व षष्ठेश भी होगा।

सूर्य, मंगल, शनि—में से कोई ग्रह षष्ठेश, अष्टमेश होकर चतुर्थ में हो या मारकेश होकर चतुर्थ में हों।

(ई) विशेष—उपरोक्त सभी योगों में यदि लग्न १० अंश से ऊपर २० अंश के अन्दर हो अर्थात लग्न का द्वितीय द्रेष्काण हो तो हृदय रोग की संभावना अधिक रहती है क्योंकि द्वितीय द्रेष्काण का हृदय से सीधा सम्बन्ध है। इसके

विपरीत १० अंश तक या २० अंश से ऊपर अधिक प्रभावी नहीं रहता। लग्नेश का विचार भी करना चाहिए।

(उ) चतुर्थेश या पंचमेश सूर्य, शनि, मंगल इनमें से कोई हो और नीच का हो, अथवा वक्री हो—तब भी हृदय रोग सम्भव है।

(ऊ) चतुर्थेश या पंचमेश कोई भी ग्रह हो, लेकिन वह सूर्य, शनि, मंगल से पीड़ित हो (इनमें से किसी ग्रह के साथ युति हो या इनमें से किसी की दृष्टि हो—और दोनों परस्पर शत्रु हों) तो भी हृदय रोग का विकार बनता है।

(ए) सूर्य पापयुक्त, पापदृष्ट, नीच या दुःस्थानों में स्थित हो।

(ऐ) अष्टम या पंचम में सिंह या कुंभराशि हो।

(ओ) चतुर्थ में किसी पापग्रह की दृष्टि हो।

(औ) पंचम में पाप षष्टंश हो।

हृदय रोग का प्रकार

हृदय रोग कई प्रकार के होते हैं। दीर्घकालीन अध्ययनों, अनुसंधानों से एवं भारतीय ज्योतिष के मूलभूत सिद्धांतों के आधार पर जो निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं, तदनुसार—

(१) यदि सूर्य हृदय रोग का सूचक हो तो उच्च रक्तचाप या हृदय संयंत्र में कोई विकार से हृदय रोग होता है। ऐसे रोगियों में जिन्हें चिकित्सक "अन्जाइना" कहते हैं, सूर्य को प्रधान कारण देखा गया है।

(२) मंगल से भी उच्च रक्तचाप ही हृदय रोग का कारण देखा गया है।

(३) शनि दोषकारक हो तो हृदय संयंत्र में कोई दोष, हृदय संयंत्र की शिथिलता, कार्य करने की कम क्षमता, पक्षाघात या कम रक्तचाप से सम्बन्धित हृदय रोग देखा गया हैं।

(४) राहु कारण हो तो मानसिक हीन भावना, किसी प्रकार के भय, आतंक, शोक, दुर्घटना से सम्भावित हृदय रोग होता है।

राहु के कारण में हृदयसंयंत्र में दोष (मुख्यतया हृदय में छिद्र) भी देखा गया है।

(५) केतु कारण हो तो भय, आतंक, शोक, प्रेतबाधा, मंत्र-तंत्र, जादू आदि का भ्रम इत्यादि के कारण हृदय रोग होता है।

(६) यूरेनस हृदय रोग का कारण हो तो किसी आकस्मिक भय, दुर्घटना, शोक समाचार के कारण अथवा हृदय संयंत्र की दुर्बलता या कम रक्तचाप से जनित हृदय रोग होता है।

(७) प्लूटो के कारण उच्च रक्तचाप, क्रोध, उत्तेजना जनित हृदय रोग होता है।

उपरोक्त सभी योगों में यदि लग्नेश बली व शुभ हुआ तो रोग के बावजूद दीर्घायु देगा, अन्यथा नहीं।

पाश्चात्य ज्योतिर्विद हृदय रोग की कल्पना चतुर्थभाव से न कर दशम-भाव से करते हैं और शनि को मुख्यत: हृदय रोग का कारण मानते हैं, तदनुसार दशम या लग्न से शनि का कुसम्बन्ध हो तो हृदय रोग की आशका होती है लेकिन वस्तुत: ऐसे उदाहारण देखने को नहीं मिले हैं। अत: उक्त मत युक्ति संगत नहीं है। हां, यदि लग्न में दूसरा देष्काण हो तो तब ऐसा संभव है।

प्राचीन ग्रंथों में हृदय रोग के योग

यद्यपि पुराकाल में हृदयरोग का व्यापक प्रसार नहीं था, लेकिन इसका अस्तित्व तब भी था, क्योंकि पुराने ग्रंथों में 'हृदय रोग' के योग प्राप्त होते हैं :---

(१) चतुर्थभाव में राहु हो, लग्नेश पापयुक्त या पापदृष्ट हो, हीनबली हो तो हृदय रोग होता है।

(२) लग्नेश शत्रुभाव में या नीच का हो, मंगल चौथे हो शनि पापदृष्ट हो तो हृदयरोग होता है।

(३) चतुर्थ या पंचम भाव पापग्रह से युक्त हो, उक्त भाव में पापग्रह का षष्टयंश हो, शुभ ग्रह से युक्त या दृष्ट न हो तो जातक हृदय रोगी होता है—

हृद्रोगी पंचमे पापे स पापे च रसातले।
क्रूर षष्टयंश संयुक्ते शुभदृग्योग वर्जिते॥

यह तीनों योग जातक पारिजात में वर्णित हैं। अन्य ग्रंथों में भी इसी प्रकार के योग प्राप्त होते हैं, उन सबका यहाँ वर्णन करना व्यर्थ है क्योंकि उन सबका सारांश हम ऊपर दश सूत्रों ('अ' से 'ओ' तक) दे चुके हैं। यही मूलभूत सिद्धांत हैं।

कुछ उदाहरण

मेरे अपने संकलन में कुछ ऐसे व्यक्तियों की जन्मकुण्डलियां सुरक्षित हैं, जिनकी मृत्यु हृदय रोग से हो चुकी है या जो हृदय रोग से ग्रस्त रह चुके हैं।

उन में कुछ को मैं यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ। इससे ज्योतिष अध्येताओं का ज्ञानार्जन होगा।

(१) इस जातक की उच्च रक्तचाप से हृदय रोग के कारण अकस्मात मृत्यु हुई। जातक सेना में वरिष्ठ अधिकारी के पद पर (कर्नल) था। इस कुण्डली में चतुर्थ में मंगल है जो द्वितीयेशबुध (शत्रु) से युक्त है जो मारकेश भी है। सूर्य पर शनि की पापदृष्टि है, सूर्य लग्नेश होकर नीच का मारकस्थान में स्थित है। सेवा काल में ही मृत्यु हुई।

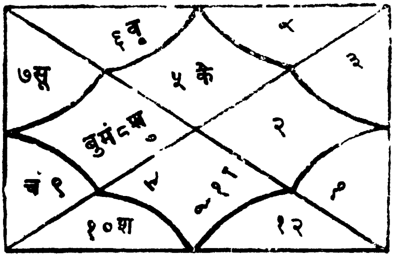

(२) यह जातक पुलिस के वरिष्ठ अधिकारी हैं। पिछले दिनों हृदयरोग से पीड़ित रहे, अब स्वास्थ्य ठीक है। आप देख रहे हैं, इसमें हृदय रोग के अनेक कारण हैं। चतुर्थ में सिंह राशि, चतुर्थ में केतु व मंगल, सूर्य पर शनि की दृष्टि, चतुर्थ मंगल चन्द्र व गुरु (मारकेश) के साथ। मंगल स्वयं मारकेश। केतु के प्रत्यन्तर में ही आघात हुआ।

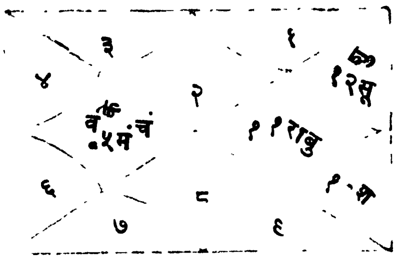

(३) यह जन्मपत्री उ० प्र० के भू० पू० मुख्य मंत्री स्व० चन्द्रभानु गुप्ता जी की है, ज्ञातव्य है कि वह हृदय रोग से ग्रस्त थे और 'प्रेसमेकर' नामक विद्युत हृदयसंयंत्र लगाये हुए थे। इस कुण्डली में चतुर्थ में सिंह राशि, सूर्य मंगल (मारकेश) के साथ है। यहाँ शुक्र स्वग्रही होने से ही उन्हें दीर्घायु प्राप्त हुई।

१	२	३	७	८	१०
के	शु ल०	सू.बु मं	रा	चं	श वृ

(४) यह जन्मकुण्डली एक आई० ए० एस० अधिकारी की है, जिनकी मृत्यु सन्तान एवं अन्य परिवारिक आघात के कारण हृदय रोग से हुई। इस कुण्डली में पंचमेश शनि, षष्ठेश भी

१	२	५	६	७
श रा	चं	शु	सू०वृ०म बु ल	के

होकर नीच का, राहु के साथ अष्टम है। अष्टमेश मंगल लग्न में है। अत: पारिवारिक आघात जनित हृदयरोग स्पष्ट है। देखें—सूत्र—'इ' और उ'—यह दोनों योग अक्षरश: घटित होते हैं।

(५) अब देखें भू० पू० प्रधानमंत्री स्व० लालबहादुर शास्त्री जी की कुण्डली। ताशकन्द समझौते के तत्काल बाद जिनका हृदयरोग से देहान्त हुआ।

१	२	३	५	६	७	८	१०	११
वृ०	प्लू०	चं ने	मं रा ल	सू बु	शु	यू	श	के

इस कुण्डली में चतुर्थभाव में यूरेनस स्थित है। इनमें सूत्र (अ) तथा हृदय रोग का प्रकार (६) सत्य घटित होता है।

(६) यह जन्म कुण्डली एक दिवंगत सनदी लेखापाल[चार्टर्ड अकाउण्टेंट] की है, जिनका हृदयरोग से १९७७ में देहान्त हुआ। इस कुण्डली में शनि षष्ठेश व सप्तमेश होकर [मारकेश] चौथे में है और शनि पर मंगल की पापदृष्टि है वहाँ पर सूत्र [अ, ई] सत्य घटित हैं।

२	३	५	८	९	११	१२
मं	रा चं	ल	श	के	सू बृ	बु शु

(७) अब एक कुण्डली ऐसी भी प्रस्तुत कर रहा हूँ, जिसमें हृदयरोग का कोई योग सामान्यत: दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है। सम्भव है जन्म समय शुद्ध न हो या सूक्ष्म गणना करने पर हृदयरोग का कारण ज्ञात हो सके। यह जातक मुख्य अभियन्ता के पद पर थे और १९७७ में हृदयरोग से देहावसान हुआ।

१	२	३	४	५	७	९
रा	मं	वृ ल०	सू	बु शु	चं के	श

वैसे पंचम में केतु मारकेश चन्द्रमा के साथ है। वक्रीशनि जो अष्टमेश होने से मारकेश भी है—चौथे भाव पर पूर्ण दृष्टि है। मेरी समझ से यही योग इसमें कारण है। इन्हें यह भ्रम था कि इनके निमित्त किसी शत्रु ने तंत्र-मंत्र किया है, जो पंचमकेतु के कारण उचित भी है।

विदेश प्रवास योग

विदेश प्रवास के सम्बन्ध में महर्षि गर्ग, लोमश यवनाचार्य आदि ने कुछ योगों का उल्लेख किया है। निम्न योग में से किसी योग के होने पर जातक स्वदेश छोड़कर विदेश में प्रवास करता है अथवा विदेश यात्रा बहुत होती है—

१—मेष का सूर्य नवम हो।
२—मीन का चन्द्रमा नवम हो।
३—धन या कर्क का मंगल नवम हो।
४—कुंभ या वृष का बुध नवम हो।
५—सिंह या वृश्चिक का गुरु नवम हो।
६—मकर या मिथुन का शुक्र नवम हो।
७—कन्या या तुला का शनि नवम हो।
८—कर्क का सूर्य व्यय में हो।
९—मिथुन का चन्द्र व्यय में हो।
१०—तुला या मीन का मंगल व्यय में हो।
११—वृष या सिंह का बुध व्यय में हो।
१२—वृश्चिक या कुंभ का गुरू व्यय में हो।
१३—मेष या कन्या का शुक्र व्यय में हो।
१४—धनु या मकर का शनि व्यय में हो।
१५—मकर का सूर्य नवम हो।
१६—धनु का चन्द्र नवम हो।
१७—कन्या या मेष का मंगल नवम हो।
१८—वृश्चिक या कुंभ का बुध नवम हो।
१९—वृष या सिंह का गुरू नवम हो।
२०—तुला या मीन का शुक्र नवम हो।
२१—मिथुन या कर्क का शनि नवम हो।
२२—मेष का सूर्य व्यय में हो।
२३—मीन का चन्द्र व्यय में हो।
२४—धनु या कर्क का मंगल व्यय में हो।
२५—कुंभ या वृष का बुध व्यय में हो

२६—वृश्चिक या सिंह का गुरु व्यय में हो।
२७—मिथुन या मकर का शुक्र व्यय में हो।
२८—कन्या या तुला का शनि व्यय में हो।
२९—सूर्य मीन का व्यय में हो।
३०—चन्द्र कुंभ का व्यय में हो।
३१—मंगल वृश्चिक का या मिथुन का व्यय में हो।
३२—बुध मकर या मेष का व्यय में हो।
३३—गुरु कर्क या तुला का व्यय में हो।
३४—शुक्र वृष या धनु का व्यय में हो।
३५—शनि सिंह या कन्या का व्यय में हो।

इन योगों में आचार्यों ने लग्नेश, सुखेश व पंचमेश का नवम तथा व्यय-भाव से सम्बन्ध को ही विशेष कारण माना है।

महर्षि गर्ग (गर्ग संहिता) तथा यवनाचार्य का कथन है कि जन्म कुण्डली में निम्न योग होने पर जातक जन्म स्थान से बाहर विदेश में प्रवास करता है। विदेश में सम्पत्ति अर्जित करता है। सम्भव है कृपण तथा पाखण्डी भी हो—

[१] सूर्य व्यय में मिथुन का हो।
[२] वृष का चन्द्र व्यय में हो।
[३] कुंभ या कन्या का मंगल व्यय में हो।
[४] कर्क या मेष का बुध व्यय में हो।
[५] तुला या मकर का गुरु व्यय में हो।
[६] सिंह या मीन का शुक्र व्यय में हो।
[७] वृश्चिक या धनु का शनि व्यय में हो।

कुल १२ योग बनते हैं।

आचार्य लोमश ने निम्न योगों को भी विशेष प्रवास सूचक कहा है। इस प्रकार और भी १२ योग बनते हैं—

[१] मेष का सूर्य द्वितीय हो।
[२] मीन का चन्द्र द्वितीय हो।
[३] धनु या कर्क का मंगल दूसरे हो।
[४] कुंभ या वृष का बुध दूसरे हो।
[५] सिंह या वृश्चिक का गुरु दूसरे हो।
[६] मकर या मिथुन का शुक्र दूसरे हो।
]७] कन्या या तुला का शनि दूसरे हो।

संगीतज्ञ योग

ज्योतिर्विज्ञान जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उपयोगी एवं मार्गदर्शक है लेकिन इस तथ्य को बहुत कम व्यक्ति जानते हैं या इसका लाभ कुछ ही लोग उठा पाते हैं। प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करने के बाद शिशु को किस विषय में उच्च शिक्षा दी जाय, किस क्षेत्र में उसे सफलता अधिक मिलेगी और उसमें किस प्रकार की प्रतिभा है ? इनमें ज्योतिर्विज्ञान अत्यन्त सहायक है। प्राय: अभिभावक अपनी बुद्धि से अपने रूचि की, या अपने दृष्टिकोण के अनुसार भविष्य में सर्विस की संभावनाओं को देखते हुए उनके विषय निर्धारित कर देते हैं, अन्तत: ऐसे छात्र बहुधा उस विषय में सफल नहीं होते।

इसी प्रसंग में गायन, नृत्य, नाटक आदि अभिनय एवं कला में कौन से व्यक्तियों को सफलता मिलती है और रुचि होती है, ऐसे कुछ योगों का उल्लेख हम कर रहे हैं। प्राचीन ग्रंथकारों—महर्षि पाराशर, लोमश, गर्ग तथा यवनाचार्य प्रभृति ने ऐसे योगों का वर्णन किया है। ऐसे योगों के लिए आचार्यों ने पंचम, नवम व एकादशभावों को महत्वपूर्ण माना है। प्रत्यक्षत: यह योग कहाँ तक घटित होते हैं यह परीक्षण एवं अनुसंधान का विषय है और संगीतज्ञों, गायकों, अभिनेताओं के जन्मपत्रियों में इन योगों को देखा जाना चाहिये।

(१) धनु राशि का सूर्य पंचम में हो।
(२) धनु राशि का सूर्य नवम हो।
(३) कुम्भ का सूर्य एकादश में हो।
(४) मीन का सूर्य पंचम हो।
(५) वृश्चिक का चन्द्र पंचम हो।
(६) वृश्चिक का चन्द्र नवम हो।
(७) मकर का चन्द्र दशम हो।
(८) कुम्भ का चन्द्रमा पंचम हो।
(९) पंचम में मंगल सिंह मीन का हो।
[१०] नवम मंगल सिंह या मीन का हो।

[११] एकादश में मंगल तुला या वृष का हो ।
[१२] वृश्चिक या मिथुन का मंगल पंचम हो ।
[१३] बुध पंचम में तुला या मकर का हो ।
[१४] बुध नवम में तुला या मकर का हो ।
[१५] बुध धनु या मीन का एकादश हो ।
[१६] बुध मकर या मेष का पँचम हो ।
[१७] गुरु मेष या कर्क का पँचम हो ।
[१८] गुरु मेष या कर्क का नवम हो ।
[१९] गुरु मिथुन या कन्या का एकादश हो ।
[२०] गुरु कर्क या तुला का पँचम हो ।
[२१] शुक्र कन्या या कुम्भ का पँचम हो ।
[२२] शुक्र कन्या या कुम्भ का नवम हो ।
[२३] शुक्र वृश्चिक या मेष का एकादश हो ।
[२४] शुक्र धनु या वृष का पँचम हो ।
[२५] शनि वृष या मिथुन का पँचम हो ।
[२६] शनि वृष या मिथुन का नवम हो ।
[२७] शनि कर्क या सिंह का एकादश हो ।
[२८] शनि सिंह या कन्या का पँचम हो ।

इस प्रकार मुख्य रूप से २८ योग प्राप्त होते हैं ।

दुर्भाग्य से संगीत के लब्ध प्रतिष्ठविद्वानों के जन्मपत्र मेरे संकलन में नहीं हैं । व्यक्तियों के जो जन्मपत्र मेरे संकलन में हैं उनमें श्री हरिपद मुखर्जी (कन्या का गुरू एकादश), श्री राजकपूर (मीन का मंगल नवम में), रवीन्द्रनाथ टैगोर (कर्क का गुरू पँचम) आदि के जन्मकुण्डलियों में उपरोक्त योग उपलब्ध हैं ।

वीर गति प्राप्ति के योग ?

शासन एवं शासक वर्ग से विरोध एवं वैचारिक मतभेद होने तथा राजद्वार में मृत्यु के अनेक कारण हो सकते हैं, जैसे चोरी, दुराचार, हत्या आदि के अभियुक्त के रूप में शासन से मृत्यु दण्ड प्राप्त होना अथवा सेना पुलिस आदि राजकीय सेवा में वीर गति प्राप्त करना अथवा स्वतंत्रता आदि जनहित के उद्देश्य से वीरगति प्राप्त होना (जिसे तत्कालीन शासन की दृष्टि में देशद्रोह आदि ही कहा जायगा) इत्यादि।

हमारे ज्योतिष के प्राचीन आचार्यों महर्षि लोमश, यवनाचार्य, गर्गाचार्य आदि ने "राजद्वार में मृत्यु" के कुछ योगों का विवेचन किया है, जो निम्न प्रकार से हैं। इन योगों में से कौन से योग में किस प्रकार एवं किस कारण से राजद्वार में मृत्यु होती है और यह योग समय की कसौटी पर कितने सही उतरते हैं यह ज्योतिषशास्त्र के अध्येताओं के लिए एक अनुसन्धान का उत्तम विषय हो सकता है।

अ (१) बुध तुला का सप्तम में हो।
(२) बुध वृश्चिक का अष्टम में हो।
(३) बुध मकर का सप्तम में हो।
(४) बुध कुंभ का अष्टम में हो।
(५) बृहस्पति मेष का सप्तम में हो
(६) बृहस्पति वृष का अष्टम में हो।
(७) बृहस्पति कर्क का सप्तम में हो।
(८) बृहस्पति सिंह का अष्टम में हो।
(९) शुक्र कन्या का सप्तम में हो।
(१०) शुक्र तुला का अष्टम हो।
(११) शुक्र कुम्भ का सप्तम हो।
(१२) शुक्र मीन का अष्टम में हो।
(१३) शनि वृष का सप्तम हो।
(१४) शनि मिथुन का अष्टम में हो।

(१५) शनि मिथुन का सप्तम हो ।
(१६) शनि कर्क का अष्टम में हो ।
(१७) सूर्य धनु का सप्तम में हो ।
(१८) सूर्य मकर का अष्टम में हो ।
(१९) चन्द्रमा वृश्चिक का सप्तम में हो ।
(२०) चन्द्रमा धनु का अष्टम में हो ।
(२१) मंगल मीन का सप्तम हो ।
(२२) मंगल मेष का अष्टम हो ।
(२३) मंगल सिंह का सप्तम हो ।
(२४) मंगल कन्या का अष्टम हो ।

आ (१) सूर्य कुम्भ का धन स्थान में हो ।
(२) क्षीण चन्द्रमा मकर का द्वितीय में हो [पूर्ण चन्द्र में नहीं] ।
(३) पाप ग्रह से युक्त बुध धनु का या मीन का द्वितीय में हो ।
(४) मंगल तुला या वृष का धन स्थान में हो ।
(५) शनि कर्क या सिंह का द्वितीय हो ।

उपरोक्त योगों का उल्लेख यवनाचार्य तथा लोमश जी ने किया है, साथ ही उपरोक्त योगों में बतलाया है कि ऐसा व्यक्ति चोर तथा दुराचारी भी हो सकता है । अत: ऐसी कल्पना करना स्वाभाविक है कि ऐसे योगों में राजदण्ड के फलस्वरूप भी राजद्वार में मृत्यु की सम्भावना बनती है ।

इ [१] महर्षि गर्गाचार्य के मत से मिथुन का सूर्य षष्ट में हो तो राजा [शासन] से विरोध होता है । ऐसी स्थिति में शासन तंत्र के विरोध स्वरूप राजद्वार में मृत्यु की सम्भावना बनती है ।

उ [१] कन्या का चन्द्रमा अष्टम हो ।
[२] तुला का सूर्य अष्टम में हो ।

इन योगों को यवनाचार्य तथा गर्गाचार्य दोनों ने समान रूप से व्यक्त किया है लेकिन इन योगों में स्पष्ट नहीं है कि कारण क्या होगा ।

इस प्रकार से पूर्वाचार्यों ने राजद्वार में मृत्यु के २४+५+१+२=३२ योग बतलाये हैं ।

दीर्घायु योग

पिछली आठ शताब्दियों से भारत में ज्योतिर्विज्ञान, विशेषत: इसकी फलित शाखा पर कोई अनुसंधान कार्य नहीं हुआ है। इसकी खगोल शाखा के अन्तिम यशस्वी विद्वान तो भास्कराचार्य हुए लेकिन फलित शाखा में आचार्य वराह मिहिर (५७ वर्ष ई० पूर्व) के बाद कोई ऐसा विद्वान हुआ ही नहीं है, इस तरह पिछले दो हजार वर्षों से हम प्राचीन ग्रंथकारों, आचार्यों के कथन का ही, उनके सिद्धान्तों का ही अन्धानुकरण करते चले आ रहे हैं।

यद्यपि प्राचीन ग्रंथकारों ने जो सिद्धांत स्थापित किये हैं, फलित ज्योतिष के जो रूप प्रस्तुत किये हैं, वे वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित होंगे और उन्होंने प्रत्यक्ष कसौटी पर भी उनकी परीक्षा की होगी, अत: हमें उनके सिद्धांतों पर विश्वास होना ही चाहिए कि वे सत्य घटित होंगे। फिर भी वर्तमान देश, काल एवं परिस्थितियों में वे सिद्धान्त यथार्थत: कहाँ तक सत्य घटित होते हैं, उनके आधार पर किसी व्यक्ति के बारे में भविष्यवाणी करना कहाँ तक उचित होगा? हमने इन सिद्धान्तों पर अनुसन्धान करने या इनकी सत्यता जानने का कोई प्रयास ही नहीं किया है। ऐसी स्थिति में नये अनुसन्धानों का तो प्रश्न ही नहीं उठता। आज के युग में ज्योतिर्विदों एवं ज्योतिषशास्त्र की यह स्थिति बहुत ही लज्जाजनक है। यह हमारी कर्तव्य हीनता का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

अब समय आ गया है कि हम प्राचीन ग्रंथों, ग्रंथकारों का केवल अन्धानुकरण न करें अपितु उन्हें प्रत्यक्षत: कसौटी पर प्रमाणित करें, देखें उनमें कौन कितने सत्य उतरते हैं। विशेषत: इस विज्ञान के छात्रों, अनुसन्धान कर्ताओं के लिये यह अति विशद क्षेत्र है, इस विधा पर, इस अनुसंधान पर अनेकों ग्रंथ तैयार हो सकते हैं।

इस दिशा में आचार्य लोमश, गर्गाचार्य, यवनाचार्य, पाराशर आदि के मौलिक ग्रंथों में वर्णित विभिन्न योगों पर अनुसन्धान होना आवश्यक है।

दीर्घायु योग

(अ) पूर्ण सिंह का लग्न में, या वृश्चिक का चतुर्थ हो।

(आ) चन्द्रमा तुला का चतुर्थ या कर्क का लग्न में हो।

(इ) मंगल लग्न में मेष या वृश्चिक का हो, अथवा चौथे में कर्क या कुम्भ का हो।

(ई) बुध मिथुन या कन्या का लग्न म हो, अथवा कन्या या धनु का चौथे में हो।

(उ) गुरु धनु या मीन का लग्न में हो, अथवा मीन का मिथुन का चतुर्थ हो।

(ऊ) शुक्र वृष या तुला का लग्न में हो, अथवा सिंह या मकर का चतुर्थ हो।

(ए) शनि मेष या वृष का चतुर्थ हो अथवा मकर या कुम्भ का लग्न में हो।

दीर्घायु और वलिष्ठ

जन्म कुण्डली में निम्न योग होने पर जातक दीर्घायु तो होता ही है, साथ ही उसका शरीर भी स्थूल एवं वलिष्ठ (अच्छे डील डौल का) होता है—

(१) चन्द्रमा सिंह का द्वितीय हो।

(२) सूर्य कन्या का द्वितीय हो।

(३) मंगल वृष या धनु का द्वितीय हो।

(४) बुध कर्क या तुला का द्वितीय हो।

(५) गुरु मकर या मेष का दूसरे हो।

(६) शुक्र मिथुन या वृश्चिक का दूसरे हो।

(७) शनि कुम्भ या मीन का दूसरे हो।

दीर्घायु योग

यवनाचार्य ने निम्न योगों को दीर्घायु सूचक कहा है—

(१) तुला का सूर्य पँचम हो।

(२) कन्या का चन्द्र पँचम हो।

(३) मंगल मिथुन या मकर का पँचम हो।

(४) बुध वृश्चिक या सिंह का पँचम हो।

(५) गुरु कुम्भ या वृष का पँचम हो।

(६) शुक्र कर्क या धनु का पँचम हो।

(७) शनि मीन या मेष का पँचम हो।

मेरे अपने संग्रह में जो जन्मपत्र हैं, उनका अध्ययन करने पर उपरोक्त योग ९५ प्रतिशत सत्य उतरे हैं। इस योग को महर्षि लोमश, गर्ग व यवनाचार्य ने एक मत से दीर्घायु सूचक माना है।

श्री हनुमान जी, श्री रामचन्द्र जी, रावण, महावीर जी, महात्माईसा, सम्राट हर्षवर्धन, शाहजादा, श्रीमती ऐनीबेसेंट, महात्मागांधी, पं० जवाहर लाल नेहरू, जार्जपंचम, फ्रांसिस जोसिफ [आस्ट्रिया का सम्राट], अलक्जेंडर [जार-रूस], अल्फान्जो [स्पेन का सम्राट], सम्राट अब्बास [मिश्र], सौल लोन कार्न [श्याम नरेश], जार्ज [यूनान], महाराव बोधा जी, महाराजा छत्रसाल, महाराजा बड़ौदा, महाराजा माधवराव सिंधे, नवाब भोपाल, महाराजा भवानी सिंह [झालावाड़] महाराजा सवाई माधोसिंह [जयपुर], महाराजा भूपसिंह [उदयपुर] नवाब जावरा, महाराजा बड़वानी, महराजा सौभाग्यसिंह [नरसिंहगढ़, म० प्र०], राघोगढ़ नरेश कुशल नरेश, खैरागढ़ नरेश, महाराज पिपलौदा, महाराजा सोलन श्री बल्लभाचार्य जी [वैष्णवाचार्य], गोस्वामी गोकुलनाथ जी, श्री रामकृष्ण परमहंस, वासुदेवानन्द सरस्वती, श्री शिव कुमार शास्त्री जी महामहोपाध्याय और भारतेन्दु बाबू हरीशचन्द्र* आदि के जन्म कुण्डली में उक्त योग विद्यमान हैं। अतः यह योग अनुभूत सत्य है।

दीर्घायु सूचक केवल इतने ही नहीं और भी योग हैं।

* भारतेन्दु का अल्पायु या मध्यायु होना एक अपवाद है।

मातृ कुल सुख का विचार

प्रत्येक जातक के जन्म होने पर जहाँ यह देखा जाता है कि वह माता-पिता के हेतु सुख दायक तो है ? कहीं माता-पिता को अनिष्ट कारक तो नहीं है ? वहीं यह भी देखा जाता है कि अपने मातृकुल (ननिहाल) के हेतु जातक कैसा है ? और उसे ननिहाल से सुख प्राप्त होगा या नही ? कुछ जातकों का पालन पोषण ही ननिहाल में होता है और ननिहाल के माध्यम से ही भाग्योदय होता है । संहिता ग्रंथों में प्राचीन आचार्यों ने इस विषय पर भी कुछ योगों का वर्णन किया है ।

मातृ कुल सुख योग

जातक की कुण्डली में निम्न योग होने पर यवनाचार्य के मत से ननिहाल से विशेष सम्बन्ध रहता है --

दशम स्थान में कोई भी ग्रह अपने घर (स्वगृही) का होकर स्थित हो ।

अर्थात् —

(१) सिंह का सूर्य दशम हो ।
(२) कर्क का चन्द्र दशम हो ।
(३) मेष या वृश्चिक का मंगल दशम हो ।
(४) मिथुन या कन्या का बुध दशम हो ।
(५) धनु या मीन का गुरू दशम हो ।
(६) वृष या तुला का शुक्र दशम हो ।
(७) मकर या कुंभ का शनि दशम हो ।

यद्यपि ज्योतिष ग्रंथों में ननिहाल का विचार षष्ठ भाव से होता है लेकिन यवनाचार्य ने दशम भाव से ही इसका सम्बन्ध माना है ।

मातुल सुख हीनता

संहिता ग्रंथों में निम्न योगों को मातुल सुख हानिकारक माना गया है :—

(१) वृष का सूर्य षष्ठ हो ।
(२) मेष का चन्द्र षष्ठ हो ।
(३) मकर या सिंह का मंगल षष्ठ हो ।

(४) मीन या मिथुन का बुध षष्ठ हो।
(५) धनु या कन्या का गुरू षष्ठ हो।
(६) तुला या वृश्चिक का शनि षष्ठ हो।
(७) कर्क या कुम्भ का शुक्र षष्ठ हो।
(८) वृश्चिक का सूर्य व्यय में हो।
(९) तुला का चन्द्र व्यय में हो।
(१०) कर्क या कुम्भ का मंगल व्यय में हो।
(११) कन्या या धनु का बुध व्यय में हो।
(१२) मिथुन या मीन का गुरू व्यय में हो।
(१३) मकर या सिंह का शुक्र व्यय में हो।
(१४) मेष या वृष का शनि व्यय में हो।

यहाँ पर लोमश जी ने षष्ठ, व्यय व नवम भाव से इसका सम्बन्ध माना है।

लोमश जी ने निम्न योगों को भी मातुल सुख में बाधक माना है। इन योगों में तृतीय तथा षष्ठभाव के सम्बन्ध को कारण माना है।

मातुलानी से सम्बन्ध

निम्न योगों को मातुल सुख में बाधक तो माना ही गया है साथ ही यह भी कहा गया है कि जातक का मातुलानी से यौन सम्बन्ध हो सकते हैं (जातक महिला हो तो उसके मामा से सम्बन्ध हो सकते हैं) यह योग कहाँ तक सटीक है यह अनुभव व अनुसंधान का विषय है। मुख्य बात तो यह है कि दोनों की आयु का विचार करना होगा। सामान्यत: मामी–भानजे या मामा–भानजी में आयु का पर्य्याप्त अन्तर होगा अत: यह योग घटित होना संभव नहीं हैं। जहाँ मामी–भानजा या मामा–भानजी समवयस्क हों सायद वहाँ ऐसे सम्बन्ध घटित हों—

(१) वृश्चिक में सूर्य षष्ठ हो।
(२) तुला का षष्ठ चन्द्र हो।
(३) मंगल कर्क अथवा कुम्भ का षष्ठ हो।
(४) बुध धनु या कन्या का षष्ठ हो।
(५) गुरू मिथुन या मीन का षष्ठ हो।
(६) शुक्र सिंह या मकर का षष्ठ हो।
(७) शनि मेष या वृष का षष्ठ हो।

"कुलदीपक" योग

जीवन में सभी प्राणी यशस्वी जीवन की कामना करते है लेकिन यह सभी को सुलभ नहीं होता। ज्योतिष शास्त्र की दृष्टि से यशस्वी जीवन के अनेक योग हैं लेकिन इन सब में "कुलदीपक" योग महत्वपूर्ण है। ऐसा विश्वास है कि 'कुलदीपक" योग में उत्पन्न जातक अपने कुल एवं वंश मे सर्वोपरि प्रसिद्ध व यशस्वी होता है। प्राय: ऐसा जातक कवि, साहित्यकार, ग्रंथकार, कलाकार, संगीतज्ञ, न्यायविद, चिकित्सक, राजनैतिक नेता, आविष्कारक, वैज्ञानिक, पत्रकार, खिलाड़ी, अभिनेता, गायक, प्रशासक आदि किसी भी क्षेत्र में सफलता प्राप्त कर राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति अर्जित कर मरणोपरांत भी अपना नाम एवं यश छोड़ जाते है।

ज्योतिष के सामान्य सिद्धान्तों के अनुसार सामाजिक यश-प्रतिष्ठा का स्थान नवम भाव है और उसका कारक ग्रह "गुरु" तथा 'सूर्य" है। अत: यदि किसी जातक के जन्म कुण्डली में—

(१) नवम भाव शुभ ग्रहों से युक्त या दृष्टि हो।

(२) नवमेश बलवान व अपने भाव को देखता हो तथा शुभ स्थान में स्थित हो।

(३) वृहस्पति या सूर्य बलयुक्त होकर नवम भाव में स्थित हों, अथवा कर्म, लाभ, धन, लग्न, पंचम भाव आदि शुभ स्थानों में स्थित होकर नवम भाव को देखते हों, तो ऐसा जातक यशस्वी व समाज में प्रतिष्ठित होगा।

ज्योतिष की एक मान्यतानुसार—

"दशमेङ्गारको यस्य सजात: कुलदीपक:" दशम भाव में मंगल के स्थित होने पर जातक "कुलदीपक" होता है, लेकिन यह सूत्र सर्वथा एवं सर्वतोभावेन घटित नहीं होगा। विशेषकर यदि मंगल षष्ठेश, अष्टमेश, व्ययेश होकर दशम हो अथवा पापयुक्त, अस्त, नीच का हो।

कुछ अन्य ग्रंथकारों ने निम्न योगों को "कुलदीपक" योग कहा है। यहां भी ग्रहों की स्थिति तथा बलाबल का विचार करना ही होगा। इस दृष्टि से मेष, सिंह, कन्या या मेष राशि का दशम मंगल ही "कुलदीपक" सूचक है।

(१) सूर्य धनु का नवम हो।
(२) सूर्य मकर का दशम हो।
(३) मंगल सिंह का नवम हो।
(४) मंगल कन्या का दशम हो।
(५) मंगल मीन का नवम हो।
(६) मंगल मेष का दशम हो।
(७) बुध तुला का नवम हो।
(८) बुध वृश्चिक का दशम हो।
(९) बुध मकर का नवम हो।
(१०) बुध कुंभ का दशम हो।
(११) गुरु मेष का नवम हो।
(१२) गुरु कर्क का नवम हो।
(१३) गुरु वृष का दशम हो।
(१४) गुरु सिंह का दशम हो।
(१५) कन्या का शुक्र नवम हो।
(१६) कुंभ का शुक्र नवम हो।
(१७) शुक्र तुला का दशम हो।
(१८) शुक्र मीन का दशम हो।
(१९) चन्द्रमा वृश्चिक का नवम हो।
(२०) चन्द्रमा धनु का दशम हो।
(२१) वृष का शनि नवम हो।
(२२) मिथुन का शनि दशम हो।
(२३) मिथुन का शनि नवम हो।
(२४) कर्क का शनि दशम हो।

कभी-कभी भाव विशेष (भावेश) से सम्बन्धों के कारण शत्रु क्षेत्री व नीचस्थ होते भी ग्रह योगकारक हो जाते हैं, यहां पर योग संख्या—४, ८, २, १३, १५, १६, २४ इसी प्रकार के है फिर भी उनका पंचम से सम्बन्ध है। महर्षि लोमश के अनुसार ऐसा व्यक्ति राजा के समान प्रतापी, यशस्वी तथा

कुल में प्रधान 'कुलदीपक' होता है। यवनाचार्य, गर्ग आदि ने भी ऐसे जातक के कुलदीपक होने की पुष्टि की है। यवनाचार्य के मत से ऐसा जातक तार्किक व सर्वशास्त्र विशारद होता है। गर्गाचार्य के मत से संगीत, नाटक आदि में भी प्रवीण होता है। इस प्रकार कुल २४ योग बनते हैं। आचार्यों ने इस योग में नवम, दशम व पंचम भावों से इस योग का सम्बन्ध माना है। नवम भाव का सम्बन्ध तो इससे प्रत्यक्ष है क्योंकि पंचम भाव बुद्धि का और दशम राजसम्मान व सामाजिक प्रतिष्ठा का है और ऐसे यशस्वी जीवन के निमित्त बुद्धिमान होना जरूरी है और साथ ही ऐसे व्यक्ति को राजसम्मान मिलना भी निश्चित है। अतः पंचम व दशम भाव से इस योग का सम्बन्ध प्राचीन आचार्यों ने माना है। यह भी उचित ही है कि केवल मंगल ही 'कुलदीपक'' सूचक नहीं हो सकता, दूसरे ग्रहों से भी 'कुलदीपक'' योग बनता है।

उदर व्याधि सूचक योग

उदर व्याधि (पेट के रोग) अनेक प्रकार के होती हैं भिन्न-भिन्न योगों में किस प्रकार की उदर व्याधि होगी, इसका निर्धारण ज्योतिष शास्त्र के सिद्धांतों से हो सकता है। सामान्यत: उदर व्याधि से वे लोग अधिक पीड़ित रहते हैं, जिनका जन्म लग्न १० से २० अंश के मध्य में हो। वैसे ज्योतिषशास्त्र में उदर का स्थान पंचम से लेकर सप्तम तक है यथा पंचम (क्रोड), षष्ठ (कटि) और सप्तम (वस्ति) का सूचक है। उदर की सीमा भी क्रोड से वस्ति तक होती है। अत: पंचम से सप्तम तक (मेरे विचार से कदाचित अष्टम भाव तक) स्थित ग्रहों के आधार पर, उनके वातपित्तादि धातु के अनुसार उदर रोग को निश्चित किया जाना चाहिए। वैसे ग्रंथों में विभिन्न उदर रोगों के बारे में अलग-अलग योग भी प्राप्त होते हैं, लेकिन वर्तमान में नये-नये रोगों के अनुसार उनकी व्याख्या करना आवश्यक होगा। पित्त, पथरी गुर्दे की पथरी, आंत्रशोथ, आंत्र-पुच्छ वृद्धि, पाचन यंत्र (लीवर) का विकार, वृक्क (गुर्दे) का विकार, उदर व्रण (पेट का ट्यूमर), आंत्रक्षय (आंतों की टी० वी०), कर्कट (कैंसर) आदि विभिन्न उदर रोगों का निर्धारण इन भावों में आधार पर निश्चित किया जाता है। संक्षेप में योग कारक सूर्य होने पर पित्तविकार पित्तपथरी आदि, चन्द्रमा से आंतों का सूजन, आंत्रपुच्छ वृद्धि, मंगल से व्रण (अल्सर, ट्यूमर, कैंसर आदि) बुध से घाव (अल्सर) गुरु से पाचन यंत्र व वृक्क विकार, शुक्र से आंत्रक्षय, आंव (कोलाइ-टिस), शनि से पाचन यंत्र (लीवर व तिल्ली) विकार अथवा आंत्रक्षय, आदि राहुकेतु से कृमिविकार (कीटाणुजन्य व्याधि, कीड़े) आदि।

विस्तार में ग्रहों की स्थिति, भावगत राशि, ग्रहदृष्टि, नवमांश आदि को देखने पर रोग का सही-सही निर्धारण किया जा सकता है।

यदि उदर रोगों की विस्तार से व्याख्या की जाय तो इस पर एक ग्रंथ ही बन जायगा। इस लेख में केवल इतना दिग्दर्शन करना है कि कौन से योगों में उदर व्याधि की सम्भावनायें अधिक होती है।

महर्षि लोमश जी ने पंचम, द्वितीय तथा अष्टम भावों का उदर व्याधि से सम्बन्ध माना है। उनके अनुसार निम्न योगों में उदर व्याधि की सम्भावनायें निम्न रूप से होती हैं-

(१) सूर्य वृष का द्वितीय हो।
(२) मेष का चन्द्रमा द्वितीय हो।
(३) सिंह या मकर का मंगल द्वितीय हो।
(४) मीन या मिथुन का बुध द्वितीय हो।
(५) कन्या या धनु का गुरू द्वितीय हो।
(६) तुला या वृश्चिक का शनि द्वितीय हो।
(७) कर्क या कुंभ का शुक्र द्वितीय हो।
(८) वृश्चिक का सूर्य अष्टम हो।
(९) तुला का चन्द्र अष्टम हो।
(१०) कर्क या कुंभ का मंगल अष्टम हो।
(११) कन्या या धनु का बुध अष्टम हो।
(१२) मीन या मिथुन का गुरु अष्टम हो।
(१३) सिंह या मकर का शुक्र अष्टम हो।
(१४) मेष या वृष का शनि अष्टम हो।

यदि लग्न का उदय दस से तीस अंश के मध्य का हो तो योग प्रबल समझना चाहिए।

ग्रहणी रोग

आचार्य गर्ग तथा यवनाचार्य ने निम्न योगों को ग्रहणी [डायरिया] रोग-कारक कहा है—

[१] तुला का सूर्य अष्टम हो।
[२] कन्या का चन्द्र अष्टम हो।
[३] मिथुन या मकर का मंगल अष्टम हो।
[४] सिंह या वृश्चिक का बुध अष्टम हो।
[५] वृष या कुंभ का गुरू अष्टम हो।
[६] कर्क या धनु का शुक्र अष्टम हो।
[७] मेष या मीन का शनि अष्टम हो।

शूलरोग योग

उदर रोगो में 'शूलरोग' भी है। महर्षि लोमश के मतानुसार निम्न योग कुण्डली में होने पर जातक शूल रोगी होता है।

[१] सूर्य धनु का तीसरे हो।
[२] चन्द्र वृश्चिक का तीसरे हो।
[३] मंगल सिंह या मीन का तीसरे हो।
[४] बुध तुला या मकर का तीसरे हो।
[५] गुरु मेष या कर्क का तीसरे हो।
[६] शुक्र कन्या या कुंभ का तीसरे हो।
[७] शनि वृष या मिथुन का तृतीय हो।

गृह-भूमि का शोधन

भोजन, वस्त्र और आवास यह मनुष्य की तीन आवश्यकीय जरूरतें हैं। मनुष्य अपनी सुरक्षा तथा निवास हेतु हजारों लाखों रूपये व्यय करके गृह निर्माण करता है ताकि उसमे सुख शान्ति से रह सके। लेकिन कुछ भूमि या उक्त भूमि मे बने कुछ भवन रोग, शोक, भय, उपद्रव, हानि, सन्तानहीनता, दरिद्रता, भूतप्रेतबाधा मृत्युभय, पशुहानि आदि अनिष्टफल सूचक भी हो जाते हैं और गृहस्वामी के लिये सुखदायक के बजाय दुख एवं मृत्युदायक हो जाते हैं। देश में ऐसे अनेक भूतहा भवन विद्यमान हैं -जहाँ रहना तो दूर, उसके निकट जाने मे भी मनुष्य डरता है। लखनऊ में भी एक ऐसा ही भूतहा भवन [जिसका मूल्य लाखों में होगा] प्रसिद्ध है --जिसके अन्दर प्रवेश करने का कोई भी साहस नहीं रखता है।

वांछित भूमि और उस पर बना मकान क्या दोषरहित सुखशान्तिमय होगा ? इसके बारे मे गृहनिर्माण करने से पहले विचार करना आवश्यक है। ज्योतिषशास्त्र में भी इस विषय पर पर्याप्त साहित्य है जिसके आधार पर भूमि या भवन के दोषों का ज्ञान होता है। भारत मे पुरातन काल से ही गृह-निर्माण से पहले ज्योतिष के आधार पर भूमि के गुणदोषों का विचार किया जाता रहा है। अब शहरीकरण के कारण अपने इच्छानुकूल भूमि (प्लाट/या मकान) प्राप्त करना उतना सरल नहीं है क्योंकि अधिकांशत: शहरी सम्पत्ति का शासन द्वारा अधिग्रहण एव उसके द्वारा लाटरी पद्धति से भूमिखण्ड भवन का आवटन होता है अत: इस प्रकार की विचार पद्धति का प्रचलन कम होता जा रहा है। यह भी कारण है कि न तो इस विषय के ज्ञाता रह गये हैं और न जनता को इस उपयोगी विज्ञान के विषय में जानकारी है।

जनसाधारण की जानकारी हेतु हम संक्षेप में भूमि के गुण-दोषों के बारे में इस भारतीय पद्धति का उल्लेख कर रहे है।

भूमि के गुण–दोषों का विचार

सर्वप्रथम प्रश्न के आदि शब्द के आधार पर विचारित गृह या भूमि में शल्य का विचार करते है। ब्राह्मण आदि वर्ण से क्रमश: पुष्प, नदी, देवता,

फल का नाम उच्चारित करवाकर अथवा प्रश्न का आदि शब्द को लेकर शल्य या निधि (भूमि के अन्दर छिपा या गड़ा धन) का विचार होता है।

सर्वप्रथम प्रश्नकर्ता को चाहिये कि शरीर व मन से पवित्र एवं शुद्ध होकर—फल व द्रव्य आदि सहित, विद्वान से प्रश्न करे। विचारक सर्वप्रथम निम्न मंत्र को सिद्ध करे और प्रश्न के समय इस मंत्र का तीन बार उच्चारण कर अपने इष्टदेवता का स्मरण करके भूमि का स्पर्श करते हुए प्रश्न पर विचार करे—

मंत्र—"ॐधरणी विदारिणी भूत्यैः स्वाहा"

प्रश्न का आदि अक्षर जो हो उसके अनुसार शल्य की स्थिति और उसका फल इस प्रकार है—

व/अ—पूर्व में मनुष्य का शल्य (हड्डी या हड्डी की राख) डेढ़ हाथ गहराई में है। ऐसे भूमि में निवास मनुष्य की मृत्यु कारक है।

क—आग्नेय में दो हाथ नीचे या कमर तक गहराई में शश का शल्य या खर का शल्य है। ऐसी भूमि राजदण्ड, राजभय, गाय आदि पशुओं की हानि, तथा भयकारक है।

च—दक्षिण दिशा में कमर तक गहराई में मानव या मर्कट का शल्य है। ऐसे भूमि में निवास गृहस्वामी की मृत्यु तथा उस पर रहने वाले को सदैव रोगग्रस्त कारक है।

ट/त—नैऋत्य दिशा में डेढ़ हाथ से अधिक गहराई में अश्व या कुत्ते का शल्य धनहानि, राजभय, मृत्युभय, बच्चों में रोग व बच्चों की मृत्यु का सूचक है। [मतान्तर से 'त' का विचार है]

त/ण—पश्चिम दिशा में डेढ़ हाथ गहराई पर शिशु का शल्य गृहस्वामी के लिये अशुभ फल कारक व कुस्वप्न सूचक है। ण—का विचार मतान्तर से है।

प–ण–ह–वायव्य दिशा में कोयला राख इत्यादि का या मानव शल्य सूचक है–जो मित्रों का नाश, कुस्वप्न प्रदर्शन आदि सूचक है। (ण—ह—का विचार मतान्तर है)

य/स–उत्तर दिशा में कमर से अधिक गहराई में शल्य है जो दरिद्रता कारक है।

श/प–ईशान दिशा में आधे हाथ से नीचे डेढ़ हाथ तक गहराई में पशु शल्य है, जो धन हानि व पशु हानि कारक है।

ह/प/य—मध्य भाग में कमर तक की गहराई में नर कंकाल कोयला, लोहा आदि का शल्य होगा जो कुल का नाश कारक है।

इसका तात्पर्य यह हुआ कि यदि प्रश्न के आदि शब्द का प्रथमाक्षर अ—क च—ट—त—ण—प—व—य स—श—ह इनमें कोई हो तो उक्त भूमि शल्य युक्त (अर्थात् दोष युक्त) है। ऐसी भूमि में निवास या गृह निर्माण शुभ नहीं है। यदि कोई और अक्षर हो तो शुभ तथा दोष रहित है।

सम्बन्धित भूमि की लम्बाई व चौड़ाई को तीन भागों में बांटने से कुल भूमि के नौ खण्ड होंगे जो एक भाग मध्य तथा आठ भाग आठों दिशाओं में समझें।

उदाहरण के रूप में यहाँ यदि प्रश्न का आदि शब्द 'समय' हो तो आदि अक्षर 'स' होगा। तदनुसार उक्त विचारित भूमि में उत्तर दिशा में शल्य है जो दरिद्रता सूचक है। अत: इस भूमि पर मकान बनाना शुभ नहीं है। यदि मकान बन गया हो, या बनाना आवश्यक ही हो तो कम से कम उत्तर दिशा (कुल भूमि का १/९ भाग) का भाग खाली एवं खुला छोड़े। अन्यथा इसमें निवास शुभ नहीं रहेगा इत्यादि।

भूमिगत धन (निधि) दर्शन-विधि

भारतीय ज्योतिष में वास्तुविभाग के अन्तर्गत भूमि शुद्धि (भूमि में कही हड्डी आदि दूषित वस्तु की स्थित का ज्ञान) और निधि दर्शन (भूमि में गड़े या छिपे धन का पता लगाना और उसे प्राप्त करना) मे सम्बन्धित पर्याप्त साहित्य मिलता है जो गणित की प्रक्रिया द्वारा ज्ञात हो सकता है।

ज्योतिषीय गणित के अलावा भारतीय साहित्य में तन्त्र शास्त्रों में भी इसका विशेष उल्लेख है और कुछ तांत्रिक प्रक्रिया द्वारा भी भूमि मे स्थित निधि (धन) के दर्शन हो सकते है। शाम्बोट और आम की वन्दा तंत्रशास्त्र में इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

दुर्भाग्यवश भारत का यह प्राचीन ज्ञान-विज्ञान दिनों दिन नष्ट होता जा रहा है। इसके वास्तविक जाता भी नहीं रहे। अभी भी इस विषय पर जो कुछ बचा है उससे बहुत कुछ लाभ उठाया जा सकता है। इसके नष्ट होने का एक कारण यह भी है कि जो विद्वान इस प्रकार की गुप्त विद्याओं को जानते है वे उसे गुप्त ही रखते हैं और उन्हीं के साथ यह विद्या भी नष्ट हो जाती है। मेरे पास वंश परम्परा से जो प्राचीन ज्ञान उपलब्ध है, उसको मैं सोदाहरण पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करना चाहता हूँ।

मूलभूत आधार

इस सम्बन्ध मे गणित करने हेतु निम्न आधार चाहिए।

पृच्छक (प्रश्न पूछने वाला) इस सम्बन्ध में जब भी संयत होकर विधिपूर्वक, शुद्धभाव से प्रश्न पूछे – उक्त दिन तथा उस समय को अंकित कर लें। इसके अलावा पृच्छक से कोई एक 'शब्द' लिखने को कह दें। कुछ आचार्यों के मत से पृच्छक से कोई शब्द लिखवाने के बजाय यदि पृच्छक ब्राह्मण वर्ण हो तो किसी पुष्प का नाम, क्षत्रिय से किसी नदी का नाम, वैश्य से किसी देवता का नाम और अन्त्यवर्ण से किसी फल का नाम लेने को कहें।

कुछ दक्षिण भारतीय आचार्यों का कथन है कि पुष्प, नदी, देवता, फल आदि का नाम मनुष्य अपने प्रिय को ही निरन्तर याद करता है अत: किसी अंक

(संख्या) का नाम लेना अधिक उपयोगी एवं वैज्ञानिक है। मैं भी इस मत से सहमत हूँ। फिर इन संख्याओं (अँकों) से शब्द बना लें। इसकी विधि का उल्लेख मैंने "अँक विज्ञान एवं अंक संहिता" शीर्षक अपनी पुस्तक मे किया है। अस्तु, सर्वप्रथम हमें निम्नतथ्य अंकित करने चाहिए—

[अ] प्रश्न का दिन आदि।
[आ] प्रश्न का समय।
[इ] प्रश्नकर्ता का नाम और वर्ण।
[ई] प्रश्न स्थान ,थान (नगर)।
[उ] प्रश्न का आदि शब्द।

अथवा पुष्प, नदी, देवता, फल का नाम अथवा संख्यायें।

गणित-क्रिया

अब उपरोक्त समय से सूर्य तथा चन्द्रमा का साधन इस प्रकार करें :—

(१) चन्द्र साधन

प्रश्न समय जो नक्षत्र हो, प्रश्न के इष्टकाल के अनुसार उसका भयात, भभोग निकाल लें। भयात के घटी-पलों को २७ मे गुणाकर ६० से भाग दें, लब्धि नक्षत्र होगा, जो शेष बचा वह घटी पल। लब्धि मे प्राप्त इस इस नक्षत्र संख्या को प्रश्न के समय जो गत नक्षत्र हो उसकी संख्या मे जोड़ दें। इन दोनों का योग गत नक्षत्र (गत नक्षत्र की संख्या) मानी जायगी और ६० से भाग देने पर शेष बचे घटी-पल इसके अगले नक्षत्र के गत घटी-पल माने जायेंगे।

(२) सूर्यसाधन

[क] सर्वप्रथम यह देखें कि प्रश्न के समय सूर्य किस नक्षत्र में स्थित है। फिर 'उस' नक्षत्र में सूर्य के प्रवेश दिन व समय से प्रश्न के दिन व समय तक जो दिनादि अन्तर हो उसे निकालें।

[ख] इसके बाद यह देखें कि सूर्य उस नक्षत्र में कुल कितने (दिन एवं घटी, पल) समय रहता है। एक नक्षत्र मे सूर्य जितने दिनादि रहे, उसको सवर्णित कर ६० का भाग देने पर लब्धि (घटी, पल, विपला क्रमश:) सूर्य का एक घटी-मान कहा जायगा।

अब इस एक घटी मान (ख—से प्राप्त) को सवर्णित कर इससे पूर्वोक्त 'क' से प्राप्त दिनादि अन्तर को सवर्णित कर उसमें भाग दें। जो लब्धि (तीन अंकों में) प्राप्त होगा वह क्रमशः घटी, पल, विपल सूर्य के स्थित नक्षत्र के गत घटी, पल, विपल होंगे।

अब इन घटी-पलों को सूर्य स्थित नक्षत्र के भयात घटी मानकर जैसे चन्द्र साधन किया था, उसी प्रकार साधन करना पड़ेगा। अर्थात् २७ से गुणा कर ६० का भाग देना होगा। लब्धि नक्षत्र, घटी, पल होंगे। इसे सूर्य के गत नक्षत्र की संख्या में जोड़ने से जो संख्या प्राप्त होगी वह सूर्य के गत नक्षत्र की संख्या तथा अग्रिम नक्षत्र के गत (भुक्त) घटी पल होंगे।

उदाहरण

दिनांक ९ मार्च १९८२ समय प्रातः ९/१३ तदनुसार सम्वत २०३८ फाल्गुन शुक्ल १५ सोमवार स्थान—लखनऊ।

प्रश्न का आदिशब्द—'समय'

पुष्प का नाम— ×

श्री सूर्योदयादिष्टम् ६/५५

चन्द्रसाधन

पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्रे भयात ११/५२ भभोग ५९/१२

=११/५२ × २७ = ३२०/२४ भागा ६० = ५/२०/२४

गत नक्षत्र(मघा) १० + ५/२०/२४

=१५/२०/२४ = १५ (स्वाती) गत नक्षत्र एवं विशाखा भुक्त २०/२४

सूर्यसाधन :—

प्रश्न समय पर सूर्य नक्षत्र पूर्वा भाद्रपद

(अ) प्रश्नवार—घटी—पल

(आ) सूर्य के पू० भा० में प्रवेश का वार—घटी—पल

अ = मंगल (३)—६—५५

ऋण = आ = गुरुवार (५) २८—३७

दोनों का अन्तर = ४—३८—१८ अथवा—

(सूर्य पूर्वा भाद्र में फाल्गुन शुक्ल ९ गुरुवार तदनुसार ४ मार्च को इष्ट २८/३७ पर गया था—इससे लेकर प्रश्न के समय तक ४ दिन ३८ घटी १८ पला का अन्तर हुआ)

—पूर्वाभाद्र पद के सूर्य भुक्त दिनादि ४/३८/१८/०

सूर्य पूर्वा भाद्रपद में चैत्र कृष्ण ७ बुधवार (१७ मार्च) को इष्ट ४९/३३ तक रहते हैं—इस प्रकार—

१७—४९—३३
४—२८—३७
=१३—२०—५६

अर्थात् सूर्य पूर्वा भाद्रपद में १३ दिन २० घ० ५६ पल रहा। इसमें ६० का भाग देने पर मिला १३ घ० २० पल ५६ विपल। यह सूर्य का एक घटी मान हुआ।

१३/२०/५६ = सवर्णित = ४८०५६

(१३ × ६० + २० = ८०० + ५६ = ४८०५६)

पूर्वोक्त दिनादि अक्षर ४/३८/१८/० को भी इसी प्रकार सवर्णित किया = १००१८८०

(४ × ६० + ३८ × ६० + १८ × ६० = १००१८८०

इसमें ४८०५६ का भाग देने पर प्राप्त लब्धि २०/५०/५३ यह सूर्य के पूर्वा भाद्रपद की गत घट्यादि (घटी, पल, विपल) हुए।

इसे अब चन्द्रमा की तरह ही (इन्हें सूर्य स्थित नक्षत्र का भयात मानकर २७ से गुणाकर ६० का भागदेने पर लब्धि मिला = ९/२२/५३ अर्थात् ९ नक्षत्र २२ घटी ५३ पला। सूर्य के गत नक्षत्र शतभिषा (२४) मे इसे जोड़ने से

= २४/०/०
९/२२/५३
३३/२२/५३ हुआ।

नक्षत्र की संख्या २७ से अधिक होने से २७ का भाग देने पर शेष ६ रहा। अतः आर्द्रा (६) गत नक्षत्र हुआ, और पुनर्वसु के गत घटी-पल २२/५३ हुए।

इस प्रकार—

सूर्य = पुनर्वसु नक्षत्र में (भुक्त २२/५३)

चन्द्र = विशाखा में (भुक्त २०/२४)।

इस प्रकार सूर्य और चन्द्रमा की स्थिति जानने के बाद जिस स्थान या भूमि में धन होने की सम्भावना हो उस भूमि को अठाईस खण्डों में विभाजित करें। पूर्व से पश्चिम चार भाग और उत्तर से दक्षिण सात भाग करने पर

२८ खण्ड होंगे। भूमि के क्षेत्रफल को देखते हुए उसे हाथ, फुट, मीटर आदि में विभाजित कर सकते हैं। उदाहरण के तोर पर भूमि पूर्व पश्चिम ६० फुट और उत्तर दक्षिण ३० फुट है तो पूर्व पश्चिम १५ फुट लगभग का एक खण्ड होगा। इसी प्रकार उत्तर दक्षिण ४–१/२ फुट का एक खण्ड होगा। इस प्रकार प्रत्येक खण्ड लगभग १५ फुट X ४ फुट ६ इंच का होगा।

इस २८ खण्डों वाले चक्र को 'अहिचक्र' अर्थात सर्परूपी चक्र कहा जाता है। इसके २८ खण्डों में २८ नक्षत्रों को इस क्रम से स्थापित किया जाता है कि कुण्डली मारकर बैठे सर्प का आकार बनता है। क्रम संख्या १ पर प्रथम नक्षत्र अश्विनी और क्रम संख्या २८ पर अन्तिम नक्षत्र रेवती रक्खा जायेगा। अश्विनी इस सर्प के शिर पर और रेवती पूंछ पर होगी। अर्थात् क्रमांक १ से २८ तक क्रमश: आप एक रेखा खींचे तो सर्प का स्वरूप स्पष्ट रूप से बन जायगा। इस क्रम से २८ नक्षत्रों को यथास्थान स्थापित कर सूर्य और चन्द्रमा जिस-जिस नक्षत्र में उपरोक्त गणित से प्राप्त हुए हैं तदनुसार स्थापित करें।

परब

उत्तर (बाएँ) — दक्षिण (दाएँ)

१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१
१४	७	६	५	२४	२३	२२
१३	८	९	४	२५	२६	२७
१२	११	१०	३	२	१	२८

प्रवेशद्वार

इसके बाद अन्य ग्रहों को भी तत्कालीन [प्रश्न समय] ग्रह स्थिति के अनुसार उनके नक्षत्रों में स्थापित करें।

ध्यान दें—यदि सम्भावित स्थान कोई भवन हो तो वहां दिशाओं की स्थिति और इन खण्डों के विभाजन की प्रक्रिया भिन्न होगी। क्रमांक ३ उस भवन के मुख्य प्रवेश द्वार को माना जायगा।

प्रवेश द्वार से दाहिने ओर के भाग को तीन खण्डों में इसी प्रकार बायें भाग के खण्ड को भी तीन भागों में बाँटा जायगा। यदि मुख्य प्रवेश द्वार भवन के मध्य में न हो तो यह खण्ड समान न होकर छोटे बड़े हो सकते हैं। यह भी ध्यान रक्खें कि ऐसी स्थिति में दिशायें प्रधान नहीं है, प्रवेश द्वार ही मुख्य है। भले ही प्रवेश द्वार पूर्व से हो—उसे पश्चिम मानना पड़ेगा।

इन २८ खण्डों नक्षत्रों में १४ खण्ड (नक्षत्र) सूर्य के और १४ चन्द्रमा के हैं।

क्रम संख्या १, २, ३, ६, ७ ८, ९, १०, २०, २१, २३, २४, २६, २८, यह चन्द्र नक्षत्र (या चन्द्र खण्ड) शेष सूर्य के हैं।

परिणाम

(अ) सूर्य और चन्द्र दोनों चन्द्र खण्ड में हों तो निश्चित रूप से धन विद्यमान होता है।

(आ) दोनों सूर्य खण्ड में हो तो धन नहीं होता।

(इ) सूर्य सूर्य खण्ड में और चन्द्र चन्द्रखण्ड में हो तो थोड़ी मात्रा में धन होता है।

(ई) यदि चन्द्र सूर्य खण्ड में और सूर्य चन्द्र खण्ड में हो तो भी कुछ नहीं होता।

(उ) अब प्रश्न लग्न की स्थिति से देखें—यदि चन्द्रमा के साथ पाप ग्रह हों तो धन स्थित होते भी प्राप्त नहीं होता। शुभ ग्रह की राशि में तथा शुभ ग्रहों के साथ हो तो प्राप्त होता है।

(ऊ) चन्द्रमा पर कौन कौन ग्रहो की दृष्टि है—इसका विचार करना चाहिए। यदि उपरोक्त विधि से यह सिद्ध होता है कि धन है, तब ग्रहों की दृष्टि के अनुसार उस ग्रह से सम्बन्धित धातु भूमि में है यह ज्ञात होता है। ग्रहों से सम्बन्धित धातु इस प्रकार है—सोना (सू०) चाँदी (चन्द्र) पीतल (बुध) तांबा (मंगल) रत्न (गुरु) कांसी (शुक्र) लोहा (शनि), रांगा (राहु) और सीसा (केतु)। यदि चन्द्रमा पर सभी ग्रहों की दृष्टि हो तो अनेक प्रकार की सम्पत्ति प्रचुर मात्रा में होती है।

(ए) कुछ आचार्यों का यह भी मत है कि पूर्ण चन्द्रमा अथवा क्षीण चन्द्रमा जैसा हो तदनुसार ही सम्पत्ति अधिक या कम होती है ।

(ऐ) चन्द्रमा सिंह का हो तो सोना, कर्क का हो तो चांदी, मेष या वृश्चिक का हो तांबा, मिथुन या कन्या का हो तो मिट्टी और मकर कुम्भ का लोहे के पात्र में धन होने की सम्भावना कही जाती है ।

(ओ) धन कितनी गहराई में है—इसका अनुमान दो तथ्यों से किया जाता है । चन्द्रमा उच्च या नीच का जैसा हो, उच्च एवं नीच में जितना अन्तर हो ।

अथवा उक्त राशि में चन्द्रमा के जितने नवांश बीते हों–उस अनुपात से ।

अधिष्ठित धन

एक धन ऐसा होता है, जिसका कोई अधिष्ठाता नहीं होता । ऐसे धन को ग्रहण करने, निकालने में कोई दोष नहीं है । अन्यथा यदि धन अधिष्ठित हो तो उसके निकालने व ग्रहण में भय रहता है, अनिष्ट की सम्भावना है ।

यदि चन्द्र अकेले हो, उसके साथ कोई ग्रह न हो तो यह कहा जाता है धन का कोई अधिष्ठाता नहीं है, ऐसा धन निकालने व ग्रहण करने में कोई दोष नहीं है । यदि चन्द्रमा ग्रहयुक्त हो तो उसके अनुसार धन का अधिष्ठाता है ऐसी स्थिति में पहले पूजन आदि के द्वारा अधिष्ठाता को संतुष्ट कर तब धन निकालने का विधान है ।

ग्रह	अधिष्ठाता	पूजा विधान
सू	ग्रहदेवता	ग्रहहोम
चं	मुग्धग्रह	नारायणी बलि प्रयोग
मंगल	क्षेत्रपाल	सुरामांस बलि
बुध	मातृका	महाबलि
गुरु	द्वीपेश	द्विपिका पूजा
शुक्र	भीषण	भीषण पूजन
शनि	रुद्र	रुद्र जाप
राहु	यक्ष	यक्षशान्ति विधान
केतु	नाग	नागपूजा गणपति सहित

अर्थात् चन्द्रमा ग्रहयुक्त हो तो चन्द्रसम्बन्धी नारायणी बलि के साथ संबंधित ग्रह का अनुष्ठान भी करना होगा। इसके साथ ही भूमि तथा लक्ष्मी का पूजन करना भी आवश्यक है।

उपरोक्त क्रिया करने के बाद

ॐ पद्मासने चन्द्रतपसे नम:।

ऐं ह्रीं क्लीं ह्रीं वदवद वाग्वादिनी स्वाहा:।

इस मंत्र का उक्त स्थान पर प्रात:, दोपहर, संध्या को न्यूनतम १०८ संख्या में जप करे और घी, शहद, तिल आदि होम करे। तब मनुष्य धन ग्रहण करने के योग्य होता है।

उदाहरण

उपरोक्त हमारे उदाहरण में सूर्य पुनर्वसु नक्षत्र में (क्रमांक ७) है और चन्द्रमा विशाखा (क्रमांक १६) में है। इस प्रकार सूर्य चन्द्र के खण्ड में और चन्द्रमा सूर्य के खण्ड में है। अत: स्थिति में नियमानुसार (ई) यह सिद्ध होता है कि धन आदि कुछ भी नहीं है। अत. हम प्रश्नकर्ता से कह सकते हैं कि संबंधित भूमि या भवन में किसी प्रकार की धन-सम्पत्ति गढ़ी नहीं है।

गुप्तधन प्राप्तियोग

भूमिगत धन की प्राप्ति एक प्रकार से गुप्त धन की प्राप्ति है और जन्म कुण्डली में अष्टम भाव को "गुप्त स्थान" का प्रतीक माना गया है, सम्भवत: इसी आधार पर प्राचीन आचार्यों ने भूमिगत धन की प्राप्ति में धनभाव (द्वितीय) और अष्टम भाव के सम्बन्ध को ही मुख्यत: कारण माना है इसी आधार पर आचार्य लोमश तथा पाराशर ने निम्न योगों में भूमिगत धन की प्राप्ति कहा है—

(१) कुम्भ राशि का सूर्य अष्टम में हो।

(२) मकर का चन्द्रमा अष्टम हो।

(३) मंगल तुला या वृष का होकर अष्टम हो।

(४) धनु या मीन का बुध अष्टम में हो।

(५) मिथुन या कन्या का गुरू अष्टम में हो।

(६) मेष या वृश्चिक क शुक्र अष्टम में हो।

(७) कर्क या सिंह का शनि अष्टम में हो।

इस प्रकार कुल १२ योग बनते हैं।

कुछ ज्योतिर्विदों ने इन योगों पर अपने अनुभव तथा मत देते हुए कहा है कि शनि, रवि तथा गुरू (अर्थात योग संख्या १, ५ तथा ७) के योग कारक होने पर उपरोक्त फल अधिक अनुभव में आते हैं।

वस्तुत: यह एक गहन अध्ययन व अनुसंधान का विषय है। जिन व्यक्तियों की जन्म कुण्डली में उक्त योग विद्यमान है, क्या उन्हें ऐसा धन प्राप्त हुआ है। अथवा जिन लोगों को भूमिगत धन की प्राप्ति हुयी है उनकी जन्म कुण्डली में इस प्रकार के योग विद्यमान थे ?

यद्यपि महर्षि पराशर तथा लोमश जी ने उपरोक्त योगों में भूमिगत धन की प्राप्ति लिखा है, लेकिन अन्य आचार्यों विद्वानों ने भी ऐसे योग होने पर सम्पन्न जीवन होना लिखा है, अत: मेरे विचार से उपरोक्त योग होने पर भूमिगत धन की प्राप्ति भले ही न हो (क्योंकि उसकी सम्भावनाये ही कम होती है) जातक आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न तथा भू-सम्पत्ति आदि से युक्त अवश्य होगा।

एक सम्भावना और भी है। क्योंकि उपरोक्त योग 'धन + गुप्त'' से सम्बन्धित है अत. गुप्त धन की प्राप्ति सूचित करता है और गुप्त धन केवल भूमिगत धन ही नहीं होता। गुप्त धन की प्राप्ति के अनेक साधन है—चोरी, घूस, वसीयत, गुप्त व्यापार आदि गुप्त धन के प्राप्ति के साधन हैं। अत: उपरोक्त योग विद्यमान होने पर किसी न किसी रूप में गुप्त धन की प्राप्ति हो सकती है।

गृह वाटिका हेतु वृक्षों का चयन

गृह की शोभा गृहांगण तथा वाटिका से होती है, गृह वाटिका में पुष्पों की तो शोभा है ही और यदि अधिक स्थान हो तो शाक आदि और फलदार वृक्ष भी उसमें स्थान पाते हैं जो सुख-शांति के साथ ही लाभ भी देते हैं। लेकिन प्रश्न यह उठता है कि गृहवाटिका में कौन से वृक्षों को स्थान दिया जाय। वर्तमान समय मे तो शोभाकारक (सजावटी) क्षुपो को भी गृहवाटिका में प्रचुरता से स्थान प्राप्त होता है।

प्राचीन भारतीय वास्तुविदों का विचार है कि प्रात: काल एक याम अर्थात १०/११ बजे तक भले ही गृहवाटिका के वृक्षों की छाया घर पर पड़े किन्तु शेष दिन वृक्षों की छाया से घर मुक्त रहना चाहिए अर्थात बड़े एवं छायादार वृक्षों को गृह से दूर ही होना चाहिए विशेषकर पीपल, कदम्ब, केला, बिजौरानीबू आदि वृक्षों की छाया जिन घरों पर पड़ती है उन घरों में सुखशांति व उन्नति नहीं होती।

यदि गृहवाटिका छोटी हो तो फलदार वृक्षों को स्थान देना उचित नहीं है। विशेषकर फलदार, दुग्ध युक्त (गूलर, वट, कैथा, पीपल आदि) तथा काँटेदार वृक्षों को घर से दूर ही होना चाहिए प्राय: पीपल, गूलर आदि वृक्ष घरों की दीवारों आदि में स्थान बना लेते हैं यह अशुभ चिन्ह हैं, उन्हें उखाड़ फेंकना चाहिए—

वृक्षा दुग्धसकंटकाश्च फलिन

स्त्याज्या गृहाद्दूरत:।

अश्वस्थं च कदम्बं च कदली बीचपूरकम्।
गृहे यस्य प्ररोहन्ति स गृही न प्ररोहति।।

दुधीले पेड़ (पीपल, गूलर, कैथा, वट आदि) घर के निकट दरिद्रता तथा धनहानि कारक होते हैं। कटीले वृक्षों से शत्रुओं का भय बना रहता है। फलदार वृक्ष सन्तान के पक्ष में शुभ नहीं माने गये हैं—

सदुग्ध वृक्षा द्रविणस्यनाशं,

कुर्वन्ति ते कटकिनोरिभीतिम ।

प्रजा: विनाशं फलिन: समीपे ।।

अशोक वृक्ष शुभ माना जाता है और वर्तमान मे गृहवाटिकाओं में स्थान पा रहा है। शमी, अशोक, बकुल, पुन्नाग, चंपक, अंगूर की लता, तिलक, आदि के वृक्ष गृहवाटिका में शुभ माने है लेकिन इनकी छाया गृह पर न पड़े, इतनी दूरी हो। कैथा, वट, गूलर, पीपल कांटेदार वृक्ष, लाल फूल वाले यह वृक्ष वर्जित तो हैं ही, यदि घर में दक्षिण दिशा या आग्नेय मे हो तो अति अशुभ कहे हैं अत: कष्ट व मृत्युदायक विशेष रूप से वर्जित है। चम्पा, चमेली, गुलाब, जाती, केतकी, केला, नीम, नागकेशर, केशर, जयन्ती, चन्दन, बचा, अपराजिता, बेलपत्र, फलदार नीबू आम, नारंगी, सन्तरा, सुपारी, नारियल आदि के वृक्ष गृहवाटिका में प्राय: शुभ माने है।

कुव्यक्तित्व के परिचायक कुछ योग*

कुव्यक्तित्व अर्थात् दुर्जनता के परिचायक योगों का मुख्यत: सम्बन्ध नवम भाव से होता है, क्योंकि नवमभाव ही धर्म का तथा सामाजिक यश प्रतिष्ठा का है। जो व्यक्ति धर्मभीरु हो और समाज में यशस्वी हो वह दुर्जन नहीं हो सकता अत: नवमभाव के दूषित होने से ही व्यक्ति दुर्जन होता है। इस प्रकार :—

[१] नवमेश ६, ८, १२ भाव मे हो।

[२] ६, ८, १२वें भाव का स्वामी नवम में हो।

[३] नवमेश नीच, अस्त, पापपीड़ित हो।

ऐसी ही स्थितियों मे प्राय: दुर्जनता के योग बनते हैं। पंचम बुद्धि का स्थान है, अत: यदि पंचमभाव भी दूषित हो तो दुर्बुद्धि के कारण दुर्जनता और भी अधिक हो सकती है। यह सामान्य सिद्धांत हैं।

इसके अलावा भी संहिता ग्रंथों मे दुर्जनता सूचक कुछ योग बतलाये गये हैं।

लम्पट योग

जन्म कुण्डली में निम्न योग होने पर जातक परस्त्री अथवा पर पुरुष से सम्बन्ध स्थापित करने में कुशल होता है अत: गुप्त यौन सम्बन्ध तथा प्रेम विवाह एवं प्रेम सम्बन्धों का योग बनता है। ऐसा मत यवनाचार्य का है। इसमें षष्ठ तथा नवम भाव का ही सम्बन्ध है—

[१] वृष का सूर्य षष्ठ हो।

[२] मेष का चन्द्र षष्ठ हो।

[३] सिंह या मकर का मंगल षष्ठ हो।

[४] मीन वा मिथुन का बुध षष्ठ हो।

[५] कन्या या धनु का गुरु षष्ठ हो।

[६] कुम्भ या कर्क का शुक्र षष्ठ हो।

[७] तुला या वृश्चिक का शनि षष्ठ हो।

---

* इन योगों का उल्लेख पहले भी हो चुका है, उसी क्रम में कुछ अन्य योग।

तस्कर तथा शठ

यवनाचार्य के ही मत से निम्न योग विद्यमान होने से भी जातक तस्कर (चोर) तथा शठ (धूर्त) होता है, इसमें अष्टम तथा व्ययभाव का संबंध है। अन्य आचार्यों ने इस योग में रोगी, आत्मघाती, शरीर में व्यंग होना कहा है—

[१] धनु का सूर्य द्वादश हो।
[२] वृश्चिक का चन्द्र द्वादश हो।
[३] सिंह या मीन का मंगल व्यय में हो।
[४] व्यय में तुला या मकर का बुध हो।
[५] व्यय में मेष या कर्क का गुरु हो।
[६] कन्या या कुम्भ का शुक्र द्वादश हो।
[७] वृष या मिथुन का द्वादश हो।

चोर तथा कपटी

यवनाचार्य जी मत से निम्न योग भी चोर तथा कपटी सूचक हैं, इन योगों में अष्टम तथा दशम भाव का संबंध है।

[१] मिथुन का सूर्य अष्टम हो।
[२] वृष का चन्द्र अष्टम हो।
[३] कुम्भ या कन्या का मंगल अष्टम हो।
[४] मेष या कर्क का बुध अष्टम हो।
[५] तुला या मकर का गुरू अष्टम हो।
[६] सिंह या मीन का शुक्र अष्टम में हो।
[७] शनि वृश्चिक या धनु का अष्टम हो।

पिशुन

महर्षि लोमश ने निम्न योगों को पिशुनता (चुगलखोर) सूचक माना है, ऐसा जातक घर में तथा मित्रों में चुगलखोरी कर फूट डालता है—

[१] मेष का सूर्य चतुर्थ हो।
[२] मीन का चन्द्र चतुर्थ हो।
[३] कर्क या धनु का मंगल चौथे हो।
[४] वृष या कुम्भ का बुध चौथे हो।
[५] सिंह या वृश्चिक का गुरू चौथे हो।
[६] मकर या मिथुन का शुक्र चौथे हो।
[७] कन्या या तुला का शनि चौथे हो।

कुछ प्रकीर्ण योग

आत्मघातीयोग

जीवन में सभी सुख सुविधा होते भी मानसिक असन्तुलन के कारण, अथवा किसी घटना या आघात से विचलित होकर आत्मविश्वास के अभाव में आत्म-घात की प्रवृत्ति कुछ लोगों में देखी जाती है। वैसे तो मानसिक असंतुलन अथवा आत्मविश्वास का अभाव उन व्यक्तियों में होता है जिनके जन्म में चन्द्रमा या सूर्य पापग्रहों से पीड़ित, दूषित या बलहीन हो। अथवा लग्न, लग्नेश, अष्टम भाव व अष्टमेश के पापपीड़ित होने पर भी ऐसी प्रवृत्ति हो सकती है, लेकिन प्राचीन आचार्यों ने इनके अलावा भी कुछ योग इसके कारण बतलाये हैं।

मेरे विचार में 'आत्मघाती' का अर्थ केवल 'आत्मघात' ही नहीं, अपितु जो व्यक्ति स्वयं ऐसे कार्य करे जिससे अपना ही अहित हो—वह भी आत्मघाती है।

(अ) यवनाचार्य गर्गाचार्य तथा मानसागरीकार श्री हरजी ने निम्न योगों को आत्मघाती कहा है –

(१) सूर्य कुंभ का अष्टम हो।

(२) मकर का चन्द्रमा अष्टम हो।

(३) धनु या मीन का बुध अष्टम हो।

(४) तुला या वृष का मंगल अष्टम हो।

(५) मिथुन या कन्या का गुरु अष्टम हो।

(६) मेष या वृश्चिक का शुक्र अष्टम हो।

(७) कर्क या सिंह का शनि अष्टम हो।

इस प्रकार कुल बारह योग बनते हैं।

(आ) इसके अलावा यवनाचार्य के निम्न योगों को भी इसी प्रकार आत्मघाती कहा है। उनके मत से ऐसे जातक की मृत्यु आत्मघात एवं अभक्ष्य भक्षण से होती है—

(१) धनु का सूर्य व्यय में हो।

(२) वृश्चिक का चन्द्र व्यय में हो।
(३) सिंह या मीन का मंगल व्यय में हो।
(४) तुला या मकर का बुध व्यय में हो।
(५) मेष या कर्क का गुरु व्यय में हो।
(६) कन्या या कुम्भ का शुक्र व्यय में हो।
(७) वृष या मिथुन का शनि व्यय में हो।

इस प्रकार भी कुल बारह योग बनते हैं। समय की कसौटी पर यह योग कहाँ तक सत्य सिद्ध होते हैं यह परीक्षण एवं अनुसंधान का विषय है। ऐसे व्यक्तियों की, जिन्होंने आत्मघात किया हो, कुण्डलियों का संकलन व मनन करने से इन योगों की पुष्टि हो सकती है।

वातरोग

महर्षि लोमश ने निम्न योगों को वातरोग सूचक कहा है। वातरोग सूचक इसके अलावा अन्य योग भी हो सकते हैं, जो अन्य ग्रंथों में वर्णित हों—

(१) सूर्य वृष का चतुर्थ या वृश्चिक का दशम हो।
(२) चन्द्र मेष का चतुर्थ या तुला का दशम हो।
(३) मकर या कक का चतुर्थ अथवा सिंह या कुम्भ का मंगल दशम हो।
(४) मीन या मिथुन का चतुर्थ अथवा कन्या या धनु का बुध दशम में हो।
(५) गुरु धन या कन्या का चतुर्थ अथवा मिथुन या मीन का दशम में हो।
(६) शुक्र चतुर्थ में कुम्भ या कर्क का हो अथवा दशम में सिंह या मकर का हो।
(७) तुला या वृश्चिक का शनि चतुर्थ में अथवा मेष या वृष का दशम में हो।

इस प्रकार कुल २४ योग बनते हैं।

तृष्णा (प्यास) रोग

महर्षि गर्ग के मतानुसार निम्न योगों में से किसी के विद्यमान होने से जातक को तृष्णा [प्यास] से मृत्यु का भय होता है—

(१) तुला का सूर्य लग्न में हो।

(२) कन्या का चन्द्र लग्न में हो ।
(३) मिथुन या मकर का मंगल लग्न में हो ।
(४) सिंह या वृश्चिक का बुध लग्न में हो ।
(५) कुम्भ या वृष का गुरु लग्न में हो ।
(६) कर्क या धनु का शुक्र लग्न में हो ।
(७) मीन या मेष का शनि लग्न में हो ।

आदर्शमाता का पुत्र

यदि जन्म कुण्डली में निम्न योग हो तो जातक की माता सुशील, पुण्यात्मा, सत्यवादी एवं एक आदर्शमाता होती है, ऐसा गर्ग का कथन है—

(१) कर्क का सूर्य नवम हो ।
(२) मिथुन का चन्द्र नवम हो ।
(३) मीन या तुला का मंगल नवम हो ।
(४) वृष या सिंह का बुध नवम हो ।
(५) वृश्चिक या कुम्भ का गुरु नवम हो ।
(६) मेष या कन्या का शुक्र नवम हो ।
(७) धनु या मकर का शनि नवम हो ।

प्रसव में पत्नी को मृत्यु भय

आचार्य गर्ग के मत से यदि किसी जातक की कुण्डली में निम्नयोग हो तो उनकी पत्नी को प्रसव के समय विशेष कष्ट एवं मृत्युभय सम्भव है । अत: ऐसे जातक को पत्नी के प्रसव काल में पूर्ण सावधानी रखनी चाहिए—

(१) सूर्य एकादश में धनु का हो ।
(२) चन्द्र एकादश में वृश्चिक का हो ।
(३) मंगल एकादश में सिंह या मीन का हो ।
(४) बुध तुला या मकर का एकादश हो ।
(५) गुरु मेष या कर्क का एकादश हो ।
(६) शुक्र कन्या या कुम्भ का एकादश हो ।
(७) शनि वृष या मिथुन का एकादश हो ।

धनक्षतियोग

महर्षि लोमश जी के मत मे निम्न योगों में से किसी भी एक योग के विद्यमान होने पर धन के प्राप्त न होने (ऋण या उधार आदि में दिया गया धन वापस प्राप्त न होने) का योग बनता है —

(अ) कुम्भ का सूर्य, मकर का चन्द्र, तुला या वृष का मंगल, धनु या मीन का बुध मिथुन या कन्या का गुरु, मेष या वृश्चिक का शुक्र, कर्क या सिंह का शनि द्वितीय में हो।

(आ) मीन का सूर्य, कुम्भ का चन्द्र, वृश्चिक या मिथुन का मंगल, मकर या मेष का बुध, कर्क या तुला का गुरु, धनु या वृष का शुक्र, सिंह या कन्या का शनि तृतीय हो।

कुल २४ योग बनते है।

मातृपितृ सुख एवं सम्पत्ति हानि योग

निम्न योगों को महर्षि लोमश, गर्ग, यवनाचार्य आदि सभी ने एकमत से संतान सुख में वाधक माना है साथ मे यह भी कहा है कि स्वय जातक को भी माता–पिता का सुख कम प्राप्त हो। माता–पिता की कम आयु में मृत्यु हो अथवा उनसे विरोध रहे। गर्ग तथा यवनाचार्य का कथन है कि जातक पिता से विरोध करता है और पैतृक सम्पत्ति को नष्ट करता है—

(१) मेष का सूर्य चतुर्थ हो।
(२) मीन का चन्द्र चौथे हो
(३) चौथे घर में कर्क या धनु का मंगल हो।
(४) वृष या कुम्भ का बुध चौथे हो।
(५) सिंह या वृश्चिक का गुरू चौथे हो।
(६) मकर या मिथुन का शुक्र चौथे हो।
(७) कन्या या तुला का शनि चौथे हो।

इन योगों में अष्टमेश को चतुर्थ में स्थिति ही मुख्य है। जो ज्योतिष के सामान्य सिद्धांतों के अनुरूप ही है।

भ्रातृ सुख विचार

संहिता ग्रंथों में भ्रातृसुख विचार शीर्षक से पहले भी योग दिये जा चुके हैं। इसी क्रम में निम्न योग भी उल्लेखनीय हैं। यवनाचार्य तथा गर्ग ने निम्न योगों को भ्रातृसुख में बाधक तथा सहोदरों से विरोध कारक कहा है—

[१] मीन का सूर्य तीसरे हो।

[२] कुंभ का चन्द्र तीसरे हो।

[३] मगल तीसरे में मिथुन या वृश्चिक का हो।

[४] बुध मकर या मेष का तीसरे हो।

[५] गुरू कर्क या तुला का तीसरे हो।

[६] वृष या धनु का शुक्र तीसरे हो।

[७] सिंह या कन्या का शनि तीसरे हो।

अनुसंधान योग्य कुछ जन्मपत्र

जयप्रकाश नारायण*

आम जनता में आजकल जो चिन्तन के मुख्य विषय हैं उनमें श्री जयप्रकाश नारायण, उनका आंदोलन और उसके परिणाम के बारे में कपोल-कल्पना एक मुख्य विषय है। राजनीति से तटस्थ रहते भी, केवल इस शास्त्र की प्रामाणिकता सिद्ध करना हमारा उद्देश्य है, इसी उद्देश्य से हम इस विषय पर प्रकाश डाल रहे हैं– क्योंकि हमारे बहुत पाठकों का भी आग्रह रहा है कि हम इस बारे में ज्योतिष की दृष्टि से चर्चा करें।

वास्तविक जन्म कुण्डली ?

सर्वप्रथम यह प्रश्न उठता है कि श्री जयप्रकाश नारायण जी की वास्तविक जन्म कुण्डली क्या है ? पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि ज्योतिषियों ने उनकी तरह-तरह की कुण्डलियाँ प्रकाशित करवाई हैं जिनमें दो निम्न हैं :—

१०	१	४	५	६	७	९
वृ ल	के	चं	मं	बु	सू शु रा	श

जहाँ तक हम जानते हैं ; मकर लग्न की कुण्डली ही सत्य है।

---

* 'आग्रहायण' मासिक में मेरा यह लेख उस समय छपा था, जब जनवरी १९७५ में श्री जयप्रकाश नारायण जी का जनान्दोलन चरम सीमा पर था और जनता में इस आंदोलन के सफल होने की आशा थी। लेकिन अचानक श्री जयप्रकाश नारायण जी के गुर्दे बेकार हो गये और उनकी जीवन लीला ही समाप्त हो गई। यह लेख अक्षरश: उद्धृत है।

आन्दोलन का क्या होगा ?

भारत के लिये वर्तमान समय संक्रांतिकाल है, आंदोलन का नेतृत्व श्री जयप्रकाश जी करें या न करें—भारतीय जनमानस में जो असंतोष की भावना है वह किसी भी हालत में १९७७-८० से पहले शांत नहीं हो सकती। श्री जयप्रकाश जी को जिस योग ने आज तक राजयोग से वंचित रक्खा—वही योग उन्हें इस आंदोलन के सफल होने से भी वंचित रक्खेगा। क्योंकि उनके समस्त राजयोग एक ही योग ने नष्ट कर दिये हैं :—

तुलायां दशमेभागे स्थित: कमलबोधन: ।
सहस्त्रं राजयोगानां नाशयत्याशु जन्मनि ।।

इस समय अच्छा होगा कि वे अपने स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान दें।

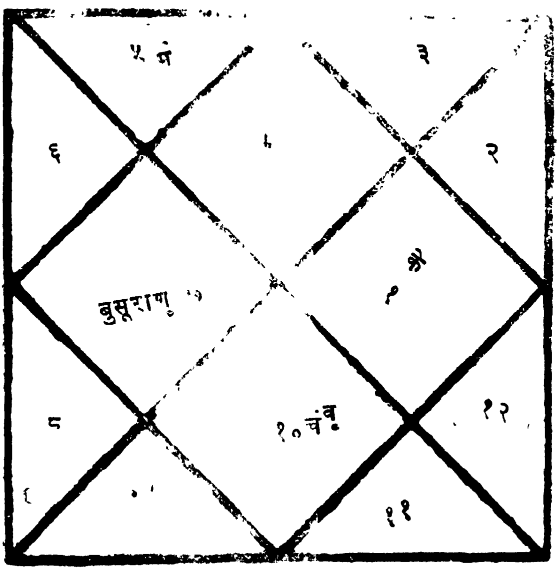

(यह कुण्डली सत्य नहीं है।)

गोविन्द वल्लभ पन्त*

भारतरत्न स्व० गोविन्द बल्लभ पन्त जी का जन्म सम्वत् १९४४ भाद्रपद शुक्ल अनन्त चतुर्दशी, गुरुवार के दिन जिला अल्मोड़ा में अपरान्ह ३.३५ बजे हुआ था, वे निश्चय ही असाधारण सिंह पुरुष (लियोपर्सन) थे। वैसे मेरे

* 'आग्रहायण' अक्टूबर ७५ अंक से।

पिता जी का उनसे एवं उनके परिवार से बहुत ही निकट (गुरु) सम्बन्ध रहा है लेकिन मुझे उनके सम्पर्क में आने का सर्वप्रथम अवसर १९५६ में मिला जब मैं विद्याध्ययन के बाद नैनीताल में था, उस ग्रीष्म में पन्त जी भी वहीं पधारे थे।

असाधारण व्यक्तित्व

पन्त जी जन्म कुण्डली में सबसे उल्लेखनीय योग भाग्य स्थान में स्वग्रही सूर्य के साथ राज्येश बुध के साथ बुधादित्य योग। सूर्य राजनीति एवं राज सम्मान, प्रभुत्व यश का प्रतीक ग्रह है, अतः भाग्य-स्थान में सूर्य का होना (साधारण स्थिति में अकेले ही) श्रेष्ठ माना जाता है। सुप्रसिद्ध पाश्चात्य ज्योतिर्विद एलेन लियो का कथन है—'सूर्य अपने सौर मण्डल का सबसे प्रधान ग्रह है, यह सिंह के समान असाधारण व्यक्तित्व का परिचायक है अतः ऐसा व्यक्ति सर्वोच्च प्रशासक होता है।"

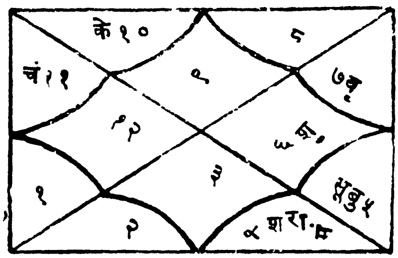

सूर्य से प्रभावित व्यक्तित्व के बारे में उन्होंने लिखा है—

'ऐसा जातक उदार हृदय का, मान्य, एवं विशेष प्रभुता सम्पन्न होता है। मानवता से पूर्ण, अतिथियों के प्रति उचित सत्कार करने वाला, शत्रुओं के साथ भी निष्कपट रूप से रहने वाला, कम बोलने वाला, निर्भय, पवित्र सत्यता का पालन करने वाला, सब की चिन्ता करने वाला और संकट में आये हुए को योग्य पथ दिखलाने वाला होता है।" वास्तव में यह सभी गुण पन्त जी पर शत-प्रतिशत सही घटित होते हैं। इसी प्रकार नवम स्थान में अकेले बुध भी श्रेष्ठ है—

'कुलद्योतकृद् भानुवत् भूमिपालात्—
"प्रतापाधिको बाधको दुर्मुखानाम् ॥"

अर्थात् अपने कुल को उज्जवल करने वाला सूर्य के समान तेजस्वी राजा से भी अधिक प्रतापी तथा दुष्टों के लिए बाधक होता है।

इस प्रकार अकेले नवम में साधारण सूर्य या अकेले नवम में बुध ही असाधारण व्यक्तित्व का परिचायक है यहाँ तो सूर्य बुध दोनों एक साथ हैं और सूर्य सिंह राशि का है जो जातक को "पुरुष सिंह" बनाता है इसके अलावा भाग्येश-राज्येश का परस्पर भाव सम्बन्ध योग है, ऐसा योग मिलना दुर्लभ है।

पन्त जी को विश्व के महापुरुषों की श्रेणी में लाने का श्रेय इसी योग को है। यह उल्लेखनीय है कि पन्त जी के जीवन में सूर्य की महादशा का समय नहीं आया यदि यह समय उनके जीवन में आता तो वह राष्ट्र के सर्वोच्च पद (राष्ट्रपति) पर निश्चय ही पहुंचते। बुध की महादशा उनके जीवन में १९४१ ई० से १९५८ ई० तक रही— यही उनके जीवन का स्वर्णिम काल रहा। दशम नीच का शुक्र भी राजयोग कारक है। दशम में नीच ग्रह राजयोग करता है।

विपरीत योग

अष्टम स्थान में शनि, राहु, मंगल का योग विपरीत ही कहा जायगा। शनि ने आयु वृद्धि अवश्य की लेकिन कारागार यातना और शारीरिक अस्वास्थ्यता का यही योग मुख्य कारण रहा। सन १९२२ से १९४१ तक शनि की महादशा मे उन्हे तीन बार कारागार की यातना सहनी पड़ी। भयंकर शारीरिक यातनायें सहीं।

१९५८ से पन्त जी को केतु की महादशा प्रारम्भ हुई, केतु मारकेश से सम्बन्धित होने से १९५९ से ही उनका स्वास्थ्य गिरने लगा। उनके ७३वें जन्म दिन पर मैंने उन्हे लिखा था—"मारकेश महादशा होते भी जीवन को संकट नहीं है' और हुआ भी ऐसा ही, इस वर्ष उन्हे मरणासन्न कष्ट हुआ किन्तु जीवन बच गया। जनवरी १९६१ मे कार्यवश केवल एक दिन के लिए मैं दिल्ली गया था, सयोग से उनके दर्शन न हो सके। उनके निजी सचिव श्री जानकी प्रसाद जी ने मुझे कहा था-- "देहली के समस्त ज्योतिर्विदों ने जीवन की कोई आशा नहीं बतलायी थी, केवल आपकी भविष्यवाणी सत्य हुई, वह हमारे यहां अभिलेख के रूप में सुरक्षित रखी गयी है।"

और मेरे मस्तिष्क में राहु का विचार घूम रहा था, जो कुछ ही दिनों बाद पूर्ण मारकेश के रूप में आने वाला था।

सचमुच इसके कुछ ही दिनों बाद जैसे ही केतु में राहु की अन्तर्दशा प्रारम्भ हुई ७ मार्च ६१ को काल ने उनके नश्वर शरीर को हमसे छीन ही लिया।

पन्त जी का भौतिक देह आज इस संसार में नहीं है लेकिन वे आज भी जीवित हैं क्योंकि भौतिक शरीर नश्वर है और भौतिक शरीर से कोई भी एक निश्चय समय से अधिक जीवित नहीं रह सकता लेकिन अपनी कीर्ति के द्वारा

प्राणी निरन्तर जीवित रहता है—''कीर्तिर्यस्य स जीवति'' अर्थात जिसका यश है, वही जीवित रहता है। इस प्रकार अपने यश से पन्त जी आज भी जीवित हैं और अनन्तकाल तक जीवित रहेंगे।

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर*

महाकवि श्री रवीन्द्रनाथ की जन्म-कुण्डली में ग्रहों की जो स्थिति है, उसके बारे में कहा गया है : —

''आचन्द्रार्क गुणाभिराम विभव: प्रख्यात कीर्तिर्भुवि''

अर्थात् अपने गुणों के वैभव से वह व्यक्ति तब तक अमर रहेगा, जब तक गगन में सूर्य और चन्द्रमा।

यद्यपि आज वे इस विश्व मे नहीं है किन्तु महाकवि की अमर वाणी आज भी हमारा पथ प्रदर्शन कर रही है और अपनी देश सेवा एवं साहित्य-सेवा से वह आज भी अप्रत्यक्ष रूप में अमर है।

कवीन्द्र रवीन्द्र का जन्म विक्रम सम्वत् १९१८, शकारि शालिवाहन सम्वत् १७८३, बंगला सम्वत् १२६८ मे वैशाख कृष्ण १३ सोमवार, बंगला तिथि २५ वैशाख, तदनुसार ७ मई, १८६१ को प्रात: २ बजकर ३८ मिनट ३७ से० पर रेवती नक्षत्र मीन राशि में कुलीन ब्राह्मण ब्रह्म समाज के संस्थापक महामना श्री देवेन्द्र नाथ ठाकुर के घर में हुआ था। तदनुसार इनके जन्म-कालीन ग्रहों की स्थिति इस प्रकार है :—

१२	१	२	३	४	५	९
च ल०	सू बु शु	मं	के	बृ	श	रा

साहित्य, कला, श्रृंगार, राजनीति के साथ ही मानवता के प्रति असीम दया तथा प्रेम का सामञ्जस्य यदि किसी एक ही पुरुष के जीवन में देखना हो तो वह रवीन्द्र का जीवन है, द्वितीय स्थान में सूर्य, बुध, शुक्र का योग और

* 'आग्रहायण' के दिसम्बर १९७५ अंक में प्रकाशित।

कर्मेश बृहस्पति के उच्च का होकर पंचम होने से उनके जीवन में सभी गुणों का सामञ्जस्य हो गया।

प्राय: यह किम्वदन्ती है कि लक्ष्मी और सरस्वती का परस्पर बैर होता है, अत: विद्या और धन दोनों की उपलब्धि एक ही व्यक्ति को सम्भव नहीं है। परन्तु विश्वकवि इसके अपवाद है, आपके जीवन में विद्या तथा लक्ष्मी का अद्भुत मेल रहा है। क्योंकि धन स्थान में भी बुध तथा शुक्र के साथ उच्च का होकर साक्षात् सूर्यदेव विराजमान है और विद्या स्थान में देवगुरु बृहस्पति भी उच्च के होकर बैठे है, दोनों स्थानों (धन और विद्या) में बली उच्च के ग्रह है और इन ग्रहों में (बृहस्पति-सूर्य) सदैव मित्रभाव रहा है एतदर्थ महाकवि के जीवन में कभी भी लक्ष्मी और सरस्वती ने प्रतिद्वन्दिता नही की।

आरोग्य भाग्य धनधान्य समावृतोऽसौ,
लोके प्रधान पुरुषो विजयी नरेन्द्र: ।
कल्याणवाक्कमल नेत्र गुणाभिरामो,
भोक्ता गुणी: सकल बंधु जनैवृतोऽसौ ।

* * *

शक्रत्यापाणि पदाम्बुजोऽमृतवपु कामातुरो भोगवान्,
प्रख्यातो खिल भूमिनाथ निचयैर्वन्द्यो महादानकृतम् ।
कान्तज: कमलाभिराम नयनो देवप्रियो भक्तिमान्,
आचन्द्रार्कगुणाभिराम विभव: प्रख्यात कीर्तिर्भुवि ।।

* * *

दशम् भवन नाथे केन्द्रकोणे धने वा,
भवति धनद तुल्यो राजराजाधिपो वा ।
स भवति नरनाथो विश्व विख्यात कीर्ति:,
मद गलित कपोल: सज्जनै: सेव्यमान: ।।

* *

गुरोकेन्द्रे त्रिकोणे वा बुद्धिमार्ग विशारद: ।
ग्रहणादिपटुश्चैव धारणादि पटुर्भवेत् ।।

* *

ज्ञेज्ञो शुभे तीव्र बुद्धिः ।
वेदांतः परिशीलस्यात् केन्द्र कोणे गुरौ सति ।

*   *

सुतपेऽङ्गेशे सुते मनस्वी विद्वान् मानी च ।

इत्यादि योगो से आरोग्य, धनधान्य से परिपूर्णता, विशिष्ट व्यक्तित्व, कल्याणदक्षा, गुणाभिराम, सकलबन्धु जनैवृत-विश्वबन्धुत्व, शृंगार-प्रियता, सुखी जीवन, राजमान्यता, महादानी, सुरूपता, आस्तिकता अचल कीर्ति, विश्व-विश्रुति, विद्वज्जन मण्डली परिसेवित, बुद्धि विशारद, बुद्धि ग्रहण और धारण मे पटुता (तीव्र स्मृति और शीघ्र समझने की योग्यता) वेदान्तज्ञान प्रवीणता, विद्वता आदि जो लक्षण कहे गये है, वे सभी उनके जीवन में पूर्णतः घटित हुए।

पारिवारिक सुखहीनता

जीवन के मध्यावधि का समय पारिवारिक सुखहीनता का रहा, १६०२ से लेकर १६०७ के मध्य ही महाकवि को पत्नीशोक, पुत्रीशोक, पितृशोक, पुत्रशोक की मर्मान्तिक पीड़ाएँ पहुँची। यह वेदना कवि की अपनी 'स्मरण' व खेया' शीर्षक कविताओं में फूट पड़ी है।

पापश्चतुर्थ परवेश्म संस्थ, तदीक्षितोन्यैरशुभैरदृष्टः ।
करोत्यसंख्यान परोत्थतापं, प्रयान्तुवन्धुदभवमेव दुःखम् ॥

चतुर्थ सुखस्थान में राहु की दृष्टि तथा केतु की स्थिति के कारण और कुटुम्ब स्थान (२) में सूर्य की स्थिति से उन्हें पारिवारिक वियोग सहने पड़े।

हुआ बालका बादशाही करेगा

महाकवि का जीवन निःसन्देह बादशाही का रहा, यदि वे अंग्रेजी शासन में सेवा करते, तो कदाचित् वे सेवक ही कहलाते। किन्तु अपनी स्वतंत्र प्रकृति से जिन्होंने ब्रिटिश शासन की 'सर' उपाधि को वापस कर दिया, गाजीपुर से पेशावर तक बैलगाड़ी में सैर करने के इच्छुक, अपनी धुन में मस्त स्वयं वे किसी राजा से कम न थे और यों भी आपका परिवार बंगाल के सबसे बड़े जमींदारों में था और धन-धान्य की दृष्टि से भी उनमें बादशाहों से कोई कमी न थी—

यदा मुश्तरी (बृ०) कर्कटे (४) वा कमाने (६),
यदा चश्मकोरा (शु०) भवेन्मालखाने (धनस्थान)।
तदा ज्योतिषी क्या लिखेगा पढ़ेगा।
हुआ बालका बादशाही करेगा ॥

*　　　*

उतारिद् (बु) धनस्थो बृहस्साहबी स्यात्,
बृहत्सूर्य (१ सू०) मत्नमत्लजानाश्वपूर्ण:।

महाकवि की अमर वाणी युग युगान्तरों तक विश्व को प्रेरणा प्रदान करती रहे, विश्व उन्हें कभी न भूले, यही हमारी कामना है।*

मैंने समय-समय पर 'आग्रहायण' के माध्यम से समाज के विभिन्न क्षेत्रों में प्रसिद्धि पात्र व्यक्तियों के जन्मपत्रों की समीक्षा लिखी है और उन पर भविष्यवाणी भी की है जो अक्षरश: सत्य सिद्ध हुई।

यदि उन सभी का प्रकाशन किया जाय तो एक स्वतंत्र ग्रंथ ही बन जायगा। ईश्वर ने चाहा तो भविष्य में प्रकाशन किया जायगा।

—लेखक

नाम का महत्व

'नाम' के बारे में जन साधारण में तरह तरह की भ्रान्तियां है, कुछ लोगों का तो यह मानना है कि नाम का प्रभाव होना निश्चित है भले ही वह जन्म समय पर आधारित नाक्षत्रिक हो (राशिनाम) अथवा प्रसिद्ध (बोलता) नाम हो। यही कारण है कि समाज में कुछ लोग विवाह आदि महत्वपूर्ण काम भी नाम से ही निर्णीत कर लेते है। वर-कन्या का परस्पर मेलापक भी नाम-नाम से कर लेते है। यद्यपि यह मान लिया जाय कि नाम-नाम परस्पर अनुकूल हैं तो हो सकता है दोनों के स्वभाव तथा रुचियों में समानता हो, लेकिन किसी के भाग्य, व्यवसाय, आर्थिक स्थिति, आयु चरित्र, रोग आदि के बारे मे तो पता नहीं चलेगा। अत: यदि स्थूल रूप में देखा जाय तो नाम का कोई विशेष महत्व नहीं है।

वैसे भी इस विशाल विश्व की जनसंख्या करोड़ों नही अरबों में है अत: एक ही आदि अक्षर से नाम वाले व्यक्तियों की संख्या भी करोड़ो में होगी-- क्या इन करोड़ों व्यक्तियों मे कोई समानता होगी ? इन सभी पर समान घटनायें घटित होंगी ? यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है। ऐसी ही शंका को लेकर प्रश्न उठता है कि 'राम' तथा रावण' का आद्यनामाक्षर एक ही था, फिर भी दोनों के चरित्र व जीवन एक दूसरे के विपरीत रहे। एक ने विजय प्राप्त की तो दूसरे ने पराजय तथा मृत्यु का वरण किया। यदि गम्भीरता से विचार करें तो जीवन में निरन्तर ऐसे सैकड़ों उदाहरण मिलते हैं। कुछ वर्षों पूर्व उत्तर प्रदेश की राजनीति में 'चन्द्रभानु गुप्त' व 'चरण सिंह' एक ही नामाक्षर वाले होते भी एक ही दिन एक को सिंहासन छोड़ना पड़ा तो दूसरे को सिंहासन प्राप्त हुआ।

इन तथ्यों पर सामान्य रूप से देखा जाय तो नाम का जीवन में कोई महत्व है ही नहीं। अनेक स्थलों पर नाम का उपहास भी होता है—'आंख के अंधे नाम नयनसुख' तो कुछ लोग स्वयं अपने नाम के विरुद्ध आचरण कर अपना उपहास भी कराते हैं।

किन्तु नाम का महत्व है। नाम से ही मनुष्य का व्यक्तित्व और अस्तित्व सिद्ध होता है। नाम पर विचार करने से पहले यह देखना आवश्यक है कि व्यक्ति का नाम जन्म नक्षत्रानुसार (राशि नाम) है अथवा कल्पित प्रसिद्ध नाम है ; भिन्न-भिन्न समय पर एवं भिन्न-भिन्न प्रयोजनों पर भिन्न-भिन्न नाम महत्व रखते है। पहले यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि कहाँ पर कौन नाम प्रभावी होगा।*

विचार करें राम और रावण में आदि अक्षर एक होते भी नाम में समानता नहीं है।

यदि विस्तार से राम (र + आ + म + अ) और रावण (र + आ + व + अ + ण + अ) का पिण्ड बनाया जाय तो दोनों का पिण्ड भिन्न होगा और इस पिण्ड के आधार पर गणित एवं विचार करने से रावण के पिण्ड पर राम के पिण्ड का विजयी होना भी सिद्ध होता है।

इस प्रकार की स्थितियों में, इस विषय पर प्राचीन 'समरसार' नामक ग्रंथ में विधि का वर्णन है। क्योंकि जब दोनों प्रतिद्वन्दी एक ही नाम राशि के होंगे तो दोनों में से एक की विजय एक की पराजय सुनिश्चित है। दोनों विजेता या दोनों की पराजय तो होगी नहीं।

यहाँ यह उल्लेख कर देना आवश्यक होगा कि 'राम' तथा 'रावण' यह दोनों ही काल्पनिक नाम है। यदि राम और रावण जन्मकालिक नाक्षत्रिक होते तो दोनों के जीवन में कुछ साम्यता अवश्य होती और इस प्रकार दोनों के नाम विपरीतार्थक नहीं होते। श्रीराम का जन्मकालिक नाक्षत्रिक नाम 'होमदत्त' तथा रावण का नाक्षत्रिक नाम 'डंटघर'' था। इस प्रकार राम से रावण का और रावण से राम का परस्पर पांचवा वर्ग होता है, ज्योतिष के सिद्धान्तों के अनुसार-- "स्ववर्गात पंचम : शत्रु०" पाँचवां वर्ग शत्रु होता है अत: राम-रावण की घोर शत्रुता स्पष्ट है।

रावण का एकछत्र राज्य था, देवता भी उससे घबराते थे, रावण राम से आयु में उनसठ (५६) वर्ष बड़ा था और उसने ८४ वर्ष की आयु में राम से निर्णायक युद्ध लड़ा था, कैसा होगा उसका युवाकाल का पौरुष ?

---

* इस विषय पर लेखक की पुस्तक "अंक महिमा एवं अंक विज्ञान" में विस्तार से विवेचन है।

इसी प्रकार जन साधारण यह भी नहीं जानता है कि श्री चरण सिंह का नाक्षत्रिक नाम "ठाकुर सिंह" और श्री चन्द्रभानु गुप्त का नाक्षत्रिक नाम "नरेन्द्र गुप्त" था।

किसी का नाम रखना हो तो उसकी प्रवृत्तियों को देखते हुए सार्थक नाम रक्खें—'यथानाम तथा गुणा.'। अत: अपने नाम के महत्व को समझ और उसका महत्व बनाये रखें।

भारतीय पंचांग और उनका गणित*

सभी धर्मों एवं सम्प्रदायों में किसी न किसी रूप में पंचांग या कैलेण्डर का प्रचलन विद्यमान है क्योंकि कालज्ञान के लिए यह समाज की अनिवार्य आवश्यकता है। पाश्चात्य कैलेण्डर में "दिन" और "दिनांक" यह दो ही अग होते हैं जबकि भारतीय पंचांग अपने पांच (तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण) विशेष महत्व रखता है। यों तो भारत जैसे विशाल देश में विभिन्न सिद्धांतों एवं ग्रंथों से पंचांग बनते हैं लेकिन वर्तमान में इन्हें मुख्यत: दो भागों में रख सकते है—

(अ) भारतीय सिद्धातों पर आधारित पंचांग, सौरपक्षीय, ब्रह्मपक्षीय, आर्यपक्षीय आदि। सभी प्राचीन भारतीय सिद्धान्त स्वल्पान्तर से एक हैं तथा सभी भारतीय धर्मशास्त्र सम्मत हैं। इन सब में सूर्य सिद्धान्त सबसे प्राचीन, शुद्ध एवं सूक्ष्म है, जो आधुनिक विज्ञान की कसौटी पर भी सत्य है तथा पाश्चात्य विद्वानों द्वारा भी प्रशंसित है।

(आ) पाश्चात्यपद्धति अर्थात नाविक पंचांग" एवं "फ्रेन्चकानेडियम" के आधार पर "दृश्य गणित" से बने पंचांग, जो भारतीय धर्मशास्त्रों की मान्यता के विपरीत है। इसमें भी अनेक मतमतान्तर हैं और परस्पर भारी अन्तर है।

भारतीय धर्मशास्त्रों की मान्यता

भारत एक धर्म प्रधान देश है, यहां के पंचांग केवल आकाशीय चमत्कार देखने को नही बनते बल्कि फलित और धार्मिक पर्वों के निर्णय एवं समय

---

* फलित ज्योतिष के सन्दर्भ मे पचांगों पर प्रकाश डालना मैं आवश्यक समझता हूँ, क्योकि भारत में अब दो तरह के पंचांगों का प्रचलन है। मैंने अपने पिछले ४०—४५ वर्षों के अनुभव में यह पाया है कि भारतीय पद्धति से बने पंचांगों के आधार पर ही फलित सटीक बैठता है।

अत: फलित की सत्यता हेतु यह आवश्यक है कि जन्मपत्र भारतीय पद्धति से आधारित पचांग से बना हो।

निर्धारण हेतु बनते हैं, अत: अनादिकाल से इस देश में भारतीय (धर्मशास्त्रों द्वारा मान्य) सिद्धान्तों द्वारा बनाये गये पंचांग ही मान्य रहे हैं ।

भारतीय धर्मशास्त्रों तथा धर्मशास्त्रकारों-वशिष्ठ, सायण, भट्टोत्पल, हेमाद्रि, वीरमित्रोदय मदनरत्न, समय प्रकाश, पुरुषार्थ चिंतामणि निर्णयामृत, निर्णयसिन्धु, धर्मसिन्धु कालमाधव आदि सभी में तिथि की वृद्धि आसन्न ५ घटी और क्षय ६ तक ही माना है "बाणवृद्धि रसक्षय" जिस सिद्धान्त से इसकी पुष्टि हो उसी सिद्धान्त से बने पंचांग धर्मकार्य में स्वीकार है :—

रवीन्दु मध्यसंसिद्ध ततत्तिथ्यादिभोगत: ।
स्यातां तत्काल बीजोत्थो बाणवृद्धिरसक्षयो: ।।

अत: पैतृककर्मादौ तत्कालचर बीजकै: ।
बाणवृध्या रसक्षीणा ग्राह्या नान्या तिथि क्वचित ।।

इसके विपरीत उपरोक्त अंग्रेजी जहाजी पंचांग (दृश्यगणित) के आधार पर बनने वाले पचांगों में तिथि की वृद्धि ७ घटी तक और क्षय १० घटी तक आता है, अत. दृश्यगणित के पचांग अमान्य है —

दृक्सिद्धखेट ग्रहसाधितासु,
कुर्वन्तिकेचित्तिथिषु प्रमादात ।
श्राद्धादिकं तत्पितृशापतस्ते
पुण्यक्षयं दुर्गति माप्नुवंति ।।

—स्कांदे (कलिमाहात्म्ये)

अर्थात दृश्यगणित के आधार पर बने पंचागों के अनुसार जो व्यक्ति व्रत, स्नान, दान श्राद्धादि करते हैं उनसे देवता व पितर असन्तुष्ट होकर श्राप देते हैं तथा उनका पुण्य नष्ट होकर दुर्गति प्राप्त होती है ।

जगद्गुरू शंकराचार्य (ज्योतिष्पीठ, बद्रीनाथ), गोवर्धनपीठ (जगन्नाथपुरी) तथा द्वारिकापीठ (गुजरात) स्वामी करपात्री जी आदि सभी धर्माचार्य सौर-पक्षीय पंचांगों को ही धर्मकार्य में मान्य तथा प्रामाणिक मानते हैं। दक्षिण भारत में भी सौरपक्षीय पचाग ही मान्य है । काशी (१९६३ ई) तथा अमृतसर (१९६४ ई) में सम्पन्न ज्योतिष सम्मेलनों में (जिनमे दोनों पक्षों ने भाग लिया था) सौरपक्ष ही शुद्ध माना गया था । सन् १९६४ के बाद दृश्यवादियों का अलग गुटबन गया है । गोवर्धन पीठ (जगन्नाथपुरी) के शंकराचार्य जी

ने १९७७ ई. में जोधपुर मे शास्त्रार्थ रखा था लेकिन दृश्यवादी अनुपस्थित रहे।

ज्ञातव्य है कि :

सम्वत् २०३९ मे सौरपक्षीय (भारतीय) तथा दृश्यगणित के पंचागों में दशहरा और दीपावली की तिथियों में एक-एक महिने का अन्तर था। जनता की ओर से, तथा भारतीय शासन की ओर से भी दृश्यगणित के पंचांगों की तिथियाँ अमान्य रहीं। भारतीय पंचांगों को ही मान्यता मिली।

फलित भी मिथ्या

भारतीय सिद्धान्तों से बने पंचागो और दृश्यगणित से बने पंचांगों के तिथि, नक्षत्र आदि के मान मे परस्पर १० घटी तक का अन्तर आता है। जैसे १५ दिसम्बर मंगलवार १९८१ को सौरपक्ष मे अश्लेषा ५६/१६ और दृश्य से ४३/५१ है, अब यदि इस काल ४८/० मे ५६/ के बीच हो तो सौरपंचांग से अश्लेषानक्षत्र कर्क राशि होगी और दृश्य से मघानक्षत्र सिंह राशि। नक्षत्र तथा भयातभभोग में अन्तर पड़ने मे दशा में भी ३ या ४ वर्ष का अन्तर आ जायेगा, इससे ज्योतिष फलितशास्त्र भी झूठा होगा। सन् १९६० में बाबू सम्पूर्णानन्द जी ने इस विषय पर लखनऊ विश्वविद्यालय मे अनुसंधान भी कराया था कि किस मत से फलित सही होता है और भारतीय सिद्धांतों से बने पचांगों से ही फलित सत्य घटित हुआ।

"दृश्यगणित" क्या है !

"दृश्यगणित' आजकल उसे कहा जाता है जिसके आधार पर यूरोप व अमेरिका में "जहाजी पँचाग" बनता है। सन् १८८० ई. में अँग्रेजों ने अपने एक कर्मचारी श्री वेंकटेशबापूकेतकर से (जो सरकारी अँग्रेजी स्कूल के हेडमास्टर थे तथा गणित व सँस्कृत के भी ज्ञाता थे) सँस्कृत में "केतकी" नाम से एक ग्रँथ लिखवाया था। क्योंकि अँग्रेजों की यह नीति थी कि किसी देश को गुलाम बनाने के लिए उसकी शिक्षा, भाषा व सँस्कृति पर प्रहार करना चाहिए। इसलिए इस पुस्तक को लिखने के बाद श्री केतकर की बहुत आलोचना होती रही और भारतीय पक्ष के विद्वानों से उनका जीवन-पर्यन्त शास्त्रार्थं एवँ विरोध चलता रहा। इस ग्रँथ को लिखने के कुछ वर्षों बाद स्वयँ उन्हें इस ग्रँथ मे अनेक सँशोधन करने पड़े। आज भी दृश्यगणित में अनेक मत मतांतर है। चित्रापक्ष, रैफलपक्ष, रैवतपक्ष आदि में परस्पर

४ अंश तक का अंतर है, २७ २३, १९ कई अयनांश प्रचलित हैं। दृश्यगणित के ही अलग-अलग मतों से बने पँचांगों में परस्पर १० घटी तक का अंतर रहता है। दृश्यगणित के ही अलग-अलग मतों के पंचांगों के दोषों का कुछ उदाहरण—

(अ) संवत् १९६१ में कुछ में ज्येष्ठ, कुछ में आषाढ और कुछ में श्रावण अधिकमास था (सौर पक्ष सेजेठ था)।

(आ) सं. २०२० में एक मत से कार्तिक ही अधिक और कार्तिक ही क्षय फिर चैत्र अधिक, दूसरे मत से इस वर्ष में अधिक व क्षय था ही नही (सौरपक्ष से आश्विन और चैत्र में अधिक मार्गशीर्ष का क्षय था)।

(इ) सँ. २०३४ मे किसी मे श्रावण, किसी मे भाद्र, किसी मे आश्विन अधिक मास था (सौरपक्ष से आषाढ़ था)।

जिस गणित मे इतनी अशुद्धियाँ गणित और मत मतांतर हो क्या उसे शुद्ध कहा जा सकता है? और तो और दृश्यगणित के पँचांगों के दृश्यपदार्थ भी गलत सिद्ध होते है, सन् १९७७ मे 'दृश्यगणित'' के पँचांगों ने १२ दिसम्बर को चन्द्रोदय देकर २ को मोहर्रम दिया था जो असत्य रहा। सौर पँचांगो में १३ को चन्द्रोदय सत्य रहा।

न "दृश्य" ही और न धर्मशास्त्र सम्मत ही

वास्तव में "दृश्यगणना" सायन होती है जिसमे चान्द्रमास में एक माह और सौर माह में २३ दिन का अन्तर पड़ता है जैसे-मेष सँक्रांति जिस दिन रात व दिन बराबर होते है, मकर सँक्रांति जिस दिन से दिन का बढ़ना शुरू हो-इस प्रकार श्रावण में जन्माष्टमी, माघ में होली भादों में नवरात्र, २३ मार्च को मेष सँक्रांति, २५ दिसम्बर को मकर सँक्रांति, ३१ मई को सूर्य आर्द्रा प्रवेश आता है। अँग्रेजी पँचांग इसी प्रकार सायन ही बनते हैं। शुरू-शुरू में जब भारत में 'दृश्यगणित'' के पँचांग चले थे, वे भी इसी प्रकार बनते थे, लेकिन जनता के घोर विरोध के कारण बाद में वे "भारतीय पँचांगों की नकल पर" निरयन बनाए जाने लगे। इस प्रकार वर्तमान पँचाग न तो "दृश्य" ही रहे और न धर्मशास्त्र सम्मत ही। यदि "दृश्य" वालों को अपने गणित की शुद्धता पर विश्वास है तो उन्हें 'सायन'' पँचांग बनाने चाहिए।

भारतीय धर्म ग्रंथों को समूल नष्ट करने का दुश्चक्र

शुरू-शुरू में जब सायन "दृश्य" पचांग छपे तो उपरोक्त प्रकार से पर्वों में एक महीने का अन्तर आने लगा तो अपने स्वार्थ के लिए भारतीय धर्मग्रथों को समूल नष्ट करने का भी एक प्रस्ताव था। यदि यह योजना क्रियान्वित हो जाती तो आज हिन्दू धर्म और भारतीय धर्मग्रयो का कही अस्तित्व ही बचा नहीं होता। सम्भवतः इसी समय कुछ पुस्तको मे श्लोक भी जोड़े गये। महाराष्ट्र के तत्कालीन ज्योतिषी पं० शकर बालकृष्ण दीक्षित ने १८८६ ई. में लिखा है (देखे—भारतीय ज्योति पृ. ५६९/५७०) वर्षारम्भ का-एक महीने पहले लाना और चैत्र के धर्मकृत्यो को फाल्गुन मे करना धर्मशास्त्र बदलने के समान ही है—" आगे वे लिखते है—

"यदि पूर्वोक्त पद्धति (अर्थात दृश्य पचाग) को धर्मशास्त्र सम्मत न होते हुए भी प्रचलित करना है तो नवीन धर्मशास्त्र बनाना पड़ेगा, पर धर्मशास्त्र ग्रथो और लोकस्थिति का विचार करने से यह कार्य दुष्कर प्रतीत होता है। नवीनधर्मशास्त्र बनवाया जा सकता है पर उसका मान्य होना अत्यन्त कठिन है। शकराचार्य की सम्मति मिल जाए, इतना ही नही उसे कानून का रूप देकर पास करा दिया जाए तो भी उसका प्रचार होना कठिन है हमारे देश मे धर्मशास्त्र के सहस्त्रों ग्रथ और उनकी लाखो प्रतियां विद्यमान है। उन सबो को नष्ट करना होगा। उनका त्याग करने पर भी अन्य विषयो के ग्रंथ लुप्त नही किये जा सकते। उन सहस्त्रों ग्रथो मे वर्णित तथा करोडो मनुष्यो के हृदयपट पर अंकित पद्धति को बदलना असम्भव है—"

अर्थ का अनर्थ

दृश्यगणित के समर्थन मे कुछ प्रमाण दिये जाते हैं इनमे कुछ स्वरचित, क्षेपक, श्लोक होते है। कुछ श्लोको के अर्थो का अनर्थ किया जाता है "सिद्धांत शिरोमणि" मे "यात्रा विवाहोत्सव" श्लोक का अर्थ यह है कि यात्रा विवाहादि उत्सव तथा जातक मे ग्रहों के उदयास्त का गणित दृश्यगणित से करे, क्योंकि यात्रा, विवाह जातक (उदये सुखदा ज्ञेया चास्ते मानार्थ हानिदा) में उदयास्त का विचार होता है, यही बात मकरन्दकार ने "अस्तोदयं—फलप्रसिद्धे" कहकर स्पष्ट कर दी है। केवल उदयास्त के लिए दृश्यगणित करने का आदेश है। इसी प्रकार "वशिष्ठसिद्धांत" और "ब्रह्मसिद्धांत" स्वय अशुद्ध व स्थूल (मोटे अनुमानित गणित के) है, आचार्य वराहमिहिर जैसा कहा है—"पौलिशकृतोस्फुटो सो तस्यासन्नस्तु रोमकप्रोक्तः। स्पष्टतरः सावित्रः परिशेषो

दूर विभ्रष्टो" ज्योतिर्विदाभरण में कालिदास ने भी कहा है—"स्थूलंसदा-ब्राह्ममतं निरुक्त' अत: ब्रह्मसिद्धांत या वशिष्ठ सिद्धान के उन श्लोकों का भी यही अर्थ है कि हमने मोटे तौर पर यह गणित का सिद्धांत दे दिया है सूक्ष्म शुद्ध एवं स्थिति जानने को विद्वान गणित कर ले। इसी प्रकार 'तिथि चिंतामणि" के 'तेभ्य.-दृक्समा:" का अर्थ यह है कि यह ग्रंथ प्रत्यक्ष देखने योग्य शुद्ध है, यह श्लोक तिथि चिंतामणि ग्रंथ की श्रेष्ठता के बारे में प्रशंसा है और यह ग्रंथ सूर्य सिद्धांत के ही आधार पर बना है। दृश्य पँचांग वाले तथ्यों को तोड़ मरोड़कर अपने पक्ष में अर्थ का अनर्थ करते है. इन श्लोकों से यह किसी भी प्रकार सिद्ध नहीं होता कि धर्म कार्य या फलित में दृश्य गणित मान्य है। भारतीय महर्षि भी दृश्यगणित जानते ही थे. यदि दृश्यगणित के पँचांग धर्मकार्य मे मान्य होते तो वे यह क्यों कहते कि केवल "उदयास्तादि" म ही दृश्यगणित प्रयोग करें, शेष में नही।

'नक्षत्र ग्रहयोगेषु ग्रहास्तोदये साधने"

एक महत्वपूर्ण तथ्य ?

ज्योतिष का यथेष्ठ ज्ञान न होते भी कुछ व्यक्तियों को 'पँचांगकार" बनने की महत्त्वाकांक्षा होती है वे स्वयं पँचांग का गणित नही जानते और बाजार में अगले वर्षों के सौरपक्षीय दस वर्षीय या सौ वर्षीय पँचाग मिलते नहीं जबकि दृश्यगणित के अगले वर्षों के सौ वर्षीय पँचांग छपे व प्राप्त है, अत: वे इन दृश्यगणित के पँचागों की नकल कर पँचाग बनाने को मजबूर है। ऐसे अधिकांश पँचांग लंदन के 'रैफल" आल्मनाक की नकल पर बनते है। इस प्रकार जो दृश्यगणित के पँचांग बनाते हैं उन्हें मजबूरन (अपने पँचांग के समर्थन में) 'दृश्य पँचाग" का पक्षधर बनना ही पड़ता। इनमें से कुछ को तो नकल करने की भी योग्यता नहीं होती। सम्वत् २०३८ के (सौ वर्षीय) पँचांग में प्रेस की त्रुटि से माघ कृष्ण ७ शनिवार को 'बुध उ० भा० में" छप गया था (जो वास्तव में—'उ० षा० में शुक्र" होना चाहिए था) इस अशुद्धि की एक पँचांग में ज्यों का त्यों नकल देखी जा सकती है। अत: ऐसे पँचांगकार जिन्हें प्रतिलिपि (नकल) करने की भी योग्यता न हो, इस विषय के ज्ञाता कैसे हो सकते हैं ?

पंचांग गणना का आधार स्थल ?

यह भी विचारणीय प्रश्न है कि पँचांग की गणना किस स्थान विशेष से हो। आजकल सारे विश्व में स्टैंडर्ड समय चलता है, भारत में भी कच्छ से

कामरूप और काश्मीर से कन्याकुमारी तक सारे देश में स्टडर्ड (राष्ट्रीय) समय चलता है, और यह स्टैंडर्ड समय ८२।। पूर्व देशान्तर रेखा पर आधारित है अत: ८२।। देशान्तर एवं २५ अक्षांश को आधार पर लेकर बने पँचांग अधिक सरल, उपयोगी, सम्पूर्ण देश में व्यवहार योग्य व शुद्ध होंगे इसमें आसानी से मात्र १ मिनट में अपने नगर का देशान्तर, चरान्तर जोड़ या घटाकर सर्वत्र व्यवहार में लाया जा सकता है।

अन्य किसी नगर को आधार मानकर जो पँचांग बनेगा वह केवल उसी नगर में काम देगा, जैसे नैनीताल को आधार मानकर बना पँचांग मे उससे निकटवर्ती बरेली, रामनगर, अल्मोड़ा, पिथौरागढ़ मे भी अन्तर आ जाएगा तथा अन्य नगर के लिए उसमें संस्कार करना इतना कठिन है कि जन साधारण एवं पुरोहित वर्ग उसे नहीं कर सकते है। इसके अतिरिक्त भारत जैसे विशाल देश म धार्मिक व्रत पर्वों मे भी एकरूपता तभी सम्भव है—जब "स्टैंडर्ड" स्थान को ही आधार मानकर चला जाय।

संशोधन किन्तु मर्यादित

भारतीय पँचांग गणना के सिद्धान्तों में समय समय पर आवश्यकतानुसार संशोधन एवं संस्कार मान्य है ग्रहलाघव, मकरन्द आदि मे ऐसे संस्कार हुए भी हैं, लेकिन वे ही संशोधन मान्य एवं स्वीकार है—जहाँ धर्मशास्त्रों की मर्यादा के विरुद्ध न हों, धर्म शास्त्रों के विरुद्ध संशोधन स्वीकार नहीं है। इसी आधार पर पँचताराग्रहों तथा उदयास्तादि साधन मे संस्कार ग्राह्य किया है।

हीनता की भावना

आज स्वाधीनता के इतने वर्षों के बाद भी भारतीय लोगों मे हीनता की भावना है। लार्ड मैकाले की योजना से अँग्रेजी शिक्षा-दीक्षा, आचार-विचारों के प्रभाव से हम अपने ज्ञान-विज्ञान से विमुख होकर पश्चिम का अन्धानुकरण कर रहे है अब विद्वान महर्षियों के कुल में उत्पन्न स्वयं भारतीय ही पश्चिम का अन्धानुकरण करते है। स्व० शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने सन् १८९६ में ही लिखा था "एक बात कहे बिना नही रहा जाता कि हमारे देश के कुछ बड़े-बड़े विद्वान भी यूरोपियनों की बातें चाहे जैसी हों वेद वाक्य समझते है। इससे विदित होता है कि उन्हें अपनी योग्यता पर भरोसा नहीं है (भारतीय ज्योतिष)" काश, उन्हें अपने ज्ञान-विज्ञान का ज्ञान होता - जिसका लोहा आज भी पश्चिमी विद्वान मानते है।

12823